किशोर भारती का प्रकाशन

जनसंख्या नियंत्रण के मिथक और पितृसत्ता की

जंजीरों को तोड़कर

संकलन एवं संपादन
शशि मौर्य

जनसंख्या नियंत्रण के मिथक और पितृसत्ता की

जंजीरों को तोड़ते हुए

संकलन व संपादन

शशि मौर्य

किशोर भारती का प्रकाशन

मार्च 2016

जनसंख्या नियंत्रण के मिथक और पितृसत्ता की
जंजीरों को तोड़ते हुए

संकलन व संपादन : शशि मौर्य

आवरण व डिज़ाईन : कनक शशि

पहला संस्करण : मार्च 1990
संपादित संस्करण : मार्च 2016 (1,000 प्रतियां)

प्रकाशन व वितरण : किशोर भारती
ई–8/29, सहकार नगर, भोपाल 462 039, म. प्र.
ईमेल – kishorebharati.bhopal@gmail.com
फ़ोन – (0755) 2560438

मुद्रण : आर के सेक्यू प्राइवेट लिमिटेड
प्लॉट नं. 15, सेक्टर जी,
इंडस्ट्रीयल एरिया, जे.के. रोड,
भोपाल 462 021, म. प्र.

सहयोग राशि : रुपए एक सौ पचास मात्र

अनुक्रम

खंड – तीन

प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम : नए रास्तों की तलाश

———

बॉक्स सूची

———

तालिका सूची

———

भूमिका

प्रजनन–सबंधित मुद्दे की बात होते ही सबसे पहले महिलाओं का ख्याल आता है उसी तरह से जैसे कि रोज़मर्रा के घरेलू कामों की बात होने पर। हमारे पितृसत्तात्मक समाज[1] में महिला–पुरुष दो भागों में बंटे हुए हैं। यह बात समाज के हर आर्थिक व सामाजिक–सांस्कृतिक तबके के लिए मोटे तौर पर लागू होती है – शासक वर्गों व जातियों के लिए भी और उनके द्वारा सदियों से उत्पीड़ित–शोषित वर्गों व जातियों के लिए भी[2]। पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था की सबसे बड़ी कमज़ोरी है कि इंसान होने के बावजूद महिला–पुरुष दोनों के बीच बराबरी का रिश्ता नहीं है, महिलाएं हर मायने में पुरुषों के अधीनस्थ हैं। इस अधीनस्थ दर्जे के चलते महिलाओं के पास न अपनी पहचान है और न ही अपना घर। घरेलू कामों[3] के अलावा महिलाओं की ज़िम्मेदारी पुरुषों की मनमर्ज़ी के अनुसार यौनिक संतुष्टि देने के साथ–साथ उनका वंश चलाने के लिए बच्चे और वह भी बेटे पैदा करने की है।

उक्त व्यवस्था पुरुषों को यौन–संबंधों की पूरी छूट देती है लेकिन महिलाओं के लिए ढेर सारे नियम–कायदे बना दिए गए हैं जिनका कड़ाई के साथ पालन करवाया जाता है। यौन–संबंधों के बारे में खुलकर बात करने, सवाल पूछने या जानकारी देने पर पाबंदियां हैं। इसका खामियाज़ा महिलाओं को अधिक लेकिन कमोबेश पुरुषों को भी भुगतना पड़ता है। यौन–संबंधों पर खुलकर बात न होने के कारण महिला–पुरुष दोनों को ही अपने (व एक–दूसरे के) प्रजनन अंगों व उनकी कार्यप्रणाली को लेकर वैज्ञानिक जानकारी नहीं मिल पाती है। बच्चे कैसे बनते हैं, बढ़ते हैं और जन्म लेते हैं, यह सब कुछ या तो

---

[1]एक सामाजिक व्यवस्था जिसमें पुरुष परिवार का मुखिया होता है और उसी के पास परिवार की सत्ता व संपत्ति का नियंत्रण होता है, जिसका हस्तांतरण भी उसी के बेटों को होता है।

[2]सन् 1916 में अमरीका के कोलंबिया विश्वविद्यालय में पी.एचडी के शोध छात्र के रूप में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने 'भारत में जाति' नामक अपने आलेख में स्थापित किया कि पितृसत्ता का निर्माण सवर्ण जातियों में पुरुष का संपत्ति पर नियंत्रण बरकरार रखने के मकसद से किया गया था। पितृसत्ता को पुख्ता करने के लिए अपनी–अपनी जाति के अंदर ही विवाह–संबंध (सजातीय विवाह) की प्रथा भी कायम की गई। कालांतर में यह ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक वर्णव्यवस्था सभी उत्पीड़ित–शोषित जातियों पर थोप दी गईं जो आज भी लागू है। ज़ाहिर है कि भारत में वर्णव्यवस्था यानी जाति व्यवस्था को ध्वस्त किए बगैर पितृसत्ता से भी मुक्ति नहीं मिल सकती।

[3]भारतीय अर्थव्यवस्था में घरेलू काम में लगनेवाले महिलाओं के श्रम का कोई मूल्य नहीं है।

'रहस्य' है या फिर 'ऊपरवाले' के भरोसे है। शरीर हमारा है पर हम खुद उससे अनभिज्ञ होते हैं और इसीलिए हम कितने बच्चे चाहते हैं, कब चाहते हैं, दो बच्चों के बीच कितना अंतर रखना चाहते हैं तथा अब और बच्चे नहीं करना चाहते, जैसे फ़ैसले नहीं ले पाते। जानकारी के अभाव में हम टोना–टोटका, साधु–सन्यासी, बाबा–भभूत व झोला–छाप डॉक्टरों के पास जाते हैं और वे हमारी इस कमज़ोरी का हर तरह से पूरा–पूरा फ़ायदा उठाते हैं। इन सब मसलों के मद्देनज़र सन् 1980 के दशक के ग्रामीण माहौल में हमारे काम का यह तकाज़ा था कि इस विषय पर कुछ ठोस काम किया जाए।

प्रजनन जैसे बेहद निजी और नाजुक मामले में हस्तक्षेप करने के लिए निहायत ज़रूरी है कि स्थानीय लोगों, खासकर बहुजन समाज, का हम पर भरोसा होना। आम लोगों को ऐसा नहीं लगना चाहिए कि हम उनके परिवार की महिलाओं, लड़कियों व युवकों को 'बिगाड़' रहे हैं। यहां हमें 'किशोर भारती' संस्था द्वारा निर्मित परिवर्तनकामी माहौल से बहुत मदद मिली। 'किशोर भारती' संस्था सन् 1972 से 1991 तक होशंगाबाद ज़िले (मध्य प्रदेश) के पूर्वी छोर पर बनखेड़ी प्रखंड के पलिया पिपरिया गांव और आस–पास के इलाके में सक्रिय थी। 'किशोर भारती' ने कृषि व सिंचाई विकास, युवा चेतना प्रशिक्षण, जनस्वास्थ्य और ज़िले के लगभग 300 सरकारी मिडिल स्कूलों में 'होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम' व स्कूलों के बाहर जनशिक्षण के कई प्रयोग किए, पुस्तकालय–सह–दस्तावेज केंद्र स्थापित किया और गांव स्तर पर साइकिल पर सचल पुस्तकालय चलाए। पलिया पिपरिया गांव के शोषित तबकों व जातियों को सामंती उत्पीड़न के खिलाफ़ सचेत करके मज़दूर संगठन का गठन किया जिसने अपनी संगठित ताकत के बल पर लाख उत्पादन और बारहमासी जंगल जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर जनवादी नियंत्रण की मिसाल कायम की।

'होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम' का प्रदेश–स्तरीय विस्तार करने व उसमें निहित शिक्षाशास्त्रीय या व्यावहारिक सीमाओं का हल निकालने और सामाजिक विज्ञान व भाषाई शिक्षण में भी बदलाव करने के उद्देश्य से सन् 1982 में 'एकलव्य' नामक संस्थान का निर्माण किया। सन् 1983 में पिपरिया कस्बे में 'शहीद भगत सिंह पुस्तकालय एवं सांस्कृतिक केंद्र' शुरू किया जिसके माध्यम से विभिन्न राजनीतिक, शैक्षिक व सामाजिक–सांस्कृतिक मुद्दों पर चर्चाओं व अन्य कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता था। सन् 1983–84 में 'किशोर भारती' समूह ने देश की शिक्षा नीति में जनवादी बदलाव लाने के मकसद से 'राष्ट्रीय शिक्षक आयोग' की विचारधारा एवं कामकाज के गैर–वैज्ञानिक व जनविरोधी तौर–तरीकों पर सार्वजनिक बहस खड़ी करके नीति–निर्माताओं पर व्यापक

जन–दबाव बनाया। इन सभी कार्यक्रमों का प्रमुख उद्देश्य समाज में व्याप्त गरीबी, शोषण–दमन, भेदभाव और विषमता के मूल कारणों को समझना और उनके आर्थिक–सामाजिक अंतर्विरोधों से जूझने के तरीके खोजना रहा था। कोई भी काम उठाने के पीछे 'किशोर भारती' समूह की यह समझ थी कि अपने हरेक अनुभव का वैज्ञानिक विवेचन किया जाए ताकि इससे हमेशा कुछ सामान्य सिद्वांत निकलें जिनका समाज में पुरोगामी परिवर्तन के लिए व्यापक फलक पर इस्तेमाल किया जा सके।

'किशोर भारती' के विभिन्न कार्यक्रमों व उनसे उभरे पलिया पिपरिया गांव के मज़दूर संगठन व अन्य समूहों की महिलाओं के साथ डॉ. मीरा सद्‌गोपाल (स्त्री रोग व प्रसूति विशेषज्ञ) की उनके स्वास्थ्य से संबंधित चर्चाएं स्वाभाविक तौर पर हुआ करती थीं। इस तरह की चर्चाओं में अक्सर महिलाओं के सामान्य स्वास्थ्य और खासकर प्रजनन स्वास्थ्य की समस्याएं लगातार उठती रहती थीं। इसी संदर्भ में सन् 1982–84 के दौरान पलिया पिपरिया व माल्हनवाड़ा गांवों में बाल मृत्यु का एक सघन अध्ययन किया गया व उसकी 'झड़ते फूल' नामक रपट जारी की गई। गांव के दलित–आदिवासियों, मुस्लिमों व 'अन्य पिछड़े वर्गों' (ओबीसी) के बीच ऐसी मान्यता थी कि जितने बच्चे पैदा होते हैं या गर्भ में आते हैं, ज़रूरी नहीं कि उनमें से सभी जीवित रह जाएं। महिलाओं ने इसकी तुलना फूलों से की थी कि "फूल तो झड़ते ही हैं", यानी जितने बच्चे पैदा होते हैं उनमें से कुछ का मर जाना आम बात है। निःसंदेह, यह मान्यता कुपोषण व जनस्वास्थ्य सुविधाओं जैसी बुनियादी ज़रूरतों के नीतिगत अभाव पर पर्दा डालती है और गरीबी के मूल कारणों को नज़रअंदाज करके सरकार (केंद्र व राज्य दोनों) को राहत देती है।

पलिया पिपरिया गांव के मज़दूर संगठन की महिलाओं के साथ मिलकर रोज़मर्रा की ज़रूरतों – जैसे सिरदर्द, हाथ–पैरों में दर्द, उल्टी–दस्त, रतौंधी, लौहतत्व (आयरन) की कमी आदि – के लिए सस्ती व गांव में ही उपलब्ध ज़रूरी दवाइयां मुहैय्या कराने के उद्देश्य से हर शुक्रवार को 'ज़रूरी दवाई सुविधा' शुरू की गई। बाकी दिनों में ये दवाइयां गांव की ही एक थोड़ी–बहुत पढ़ी–लिखी और प्रशिक्षण–प्राप्त महिला के पास रहती थीं जहां से कभी भी ली जा सकती थीं। छोटी–सी लगनेवाली इस गतिविधि ने शोषित तबकों, खासतौर पर महिलाओं को बड़ी राहत दी। पहले पलिया पिपरिया गांव से 6 किलोमीटर दूर बनखेड़ी प्रखंड मुख्यालय जाकर दवा लानी पड़ती थी और वह भी महंगी 'ब्रांडेड' दवाएं। ऐसे माहौल में लगातार होनेवाली चर्चाओं से महिलाओं की परेशानियां साफ़तौर पर उभर रही थीं कि प्रजनन के बारे में जानकारी की कमी और प्रजनन से जुड़े

समाज के पितृसत्तात्मक रीति–रिवाज़, परंपराएं व अंधविश्वास उनके जीवन को और भी मुश्किल बना देते हैं।

इस पृष्ठभूमि में सन् 1987–89 में 'किशोर भारती' ने होशंगाबाद ज़िले के बनखेड़ी प्रखंड में 'प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम' संचालित किया। यह कार्यक्रम पलिया पिपरिया व नज़दीक के तिंदवाड़ा गांवों और पिपरिया कस्बे की महिलाओं के साथ शुरू हुआ लेकिन जल्द ही जिज्ञासु और संवेदनशील पुरुष भी इसमें जुड़ते गए। मध्य प्रदेश और अन्य राज्यों में भी इस संदर्भ में विभिन्न जानकार लोगों से कई दौरों में सलाह–मशविरा चलता रहा। सन् 1987 में 'किशोर भारती' से डॉ. मीरा सद्‌गोपाल एवं डॉ. साधना सक्सेना ने मिलकर इस विषय पर एक समीक्षात्मक परचा लिखा – 'प्रजनन जागरूकता और प्राकृतिक जन्म नियंत्रण . . . परिवार नियोजन से आगे'। इस परचे पर विभिन्न महिला संगठनों व मुद्दे पर रुचि रखनेवाले 'मेडिको फ्रेंड सर्कल' के डॉक्टरों के साथ भी विचार–विमर्श हुआ।

पितृसत्तात्मक समाज में प्रजनन का विषय 'सिर्फ़ महिलाओं' का है, ऐसी सोच होने के कारण पर्दे के अंदर रहा है और महिलाओं की तरह ही उपेक्षित भी। इस तरह के विषयों को शब्द व भाषा देना, इनको हिचक, लज्जा व चुप्पी के दायरे से बाहर निकालना, अंधविश्वास से मुक्त करना, इस मसले में पुरुषों की भूमिका को नए सिरे से परिभाषित करना और बहुजन समाज की अभिव्यक्ति बढ़ाने के लिए बातचीत का एक लहज़ा विकसित करना, अपने आप में भारतीय भाषाओं में नारीवादी विमर्श को एक नया आयाम देने जैसा है। जीवन के इस महत्वपूर्ण पहलू को एक नए नज़रिए से देखने, सोचने, समझने और संवाद को परिवर्तनकामी विमर्श में बदलने के लिए 'प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम' ने ग्रामीण और कस्बाई दोनों स्तरों पर एक ऐतिहासिक पहल की।

उक्त कार्यक्रम का यह शुरूआती चरण मुख्यतः प्रजनन व उससे जुड़े बिंदुओं पर आम समाज में प्रचलित मान्यताओं, ज्ञान और परंपराओं की खोजबीन के लिए था। इस सांस्कृतिक व सार्वजनिक स्वास्थ्य–संबंधी खोजबीन के दौरान इससे जुड़े अन्य कई प्रश्न उभरते चले गए। इन प्रश्नों ने और भी जानने एवं महिलाओं के साथ गहन संवाद बनाने की स्थितियां खड़ी कीं। सरकारी नीतियों एवं उनके अनुभवों के विश्लेषण से निकलकर आ रहा था कि परिवार नियोजन की सारी ज़िम्मेदारी महिलाओं पर ही थोपी और सीमित की जा रही है। स्पष्ट था कि सरकार और पितृसत्तात्मक समाज ने बढ़ती जनसंख्या की

तथाकथित 'समस्या' से निज़ात पाने के बहाने कुल–मिलाकर महिलाओं को ही अपना 'शिकार' बनाया है और पुरुषों की ज़िम्मेदारी को नज़रंदाज किया गया है।

वर्तमान में तेज़ी से बढ़ते बाज़ारीकरण व उपभोक्तावाद ने महिलाओं के सामने पहले के मुकाबले कहीं ज्यादा बड़ी और नई चुनौतियां खड़ी कर दी हैं। एक ओर, सामान बेचने के लिए मीडिया में उसके शरीर का इस्तेमाल लगातार बढ़ रहा है और बदन के कपड़े कम से कमतर होते जा रहे हैं। वहीं दूसरी ओर, आए दिन अखबारों में पढ़ने को मिलता है कि फलां स्कूल/कॉलेज ने छात्राओं के जींस/स्कर्ट पहनने पर पाबंदी लगा दी है। यह विडंबना है कि बाज़ारीकरण के दौर में एक तरफ़ तो महिलाओं को 'बिकाऊ माल' के रूप में देखने का नज़रिया और मजबूत हुआ है, वहीं दूसरी तरफ़ उनके प्रति परंपरागत पितृसत्तात्मक सोच का बंधन भी। तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि पहले के मुकाबले आज अधिकांश महिलाएं काम के लिए घरों से बाहर निकल रही हैं, गैर–पारंपरिक पेशे अपना रही हैं व नई भूमिकाओं में आ रही हैं। लड़कियां कुछ हद तक अपने जीवन के फ़ैसले खुद ले पा रही हैं। छोटा ही सही पर ऐसा युवा वर्ग भी उभर रहा है जो महिला–पुरुष के समान सामाजिक दर्जे में यकीन रखता है और खुद को बदलने की कोशिश कर रहा है।

उपरोक्त दोनों ही हालात में प्रजनन से संबंधित जानकारी व अनुभवों को नारीवादी[4] विचारधारात्मक परिप्रेक्ष्य और आज की नवउदारवादी आक्रामक नीतियों के संदर्भ में रखते हुए एक बार फिर सबके लिए उपलब्ध कराने की ज़रूरत है। 'प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम' के तहत जो भी साहित्य इकट्ठा हुआ था उसे केवल कार्यक्रम से जुड़े लोगों के लिए ही नहीं वरन् व्यापक तौर पर सभी लोगों को उपलब्ध कराने के उद्देश्य से 'किशोर भारती' ने मार्च 1990 में 'जंजीरों को तोड़कर' नामक पुस्तक प्रकाशित की। अपने काम के दौरान 'जंजीरों को तोड़कर' पुस्तक के अनुभवों व जानकारी को महिला समूहों व महिला कार्यकर्ताओं के साथ हमने अक्सर बांटा है। सन् 1990 के दशक में पश्चिमी उत्तर प्रदेश और सन् 2000 के दशक में उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र की ग्रामीण महिलाओं के साथ भी इस पुस्तक को साझा करने की प्रक्रिया जारी रही। हर बार इस पर गहरी चर्चाएं होती हैं और महिलाएं इसे अपने जीवन से जोड़कर देख पाती है। नारीवादी नज़रिए के अनुसार इस बात को भी स्थापित करना ज़रूरी है कि प्रजनन से

---

[4]नारीवाद, पितृसत्ता द्वारा महिला–पुरुष के बीच बनाई गई गैर–बराबरी को खत्म करने तथा महिला को पुरुष की ही तरह इंसान समझने के संघर्ष की विचारधारा है। या यूं कहें, महिला का अपने शरीर व जीवन पर स्वयं का नियंत्रण व अधिकार कायम करने और समाज में समानता पाने का संघर्ष ही नारीवाद है।

जुड़ी जानकारी को जानना–समझना केवल महिलाओं के लिए ही नहीं बल्कि पुरुषों के लिए भी उतना ही आवश्यक है।

पिछले 25 सालों में वैश्वीकरण के तहत जाति व्यवस्था पर टिकी हुई पितृसत्तात्मक धारणाएं और मजबूत हुई है। एक ओर अमीर–गरीब के बीच चौड़ी होती खाई और गैर–बराबरी को न्यायोचित ठहराने के लिए माल्थस के 'जनसंख्या विस्फोट' के पुराने जिन को बोतल से बार–बार निकालकर मीडिया की नई चाशनी में परोसा जा रहा है। इसका मकसद गैर–बराबरी के खिलाफ़ उठ रहे विश्वव्यापी विमर्श व संघर्षों को 'जनसंख्या नियंत्रण' के मिथक में भटकाना है। वहीं दूसरी ओर, प्रजनन–संबंधी ज्ञान का भी बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियों व सेहत के नए धंधे की तर्ज़ पर बाज़ारीकरण और जिंसीकरण किया जा रहा है। इस तरह आम लोगों, खासकर महिलाओं, को गैर–वैज्ञानिक जानकारियों व अंधविश्वासों से उपजे भ्रमजाल में उलझाया जा रहा है। ज़ाहिर है कि यह महिलाओं का अपने शरीर व प्रजनन तंत्र पर बचा–खुचा नियंत्रण भी छीनकर वैश्विक पूंजी व बाज़ार के हवाले करने की साजिश है। इस पृष्ठभूमि में 'किशोर भारती' संस्था ने अपनी 25 साल पुरानी 'जंजीरों को तोड़कर' उक्त पुस्तक को संपादित करके दोबारा प्रकाशित करने का फ़ैसला लिया है।

दोबारा प्रकाशित इस पुस्तक के **खंड एक** में जानी–मानी अमरीकी नारीवादी चिंतक **प्रो. एलिज़ाबेथ (बेट्सी) हार्टमान** की प्रसिद्ध पुस्तक 'रिप्रोडेक्टिव राईट्स एंड रांग्स : द ग्लोबल पॉलिटिक्स ऑफ़ पॉपुलेशन कंट्रोल' यानी 'प्रजनन के सच और भम्र : जनसंख्या नियंत्रण की वैश्विक राजनीति' (जनवरी 1987) के तीन आलेखों को शामिल किया गया है। इन आलेखों में बढ़ती जनसंख्या के मुद्दे को नारीवादी नज़रिए से समझने की तार्किक कोशिश की गई है। प्रो. हार्टमान अपने लेखन में माल्थस की 'जनसंख्या विस्फोट' वाली धारणा का बहुआयामी व सटीक विश्लेषण करके हमें पूंजीवादी हकीकत से रूबरु कराती हैं। वे समाज के हाशिए पर धकेले गए शोषित व उत्पीड़ित लोगों के नज़रिए से जनसंख्या के सवाल पर अपनी बात रखती हैं और जनसंख्या को इतनी विकराल 'समस्या' के रूप में पेश करने के पीछे की सोची–समझी पूंजीवादी व पितृसत्तात्मक राजनीति को बखूबी उजागर करती हैं।

खंड दो में महिलाओं की दोयम दर्जे की सामाजिक स्थिति के कारण जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रमों का पूरा दबाव महिलाओं पर डालने के मुद्दे पर ध्यान फ़ोकस किया गया है। पुरुष न नसबंदी कराना चाहता है और न ही खुद गर्भनिरोधकों का उपयोग। इसलिए

ज्यादातर गर्भनिरोधक महिलाओं के लिए ही बनाए जाते रहे हैं। इस बात की भी परवाह नहीं की जाती है कि इन गर्भनिरोधकों को लेने से महिलाओं के शरीर व मानसिक स्थिति पर कोई बुरा असर तो नहीं हो रहा है। महिलाओं को गर्भनिरोधकों की नारीवादी नज़रिए से वैज्ञानिक जानकारी होगी तो काफ़ी हद तक वे अपने जीवन को सुरक्षित रखने के लिए संघर्ष कर पाएंगी, इस विश्वास से खंड दो में गर्भनिरोधकों के बारे में आर्थिक व सामाजिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया गया है। **डॉ. सी. सत्यमाला** ने 'गर्भनिरोध के विकल्प : सुरक्षा बनाम कारगरता' नामक आलेख में तत्कालीन 'राष्ट्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रम – संशोधित रणनीति' के तहत गर्भनिरोधकों – खासकर, नसबंदी व हार्मोन–आधारित स्त्री गर्भनिरोधकों – की 'कारगरता' को जबरन 'सिद्ध' करने के नीतिगत दुराग्रह को रेखांकित किया है। इस दुराग्रह के मद्देनज़र वे आंकड़ों के ज़रिए उजागर करती हैं कि इन 'घुसपैठी' स्त्री गर्भनिरोधकों का महिलाओं के स्वास्थ्य पर किस तरह का नकारात्मक असर हो सकता है। इसके पक्ष में वे यूनाइटेड किंगडम (इंग्लैंड), अमरीका व हांगकांग के अध्ययनों का हवाला देती हैं। आलेख में दिए आंकड़ों से पता चलता है कि प्रजनन की ऊंची दर के जोखिम के बावजूद गर्भपात की सुविधा के साथ कंडोम (निरोध) जैसा 'अवरोध गर्भनिरोधक' सबसे सुरक्षित तरीका है, न कि 'घुसपैठी' हार्मोन–आधारित गर्भनिरोधक या नसबंदी जैसी चीरफाड़ की विधि। अंत में लेखिका परिवार नियोजन नीति में निहित महिलाओं के स्वास्थ्य के प्रति गैर–संवेदनशील सोच पर सवाल उठाती हैं और बदलाव की मांग करती हैं। **डॉ. मनीषा गुप्ते** 'गर्भनिरोध की नारीवादी समझ' नामक अपने आलेख में गर्भनिरोध की राजनीति को नारीवादी नज़रिए से देखने का आग्रह करते हुए स्पष्ट करती हैं कि गर्भनिरोधकों के चयन में पुरुषों का नज़रिया तो महज यही होता है कि इनसे महिलाओं की यौनिक उपलब्धता बढ़ा दी जाए। आगे, उनका सवाल है कि स्त्री गर्भनिरोधक, महिलाओं के लिए प्रजनन स्वास्थ्य एवं यौनिकता पर अपना नियंत्रण स्थापित करने में किस हद तक मददगार होते हैं, खासकर जबकि चिकित्साशास्त्र में ज्ञान उत्पादन और बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियों के नियंत्रण पर पुरुषों का वर्चस्व है। इन हालात में डॉ. गुप्ते का आलेख महिलाओं के लिए उपलब्ध विकल्पों पर भी आकलन पेश करता है। **डॉ. कामाक्षी भाटे** ने 'हमारी सामूहिक चिंता' नामक आलेख में कोस्टारिका (मध्य अमरीका का देश) में 'महिला और स्वास्थ्य' विषय पर मई 1987 में आयोजित पांचवें अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन की रपट पेश की है जिसमें उनके द्वारा वहां प्रस्तुत 'लिंग निर्धारण परीक्षण : भारतीय महिला आंदोलन की नई चुनौती' नामक परचे का भी ज़िक्र है। उक्त सम्मेलन में तीन प्रमुख मुद्दे थे यथा, जनसंख्या नीति और नई प्रजनन तकनीकें; महिला और सामुदायिक स्वास्थ्य; एवं महिलाएं और दवाइयां। इन

पर पेश विभिन्न परचों व बहसों का विवरण देते हुए डॉ. भाटे की रपट बताती है कि किस प्रकार उत्तरी, मध्य व लातिनी अमरीका, अफ़्रीका, यूरोप, एशिया और कैरीबियन की महिलाएं जनसंख्या नियंत्रण के नाम पर उनके खिलाफ़ की जा रही हिंसा से जूझ रही हैं और अपनी–अपनी सरकारों से नीतिगत बदलाव की पुरज़ोर मांग कर रही हैं।

इसी क्रम में **प्रो. बेट्सी हार्टमान** ने 'अवरोध गर्भनिरोधक और प्राकृतिक परिवार नियोजन' एवं 'तराशना गर्भनिरोधक तकनीक को' नामक अपने दो आलेखों में गोली, बच्चेदानी के अंदर डालने वाले साधनों (कॉपर–टी, लूप आदि), इंजेक्शन और इम्पलांट (त्वचा के नीचे रखी जाने वाली गोली) जैसे मुख्यतः हार्मोन–आधारित स्त्री गर्भनिरोधकों की लैंगिक स्वास्थ्य और स्त्री रोगों के संदर्भ में विधिवत जांच–पड़ताल करते हुए गहरे सवाल उठाए हैं। इनकी तुलना में वे विकल्प बतौर महिला स्वास्थ्य के नज़रिए से कहीं ज्यादा सुरक्षित शुक्राणु नाशक, कंडोम (निरोध), डायफ़्राम, ग्रीवा टोपी आदि 'अवरोध गर्भनिरोधकों' को पेश करती हैं जिनको सरकारों, कंपनियों और अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों ने नज़रअंदाज़ किया है। आंकड़ों के आधार पर वे आग्रहपूर्वक स्पष्ट करती हैं कि स्वास्थ्य–संबंधी जोखिमों के बावजूद तकनीकी रूप से परिष्कृत गर्भनिरोधकों यथा, गोली, आई.यू.डी., इंजेक्शन और नसबंदी आदि के विकास, उत्पादन और बढ़ावा देने में अरबों डॉलर बहाए गए जबकि निरापद और आसान 'अवरोध विधियों' की लगभग उपेक्षा की गई। इसी तर्ज़ पर प्रो. हार्टमान मासिक चक्र में उर्वर और अनुर्वर समयावधियों की पहचान पर टिके हुए प्राकृतिक परिवार नियोजन (प्रा.प.नि.) कार्यक्रम की समीक्षा के ज़रिए साबित करती हैं कि 'अवरोध गर्भनिरोधकों' के समान ही प्रा.प.नि. भी जनसंख्या एजेंसियों की उपेक्षा का शिकार रहा है क्योंकि इसमें दवा कंपनियों और चिकित्सा जगत को कोई मुनाफ़ा मिलने की संभावना नहीं है। गर्भनिरोधक टेक्नोलॉजी गढ़नेवाली ताकतवर पूंजीवादी एजेंसियों के बारे में उनका कहना है कि वे उन महिला–पुरुषों से बहुत दूर हैं जो इसका इस्तेमाल करते हैं जिसके चलते टेक्नोलॉजी उन व्यक्तियों की ज़रूरत के अनुरूप नहीं बल्कि इसके निर्माताओं के पूर्वाग्रहों व ज़रूरतों के हिसाब से बनाई जाती है। लेखिका का निष्कर्ष है कि गर्भनिरोधक क्रांति लोगों की ज़रूरत की अपेक्षा जनसंख्या नियंत्रण, अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों की प्रतिष्ठा और कारपोरेट मुनाफ़े के लालच से ज्यादा प्रभावित रही है। इसलिए नारीवादी नज़रिए से अगली गर्भनिरोधक क्रांति तभी हो पाएगी जब इसकी शुरूआत मूल्यों में क्रांति से होगी।

खंड दो में ही **डॉ. रानी बंग व अन्य** ने 'भारत की ग्रामीण महिलाओं में लैंगिक बीमारियों की ऊंची दर' नामक परचे में महाराष्ट्र के दो गांवों के अपने अध्ययन में स्त्री रोग होने

और स्त्री गर्भनिरोधक के इस्तेमाल के बीच के संबंध दिखाते हुए ज़मीनी आंकड़े पेश किए हैं। इस अध्ययन के आधार पर यह परचा ज़ोरदार पैरवी करता है कि विकासशील देशों के ग्रामीण इलाकों में स्त्री रोग व लैंगिक स्वास्थ्य व्यवस्था, प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधा का ज़रूरी अंग होना चाहिए।

अंततः यह खंड स्थापित करता है कि पूंजीवाद के तहत लागू की गई जनसंख्या नियंत्रण नीतियों और इनकी वजह से बढ़ रही महिला–विरुद्ध हिंसा के खिलाफ़ विभिन्न देशों में चल रहा महिला आंदोलन एक साझा विश्वव्यापी आंदोलन है।

खंड तीन में शामिल 'किशोर भारती' संस्था के 'प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम' के बारे में **डॉ. मीरा सद्‌गोपाल** की दो रपटों के माध्यम से कार्यक्रम का मैदानी स्वरूप, उसकी चुनौतियां, सीमाएं और नए सवाल/स्थितियां उभरकर आई हैं। इन रपटों में कार्यक्रम के दौरान माहवारी, गर्भावस्था, जचकी (प्रसूति), गर्भनिरोधक दवाइयां, गर्भजल परीक्षण, नसबंदी ऑपरेशन (स्त्री–पुरुष), यौन इच्छा (सभी स्त्री–पुरुषों की), महिलाओं का शोषण, बलात्कार, अनचाहा गर्भ, गर्भपात, बच्चे न होना (बांझपन), यौन रोग, प्रजनन के मामले में पुरुषों की भी ज़िम्मेदारी, पति–पत्नी का संबंध, स्वास्थ्य सुविधाएं (शासकीय व निजी) और इन सबके प्रति समाज का रवैया, रीति–रिवाज़, मान्यताएं व परंपराएं जैसे जो तमाम बिंदु उभरे थे, उनका विस्तृत ब्यौरा है। इसी खंड में कार्यक्रम के दौरान ज़मीनी अनुभवों के आधार पर स्थानीय **'प्रजाका समूह'** द्वारा बुंदेलखंडी भाषा में विकसित व चित्रित 'बाइयों काजे धात चीन्हबे की किताब' भी शामिल है। 'प्रजनन की समझ और प्रजनन जागरूकता को जन्म–नियंत्रण का एक तरीका मानने का वैज्ञानिक आधार' नामक आलेख में **डॉ. कैरन हैडॉक** ने चित्रों के माध्यम से बहुत ही सरल व सहज भाषा–शैली में महिलाओं के प्रजनन अंगों, माहवारी चक्र, बच्चे कैसे बनते हैं आदि के बारे में वैज्ञानिक जानकारी दी है। यह ऐसी जानकारी है जिसकी मदद से महिलाएं न केवल प्रजनन तंत्र को समझ सकती हैं बल्कि अपने शरीर पर अपना नियंत्रण भी रख सकती हैं। यह जानकारी पुरुषों के लिए भी महत्वपूर्ण है चूंकि इससे वे महिलाओं को एक नए समतामूलक नज़रिए से देख व समझ पाएंगे।

खंड तीन में ही **डॉ. साधना सक्सेना** ने 'प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम' की 'राष्ट्र–स्तरीय कार्यशाला, 25–29 मार्च 1989' रपट में कार्यक्रम का परिचय, कार्यशाला के उद्देश्य एवं उसके बिंदुवार विषयों का न केवल विस्तृत ब्यौरा दिया है बल्कि विश्लेषण भी पेश किया है। इसमें माहवारी, उर्वरता और यौनिकता; महिला स्वास्थ्य; गर्भपात व

गर्भनिरोध; और धातक्रम जैसे विषय शामिल हैं और प्रजनन के मुद्दे को नारीवादी नज़रिए से प्रस्तुत किया गया है। इन सबके वैज्ञानिक और सामाजिक पहलू व जनसंख्या जैसे मुद्दे जो विश्वस्तरीय हैं, उन पर आयोजित दो राज्य–स्तरीय व एक राष्ट्र–स्तरीय कार्यशालाओं में हुई चर्चाओं का भी सार है। रपट में पुरुष सहभागियों के अनुभव शामिल हैं जो इस बात को स्वीकारते हैं कि प्रजनन की वैज्ञानिक जानकारी के बिना न केवल महिलाओं को वरन् खुद (पुरुषों) को भी समझना असंभव है। पुरुषों ने लैंगिक द्वंद्व को वर्ग, जाति व अन्य द्वंद्वों के संदर्भ में समझने की कोशिश की और स्वीकारा कि उनकी भी पितृसत्ता के खिलाफ ऐतिहासिक संघर्ष में ज़रूरी भूमिका है।

यहां यह स्पष्ट करना ज़रूरी है कि आंकड़ों की दृष्टि से यह पुस्तक 'अपटेड' नहीं की गई है। ऐसा इसलिए चूंकि लगभग 25 साल पहले लिखे गए ये आलेख, जिन आंकड़ों के सहारे जनसंख्या वृद्धि और संसाधनों की कमी के मिथक एवं जनसंख्या नियंत्रण के बहाने गर्भनिरोधकों को महिलाओं पर थोपने की नीति को उजागर करते हैं, वे तमाम मुद्दे आज भी जस–के–तस खड़े हुए हैं। अतः नवीनतम आंकड़ों को यहां प्रस्तुत करके उन आलेखों के मूल तर्कों को प्रभावित करना ज़रूरी नहीं लगा। निःसंदेह, ये आलेख अपने मूल रूप में ही पितृसत्तात्मक नज़रिए और जनसंख्या वृद्धि व नियंत्रण के बारे में फैलाए जा रहे तमाम मिथकों को तोड़ने में मददगार होंगे।

हमें उम्मीद है कि पूंजीवाद के इस निहायत खतरनाक नवउदारवादी दौर में सभी तरह की विषमताओं, खासकर भारत में वर्ग और जाति व्यवस्था पर टिकी हुई पितृसत्ता, के खिलाफ़ संघर्ष कर रहे जनवादी संगठनों/समूहों व समाजकर्मियों के हाथ में यह पुस्तक एक ताकतवर औज़ार की भूमिका निभा पाएगी।

आपकी प्रतिक्रिया व सुझावों का इंतज़ार रहेगा।

23 मार्च 2016 — शशि मौर्य
शहीद भगत सिंह शहादत दिवस

ईमेल – shashimourya1952@gmail.com

खंड – एक

बढ़ती जनसंख्या : महिलाओं पर बढ़ता दबाव

प्रजनन : हक और हकीकत[5]

— प्रो. बेट्सी हार्टमान

अति जनसंख्या का मिथक समाज पर इस कदर हावी है कि यह वर्तमान संस्कृति के विश्व दर्शन को गहराई से प्रभावित करता है। इस मिथक की ताकत इसकी सहजता है। ज्यादा लोगों का मतलब कम संसाधन और ज्यादा गरीबी, ज्यादा भूख और राजनीतिक अस्थिरता मान लिया जाता है। यह समीकरण संपन्नता के सुरक्षित दायरे के बाहर उस 'दूसरी' दुनिया में मानवपीड़ा की व्याख्या करने के लिए बहुत मददगार हो जाता है। यह स्वीकार लिया गया है कि प्रजनन से गरीब खुद अपनी गरीबी पैदा करते हैं।

जनसंख्या का मुद्दा जटिल है। इसको सही परिप्रेक्ष्य में रखने के लिए मानव अनुभवों के कई आयामों की खोजबीन करनी होगी और कई मुश्किल, दार्शनिक व नैतिक सवालों का सामना करना होगा। इसमें निहित है कि ऐसे विचारों के बीच कड़ी जोड़नी होगी जो अकादमिक विशेषज्ञता की संकीर्णता के चलते बिखर गए हैं। इसके लिए आलोचनात्मक सोच को पैना करना होगा और दिमाग से रूढ़ियों को निकालना होगा और सबसे ज्यादा तो 'जनसंख्या बम' एवं 'जनसंख्या विस्फोट' जैसे जुमलों से पैदा होने वाले अलगाव से ऊपर उठना होगा। ऐसी उपमाओं से विनाशकारी तकनीकी प्रक्रियाओं का आभास होता है, जो कि मूलतः मानव नियंत्रण से परे हैं। जनसंख्या का मुद्दा 'भीड़' का नहीं वरन् हर व्यक्ति की ज़िंदगी का मुद्दा है। संभवतः हमें इस बात का अहसास ही न हो कि इसका हमसे कोई सरोकार भी है।

'तीसरी दुनिया' की समस्याओं का कारण अति आबादी है, इस विश्वास का पश्चिम में बूमरेंजनुमा[6] असर हुआ है। जल्दी–से–जल्दी और असरकारी ढंग से जन्मदर घटाने के उद्देश्य से जुटे हुए गर्भनिरोधक उद्योग ने स्वास्थ्य और सुरक्षा की उपेक्षा की है। पश्चिम की महिलाएं जिनके शरीर में गर्भ निवारक गोलियों के कारण खून के थक्के बन गए या आई.यू.डी. के कारण बांझ हो गई या बिना उनकी मर्ज़ी के जिनके नसबंदी ऑपरेशन किए गए, या जिन्हें गर्भनिरोधक उपायों के खतरों व हानिकारक असरों के बारे में पूरी जानकारी नहीं दी गई, वे सभी जनसंख्या नियंत्रण की उतनी ही शिकार हैं जितनी कि

---

[5]'रिप्रोडक्टिव राईट्स एंड रांग्स : . . .' (जनवरी 1987) से साभार। मूल अंग्रेजी से अनुवाद : डॉ. सुशील जोशी।
[6]ऑस्ट्रेलिया के आदिवासियों का एक ऐसा हथियार जो पलटकर मारने वाले के पास वापिस पहुंच जाता है।

तीसरी दुनिया की उनकी बहनें। यह वह कड़ी है जो जंजीर को पूरा करके जनसंख्या के मुद्दे को वापिस हमारे करीब ले आती है।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि जनसंख्या नियंत्रण को सबसे शक्तिशाली और सकारात्मक चुनौती नारीवादी आंदोलन ने दी है। यह हर महिला के हित में है कि गर्भनिरोधक के निरापद उपाय उसे मिल सकें और स्वास्थ्य व परिवार नियोजन की ऐसी सेवाएं उपलब्ध हों जो ये उपाय उसे मुहैय्या करा सकें। परंतु जनसंख्या नियंत्रण का लक्ष्य यह नहीं है बल्कि ठीक इससे उल्टा है।

अति आबादी का मिथक विनाशकारी है क्योंकि यह प्रजनन के मुद्दों पर रचनात्मक सोच और कार्रवाई में रुकावट डालता है। इन मुद्दों पर हमारी समझ साफ करने की बजाय यह हमारी दृष्टि को संकुचित करता है और वास्तविक समस्या को देखने और उनके व्यवहारिक हल ढूंढने की क्षमता को सीमित करता है।

सतही तौर पर जनसंख्या संबंधी आंकड़े जनसंख्या विस्फोट की आशंका को सही ठहराते हैं। बीसवीं सदी में दुनिया की आबादी में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। सन् 1900 में दुनिया की आबादी 1.7 अरब थी, 1950 में यह 2.5 अरब हो गई और आज दुनिया में करीब 5 अरब लोग रहते हैं। इनमें से तीन–चौथाई लोग तीसरी दुनिया में निवास करते हैं। राष्ट्र संघ का अनुमान है कि शताब्दी के अंत में विश्व जनसंख्या 6 अरब हो जाएगी और अंततः सन् 2110 में 10.5 अरब पर पहुंचकर स्थिर हो जाएगी। हालांकि ऐसे दीर्घकालीन जनसंख्या अनुमानों के गलत होने की बहुत संभावना है।

प्रारंभ में यह वृद्धि बहुत ही सकारात्मक कारणों से हुई – चिकित्सा विज्ञान और सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं में प्रगति और बेहतर पोषण का मतलब था कि ज्यादा लोग ज्यादा समय तक जिएंगे। अधिकांश औद्योगिक देशों में घटी हुई मृत्युदर को घटी हुई जन्मदर ने संतुलित कर दिया, जिसके कारण जनसंख्या वृद्धि थमने लगी। यह प्रक्रिया जनसंख्या परिवर्तन के नाम से जानी जाती है। कई देशों में जनन क्षमता अब क्षतिपूर्ति स्तर पर पहुंच गई है और कहीं–कहीं तो जनसंख्या घट रही है।

आज सहारा रेगिस्तान से दक्षिण के अफ्रीकी देशों को छोड़कर तीसरी दुनिया के अधिकांश क्षेत्रों में जन्मदर कम हो रही है। दरअसल, विश्व जनसंख्या वृद्धि की दर 1960

के दशक के मध्य से घटने लगी है और आने वाले सालों में और अधिक तेजी से घटने की संभावना है।[7]

हालांकि विश्व जनसंख्या अभी भी बढ़ रही है परंतु 'विस्फोट' धीरे–धीरे मंद पड़ रहा है।

बहरहाल, अभी भी औद्योगिक विश्व और तीसरी दुनिया के बीच जन्मदर में काफी अंतर है। यह स्थापित तर्क है कि तीसरी दुनिया के लोगों के इतने सारे बच्चे होते जाते हैं क्योंकि वे अज्ञानी और गैर–तार्किक हैं – वे अपने यौन पर नियंत्रण नहीं रखते और 'कुत्ते–बिल्लियों की तरह बच्चे पैदा किए जाते हैं।' कुछ पाश्चात्य लोगों में अहंकार की यह भावना ही जनसंख्या समस्या पर एक सार्थक चर्चा के मार्ग में रोड़ा है। इसके पीछे मान्यता है कि सभी लोगों की सामाजिक परिस्थितियां एक समान हैं और सभी लोगों को प्रजनन विकल्पों में से चुनने की वही स्वतंत्रता उपलब्ध है। कोई भी बात सच से उतनी दूर नहीं हो सकती जितनी यह है।

तीसरी दुनिया के कई देशों में अस्तित्व के लिए बड़े परिवार का होना एक सोची समझी बुद्धिमत्तापूर्ण रणनीति है। एशिया, अफ्रीका और लातिनी अमरीका के कई देशों के खेतिहर समुदायों में बच्चों का श्रम पारिवारिक अर्थशास्त्र का काफी अहम् हिस्सा है। बच्चे खेती के कामों में हाथ बंटाते हैं, पशुओं की देखरेख करते हैं, पानी भरते हैं, ईंधन बटोरते हैं और छोटे भाई–बहनों को संभालते हैं। इस तरह वे अपने मां–बाप को अन्य कामों के लिए मुक्त कर देते हैं। बच्चे शुरू से ही पारिवारिक आय पर बोझ बनने के बजाय अपने श्रम के कारण एक पूंजी बन जाते हैं। उदाहरण के लिए, बांग्लादेश में लड़के 10 से 13 वर्ष की आयु तक पहुंचते–पहुंचते अपनी खपत से ज्यादा पैदा करते हैं और 15 साल की उम्र तक उनके द्वारा किया गया कुल उत्पादन जिंदगी भर की खपत से ज्यादा हो चुका होता है। इसी प्रकार लड़कियां भी आर्थिक रूप से कई कीमती काम करती हैं, जैसे खाना पकाने में मां की मदद और फसल कटाई के बाद के कार्य आदि।

---

[7]जन्मदर (स्थूल) – प्रतिवर्ष प्रति हजार व्यक्तियों पर जन्मों की संख्या।

मृत्युदर (स्थूल) – प्रतिवर्ष प्रति हजार व्यक्तियों पर मौतों की संख्या।

क्षतिपूर्ति स्तर जन्म – यह प्रजनन का वह स्तर है जिसमें महिलाओं की औसतन उतनी ही बेटियां होती हैं जितनी उनकी जगह लेने के लिए आवश्यक हैं।

जनसंख्या वृद्धि दर – किसी आबादी के बढ़ने या घटने की वार्षिक दर जिसे आधार जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में अभिव्यक्त किया जाए।

शहरी दुनिया में भी बच्चे अक्सर नौकर, संदेशवाहक आदि के रूप में कमाई करते हैं या घर पर रहकर छोटे भाई–बहनों को संभालते हैं ताकि मां–बाप काम कर सकें। जनसंख्याविद् जॉन काडवेल ने पाया कि नाईज़ीरिया के योरूबा समुदाय में तो कई शहरी व्यावसायिक परिवारों को भी बच्चों से 'बाल सहायता श्रृंखला' का लाभ मिलता है। जैसे ही एक बच्चा शिक्षा पूरी करके नौकरी करने लगता है तो वह अपने छोटे भाई–बहनों को शिक्षा और रोजगार पाने में मदद करता है और इस प्रकार से परिवार के संबंध और प्रभाव बढ़ते हैं।

हाल में कुछ शोधकर्ताओं ने दावा किया है कि तीसरी दुनिया के कई देशों में बाल श्रम की कीमत कम हो रही है, खासकर ग्रामीण गरीबों में। जैसे–जैसे गरीबों की जमीन कम होती जा रही है, उन्हें अब जमीन पर काम करने के लिए उतने बच्चों की ज़रूरत नहीं रही है। इसी के साथ, मजदूरी की घटती दरों के कारण भूमिहीन परिवार अब बच्चों की उस उम्र तक परवरिश नहीं कर पाते जब तक कि वे उत्पादक कार्य करने लगें। इस कारण से परिवार का वांछित आकार छोटा हो सकता है।

किंतु इस तर्क में ज्यादा बच्चों की चाहत पर एक महत्वपूर्ण कारण की उपेक्षा की गई है, वह है – सुरक्षा। तीसरी दुनिया के अधिकतर समाजों में बहुसंख्यक लोगों को इंश्योरेंस योजना, पेंशन, सरकारी सुरक्षा योजना आदि की सुविधा उपलब्ध नहीं है। उनके बच्चे ही बुढ़ापे में उनकी देखभाल करते हैं – बच्चों के बिना उनका भविष्य खतरे में होता है। बारम्बार आने वाले संकटों जैसे – बीमारी, सूखा, बाढ़, भूमि विवाद, अकाल, राजनीतिक उथल–पुथल आदि में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए वयस्क बच्चों की मदद बहुत महत्वपूर्ण होती है। ऐसे संकट दुर्भाग्यवश दुनिया के अधिकांश भागों में गांव की ज़िंदगी का आम हिस्सा हैं।

इस सबकी तुलना में औद्योगिक देशों के माता–पिता और तीसरी दुनिया में उनके समकक्ष धनी अभिजात्य माता–पिता को बच्चों पर न तो श्रम के लिए और न ही बुढ़ापे की सुरक्षा के लिए निर्भर रहना होता है। आय बढ़ने के साथ–साथ परिवार के आकार का अर्थशास्त्र भी बदलता है, और एक हद के बाद बच्चे पूंजी रहने के बजाय आर्थिक बोझ बन जाते हैं। उदाहरण के लिए, जब बच्चे स्कूल जाते हैं तब वे श्रम का स्रोत नहीं रहते बल्कि मां–बाप को उनकी शिक्षा व अन्य ज़रूरतों पर खर्च करना होता है। तीसरी दुनिया के एक गांव की तुलना में उच्च उपभोगवादी समाज में यह खर्च ज्यादा होता है। आज

अमरीका में एक बच्चे को 18 साल की उम्र तक पालने का खर्च करीब एक लाख डॉलर होता है जिसमें कॉलेज शिक्षा का खर्च शामिल नहीं है।

साथ ही साथ, औद्योगिक समाजों में व्यक्तिगत बचत पेंशन, सरकारी कार्यक्रमों आदि ने सामाजिक सुरक्षा में बच्चों की बुनियादी भूमिका को समाप्त कर दिया है। ज्यादा आय से उभरे इन सामाजिक परिवर्तनों ने बच्चों के मूल्य में बुनियादी परिवर्तन कर दिए हैं और आर्थिक दृष्टिकोण से छोटा परिवार ज्यादा युक्तिसंगत हो गया है।

बेटे की चाहत भी बड़े परिवार होने का एक कारण है। महिलाओं के दबे रहने का अर्थ है कि उस संस्कृति में लड़कियां आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से उतनी मूल्यवान नहीं समझी जाएंगी जितने कि लड़के। न सिर्फ बेटियों के घरेलू काम की इज्जत कम है, बल्कि वे अपने मां–बाप के लिए कम अवधि के लिए उत्पादक श्रम कर पाती हैं। क्योंकि तीसरी दुनिया के कई देशों में शादी के तुरंत बाद वे ससुराल चली जाती हैं। उच्च शिशु व बाल मृत्युदर[8] और बेटे की चाहत से मिलकर यह अर्थ निकलता है कि मां–बाप को ज्यादा बच्चे चाहिए ताकि कम–से–कम एक या दो बेटे जीवित रहें।

कम्प्यूटर पर गणना करने से पता चला है कि साठ के दशक में एक वयस्क बेटा होने के लिए किसी भी भारतीय जोड़े को 6.3 बच्चे पैदा करने होते थे। सहारा रेगिस्तान के दक्षिणी छोर पर स्थित नाजुक पर्यावरण क्षेत्र सहेल में यह आंकड़ा और भी ज्यादा है – वहां एक बेटे को 38 वर्ष की उम्र तक जिंदा देखने की 95 प्रतिशत संभावना के लिए 10 बच्चे पैदा करना ज़रूरी है।

दरअसल, उच्च शिशु व बाल मृत्युदर ऊंची जन्मदर के सबसे महत्वपूर्ण कारण हैं। तीसरी दुनिया में हर साल एक करोड़ बच्चे पहली वर्षगांठ से पूर्व ही मर जाते हैं। औसत शिशु मृत्युदर 90 प्रति हजार जीवित जन्म है जिसकी तुलना में औद्योगीकृत देशों में यह मात्र 20 है। अफ्रीका में स्थिति बहुत गंभीर है जहां के 16 देशों में शिशु मृत्युदर 150 प्रति हजार से ज्यादा है। ज्यादा शिशु मृत्युदर का अर्थ है कि मां–बाप आश्वस्त नहीं रह पाते कि उनके बच्चे परिवार की आय और बुढ़ापे में सहारा देने के लिए जीवित रह पाएंगे।

[8]शिशु मृत्युदर – एक साल से कम आयु के शिशुओं की मौतों की संख्या प्रति हजार जीवित जन्म प्रतिवर्ष।
बाल मृत्युदर – एक से 4 साल आयु के बच्चों की मौतों की संख्या प्रति हजार प्रतिवर्ष।

गरीब इस तरह से मौत के शिकंजे में फंस जाते हैं, जिससे उन्हें बच्चे पैदा करते रहने होते हैं ताकि कोई तो जिंदा रहे।

कई मां–बाप के लिए एक बच्चे की मृत्यु उनकी बुनियादी असुरक्षा का पैगाम होता है जिसके कारण वे वाकई जितने बच्चे चाहते हैं उससे ज्यादा की ख्वाहिश करने लगते हैं। मिस्र के एक गांव में किए गए अध्ययन से पता चला है कि जिस मां ने एक बच्चा खो दिया है वह ज्यादा जीवित बच्चों की ख्वाहिश रखती है बनिस्बत उसी समुदाय की उस मां के जिसका कोई बच्चा न मरा हो। फिलीपींस में भी ऐसे दंपत्ति कम बच्चे चाहते हैं जिनका कोई बच्चा मरा न हो।

पहली नज़र में यह लग सकता है कि शिशु मृत्यदर में कमी से जनसंख्या वृद्धि की दर बढ़ जाएगी क्योंकि ज्यादा बच्चे वयस्क उम्र तक जीवित रहेंगे। 1950 और 60 के दशक में तीसरी दुनिया में जनसंख्या का उभार इसी तरह से मृत्युदर में कमी की वजह से आया था। इसके साथ–साथ उस अनुपात में जन्म दर कम नहीं हुई थी। अनुभव ने दिखा दिया है कि एक बार मृत्युदर 15 प्रति हजार प्रतिवर्ष आ जाए (जो कि इस समय तीसरी दुनिया का औसत है) तो इसके बाद मृत्युदर में कमी से जन्मदर में इससे भी ज्यादा कमी आती है क्योंकि लोग नई जीवन संभावनाओं के साथ अपना तालमेल जमा लेते हैं। इसी के आधार पर यूनिसेफ के निदेशक जेम्स ग्रांट ने निष्कर्ष निकाला कि विरोधाभासी होने के बावजूद भी जिस 'अस्तित्व क्रांति' ने विकासशील दुनिया में शिशुओं और बच्चों की मृत्युदर आधी कर दी और प्रतिवर्ष 60 से 70 लाख शिशुओं की जान बचाई, वहीं प्रतिवर्ष करीब 1.2 करोड़ से 2 करोड़ तक जन्म भी रोकेगी।

ऊंची शिशु मृत्युदर के बने रहते आज तक किसी भी देश ने निम्न जन्मदर हासिल नहीं की है।

उच्च शिशु मृत्युदर का मूल कारण मां और बच्चे को ठीक से पोषण न मिल पाना है। गंभीर रूप से अभावग्रस्त परिस्थितियों में महिलाएं अक्सर सबसे अंत में सबसे कम खाना खाती हैं, जिसका शिशु स्वास्थ्य पर गहरा असर पड़ता है। कमजोर (कुपोषित) महिलाएं सामान्यतः कम वजन के बच्चों को जन्म देती हैं और जन्म के समय कम वजन को शिशु के लिए एक सबसे बड़ा खतरा माना गया है। इससे उसके विकास में बाधा पहुंचती है और बचपन की आम बीमारियों से मौत का जोखिम भी बढ़ जाता है। गंभीर रूप से कमजोर (कुपोषित) महिलाओं का दूध निम्न गुणवत्ता का होता है। अपने स्वास्थ्य को

नुकसान पहुंचाए बगैर बच्चे को दूध पिलाने के लिए महिला को अपनी कैलोरी व अन्य पोषक पदार्थों की मात्रा में 20 से 25 प्रतिशत वृद्धि करना होती है जो कि एक गरीब महिला के लिए असंभव है। **शिशु मृत्युदर में उल्लेखनीय कमी महिलाओं के पोषण में पर्याप्त सुधार के बगैर संभव नहीं है।**

उच्च जन्म का आखिरी (पर कम महत्व का नहीं) कारण है महिला की दोयम दर्जे की सामाजिक स्थिति। परिवार में पुरुष का वर्चस्व, पुरुष प्रधान सामाजिक रिवाज़, विकास की प्रक्रिया में से महिलाओं को व्यवस्थित रूप से वंचित रखना, उचित जन्म नियंत्रण सुविधाओं का अभाव आदि मिलकर कई महिलाओं को ज्यादा बच्चे पैदा करने पर मजबूर करते हैं। सामाजिक पर्यावरण उनके सामने कोई विकल्प नहीं छोड़ता।

जनसंख्या आंकड़ों के पीछे एक वास्तविकता छिपी है जिससे पश्चिम के ऐसे कई लोग अपरिचित हैं जिन्हें रोज यह चिंता नहीं करनी होती कि खेत में मदद कौन करेगा, बुढ़ापे और बीमारी में उनकी देखभाल कौन करेगा, उन्हें कितने बच्चे पैदा करने चाहिए ताकि कुछ वयस्क होने तक जीवित रहें। उच्च जन्मदर अक्सर एक खतरे का संकेत होता है कि लोगों का जीवन संकट में है। परंतु जनसंख्या नियंत्रण के पक्षधर तर्क को उल्टा खड़ा कर देते हैं कि लोग इतने बच्चे पैदा करके स्वयं का और आने वाली पीढ़ियों का जीवन खतरे में डाल रहे हैं। यही माल्थस के दर्शन का आधार है जिसने आज तक जनसंख्या समस्या के आयामों को परिभाषित किया है।■

जनसंख्या समस्या पर पुनर्विचार[9]

– प्रो. बेट्सी हार्टमान

कला का एक इतिहासकार एक पार्टी में मेरी तरफ मुखातिब होकर कहता है – 'आप जनसंख्या नियंत्रण पर किताब लिख रही हैं? मेरा विषय सौंदर्यशास्त्र है और मुझे लगता है कि बढ़ती आबादी ने पेरिस जैसे महान शहरों की सुंदरता नष्ट कर दी है। बाहर से आए लोगों की गंदी बस्तियां हर जगह ऊग रही हैं।'

बेबीसिटर (बच्चों की आया, पुरुष या महिला कोई भी) टी.वी. बंद करके कहता है – 'मैं सोच रहा था इस बारे में। यदि भारत में लोगों की नसबंदी न करें तो हम जनसंख्या विस्फोट से कैसे निपटेंगे?'

लेखा विज्ञान (काउंटिंग) का एक प्राध्यापक समझाता है कि दवा कंपनियां गरीब लोगों को होने वाली बीमारियों के इलाज के लिए दवाइयां बना सकती हैं परंतु बनाती नहीं क्योंकि ये लोग इतने गरीब हैं कि खरीद ही नहीं पाएंगे। 'पर शायद यह कोई ऐसी बुरी बात नहीं है क्योंकि आखिरकार यदि ज्यादा गरीब लोग जिंदा रह गए तो जनसंख्या समस्या और बढ़ जाएगी।'

एक अर्थशास्त्री, जो अमरीकी अर्थव्यवस्था के बारे में अपने क्रांतिकारी विचारों के लिए प्रसिद्ध हैं, ने मुझे यह कहकर अचंभित कर दिया कि तीसरी दुनिया के देशों के पास जनसंख्या नियंत्रण के कठोर उपाय अपनाने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। 'उनका जीवन दांव पर लगा है', उसने जोर देकर कहा।

मैं सारे लोगों से ऐसी ही प्रतिक्रिया की उम्मीद करने लगती हूं, चाहे वे कितने ही नेकनीयत और शिक्षित हों। वे मात्र उस संदेश को दोहराते हैं जो उन्होंने अखबारों में इतनी बार पढ़ा है, कक्षा में इतनी बार सुना है, टेलीविज़न पर इतनी बार देखा है कि यह बुद्धिमत्ता का दूसरा नाम बन गया है। इस संदेश ने पहली बार तब लोकप्रियता हासिल की थी जब स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के जीववैज्ञानिक पॉल एहर्लिश ने अपनी प्रसिद्ध किताब, 'दी पॉपुलेशन बॉम' (जनसंख्या बम) लिखी। उसमें उन्होंने चेतावनी दी कि मानव जाति अपनी समाप्ति का प्रजनन कर रही है और इसकी रोकथाम के लिए कठोरतम उपायों, और ज़रूरी हो तो जबरदस्ती की, सिफारिश की है। शायद 'रिप्रोडक्टिव राईट्स

---

[9]'रिप्रोडक्टिव राईट्स एंड रांग्स : . . .' (जनवरी 1987) से साभार। मूल अंग्रेजी से अनुवाद : डॉ. सुशील जोशी।

एंड रांग्स : . . .' जनवरी 1987 (प्रजनन : हक और हकीकत) के अधिकांश पाठकों का भी यही मत होगा कि – जनसंख्या बम नियंत्रण से बाहर हो गया है। जनसंख्या की चर्चा में आमतौर पर यह प्रारंभिक बिंदु होता है – और दुर्भाग्यवश अंतिम भी।

बॉक्स 1

स्तनपान की कड़ी

जनसंख्या के मुद्दे में स्तनपान की प्रासंगिकता अलग–अलग किंतु आपस में संबंधित कई पहलुओं के संदर्भ में है।

कई देशों में शिशु मृत्यदर में बढ़ोत्तरी का संबंध स्तनपान की जगह बोतल अपनाने से है। डिब्बे में बंद नुस्खों में वे एंटीबायोटिक (जीवाणु नाशक) नहीं होते जो मां के दूध में होते हैं और शिशु को बीमारी से बचाते हैं। गरीब महिलाएं प्रायः ये नुस्खे पर्याप्त मात्रा में नहीं खरीद पातीं और इसलिए बहुत ज्यादा पानी मिलाकर हल्का घोल बनाती हैं। बोतल, निप्पल और पानी को उचित तरह से जीवाणुरहित करना भी अधिकांश घरों में एक समस्या होती है। परिणामस्वरूप तीसरी दुनिया में जिन बच्चों को छह माह से कम अवधि के लिए मां का दूध पिलाया गया हो, उनके दूसरी छमाही में मरने की संभावना उन बच्चों से पांच गुना ज्यादा होती है जिन्हें ज्यादा समय के लिए स्तनपान कराया गया हो। कुल मिलाकर, **बोतल पर पलने वाले बच्चों की मृत्युदर स्तनपान करने वाले बच्चों की तुलना में करीब दुगुनी होती है।**

सन् 1982 में 22 देशों में किए गए विश्व प्रजनन सर्वे के अनुसार अभी भी अधिकांश महिलाएं स्तनपान कराती हैं – परंतु इसकी अवधि कम हो गई है। इस परिवर्तन के लिए प्रमुख रूप से नेस्ले और होम प्रोडक्ट्स जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रचार अभियान ज़िम्मेदार हैं। तगड़े, मुस्कुराते, गोरे बच्चों से सुसज्जित इश्तिहारों और स्थानीय स्वास्थ्य तंत्र में कंपनी के प्रतिनिधियों की घुसपैठ के कारण तीसरी दुनिया की महिलाएं आश्वस्त हो गई हैं कि यदि वे इन नुस्खों को अपना लें तो उनके बच्चे सेहतमंद होंगे। नुस्खों के प्रचारकों के खिलाफ़ एक अंतर्राष्ट्रीय अभियान के कारण विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अन्ततः एक स्वैच्छिक आचार संहिता लागू की जिसमें इन उत्पादों के प्रचार व विक्रय के मापदंड निर्धारित किए गए। हालांकि इस संहिता के कारण प्रचार के मामले में सुधार आया है परंतु अभी भी कंपनियां स्वास्थ्य तंत्रों के माध्यम से अपने नुस्खों को बढ़ावा दे रही हैं।

जनसंख्या परिषद् द्वारा हाल ही में तीसरी दुनिया के चार देशों में किए गए अध्ययन से पता चला है कि नुस्खा निर्माताओं के डॉक्टरों, दवा विक्रेताओं और दाइयों से नज़दीकी व्यापारिक संबंध थे और इसलिए जो महिलाएं पाश्चात्य ढंग की स्वास्थ्य व प्रसूति सुविधाओं का उपयोग करती हैं, वे ये नुस्खे जल्दी अपनाती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की संहिता निश्चय ही जोरदार नहीं है। स्तनपान का एक और प्रमुख लाभ यह है कि यह दुनिया के सबसे कारगर प्राकृतिक गर्भनिरोधकों में से एक है। इससे दुग्धस्राव अमीनोरिया होता है, यानी दूध बनने की क्रिया के साथ प्रोलेक्टिन नामक हार्मोन के स्राव के द्वारा माहवारी और अंडाणु बढ़ने की क्रिया की रोकथाम। एक महीने स्तनपान कराने से दो जचकियों के बीच की अवधि तीन सप्ताह तक बढ़

जाती है और जो महिलाएं जब बच्चा मांग करें तब दूध पिलाती हैं, उनमें तो उर्वरता की वापसी और भी ज्यादा टल जाती है।

अतः स्तनपान में कमी और किसी अन्य गर्भनिरोधक का उपयोग न करने के कारण दो प्रसूतियों के बीच का अंतर कम हो जाता है। और शिशु जन्म के बीच का अंतर कम होना स्वयं शिशु मृत्यु का एक प्रमुख कारण है। इसमें उल्टी गंगा भी बह सकती है : एक बच्चे की मृत्यु का अर्थ है कि महिला स्तनपान बंद कर देगी और उर्वरता जल्द शुरू हो जाएगी। इससे अगले बच्चे की मौत की संभावना बढ़ जाएगी। यह जैविक दुष्चक्र इस बात का प्रमुख कारण हो सकता है कि क्यों उच्च शिशु मृत्युदर और उच्च उर्वरता साथ–साथ पाई जाती है।

माल्थसी रूढ़िवाद

जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव अंतहीन बहस का स्रोत है। इस विषय पर जनसंख्याशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों, समाज वैज्ञानिकों और विकास योजनाकारों द्वारा काफी साहित्य रचा गया है। इस विषय में जनसंख्या वृद्धि के अपने प्रभाव के अलावा ग्रामीण व शहरी इलाकों में इसका वितरण और उम्र के आधार पर जनसंख्या का असंतुलन आदि भी शामिल हैं। इस साहित्य में जो बात सबसे जोरदार तरीके से उभरती है वह है सार्वभौमिक सामान्यीकरण की दिक्कत – जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव देश–देश में बदलता है और कई कारकों पर निर्भर है।

जनसंख्या प्रतिष्ठान के अंदर भी कोई एक दृष्टिकोण नहीं है। तीसरी दुनिया में 70 के दशक में जनसंख्या नियंत्रण की आलोचना के कारण, कुछ उदारवादी सदस्य जनसंख्या के मुद्दे को विकास के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने लगे हैं और ऊंची जन्मदर का सामना करने के लिए समाज कल्याण की नीति और स्वैच्छिक परिवार नियोजन सुविधाओं की वकालत कर रहे हैं। फिर भी इन दलीलों की जटिलताएं और व्यापक भिन्नताएं लोगों के सामने नहीं आ पाई हैं। इसकी बजाय माल्थसवादी, चाहे वह पॉल एहर्लिश जैसे पर्यावरणवादी हों या विश्व बैंक के भूतपूर्व अध्यक्ष राबर्ट मैकनमारा जैसे वरिष्ठ अंतर्राष्ट्रीय तकनीकी विशेषज्ञ हों, ये अधिकतम लोगों का ध्यान आकर्षण कर रहे हैं। सन् 1980 में जनसंख्या प्रतिष्ठान के अंदर इनके विचारों को फिर से जीवनदान भी मिला।

खतरे की घंटी वाले संदेश की ऐसी विश्वसनीयता के कई कारण हैं। इससे न सिर्फ अखबारों में सनसनीखेज सुर्खियां बनती हैं वरन् यह सामाजिक डार्विनवादी 'सर्वश्रेष्ठ के

जिंदा रहने' के नज़रिए के पूरक के रूप में पाश्चात्य सभ्यता की संकीर्ण, नस्लवादी और अभिजात्यवादी धाराओं को भी तुष्ट करता है। माल्थस के सबसे घोर अनुयायी तो अति आबादी वाले देशों की अकाल राहत तक बंद कर देने की वकालत करते हैं : 'अयोग्य लोगों को तब तक भूखा मरने दो जब तक कि उनकी संख्या नियंत्रित नहीं हो जाती।' सन् 1985 में अफ्रीका में सूखे की भयानकतम हालत के दौरान कालेरेडो के गर्वनर रिचर्ड डी. लैम ने 'न्यूयॉर्क टाइम्स' में लिखा था कि, अमरीका को उन सारे अफ्रीकी देशों की आपातकालीन राहत बंद कर देनी चाहिए जो अपनी जनसंख्या वृद्धि को कम नहीं कर रहे हैं, क्योंकि 'ऐसी मदद से सिर्फ भूखे पेटों की संख्या बढ़ेगी।'

ऐसे सुझावों को गंभीरतापूर्वक लिया जाना इस बात का दुखद सबूत है कि माल्थसवाद ने हमारी नैतिकता में किस कदर घुसपैठ की है। इसकी मान्यताएं इतनी छा जाने वाली हैं कि हममें से कई तो इन्हें बिना जाने ही अपना लेते हैं। जनसंख्या समस्या पर एक तरोताजा दृष्टि डालने के लिए पहले माल्थसवादी रवैये की बुनियादी गड़बड़ियों को समझना होगा।

खतरे की घंटीवादियों का प्रेरणास्रोत थॉमस माल्थस है जो पादरी से अर्थशास्त्री बना और अठारहवीं शताब्दी के अंत और उन्नीसवीं शताब्दी की शुरूआत में लेखन किया। माल्थस का कहना था कि यदि 'प्राकृतिक अवरोध' न हो तो मानव आबादी हर 25 साल में दुगुनी हो जाएगी। इसका परिणाम ज्यामितीय वृद्धि होगा : 1, 2, 4, 8, 16, 32, 64, 128 वगैरह। इससे पृथ्वी की खाद्यान्न उत्पादन क्षमता पीछे छूट जाएगी जो कि अंक–गणितीय तरीके से ही बढ़ने की उम्मीद की जा सकती है – 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7 वगैरह। इस मामले में, माल्थस का कहना था कि – इंसान जानवरों और वनस्पतियों से ज्यादा अलग नहीं हैं : उनकी तादाद पर पृथ्वी की सीमित धारण क्षमता से ही रोक लगेगी। 'वनस्पतियों और जानवरों की नस्लों की तादाद इस वृहत् परिसीमन नियम के तहत सिकुड़ती हैं।' उसने घोषणा की कि 'इंसान किसी भी तरह से इससे बच नहीं सकते।'

अति जनसंख्या के साथ–साथ मानव निर्मित प्रवंचनाएं जैसे युद्ध और मारकाट से उपजा त्रास, गरीबी, अकाल और महामारी ही इंसानों की तादाद पर रोक लगा सकते हैं।

माल्थस दो बुनियादी मसलों में गलती पर थे। पहला, उनकी भविष्यवाणी के विपरीत, यह संभव है कि जनसंख्या की वृद्धि धीमी होते–होते थम जाए। और इसलिए नहीं कि हमारी संख्या पर अकाल और महामारी की 'प्राकृतिक' ताकतों ने रोक लगा रखी है बल्कि इसलिए कि बेहतर जीवन स्तर के अनुभव और तदनुरूप अपने प्रजनन पर नियंत्रण के

ज़रिए लोग स्वैच्छिक रूप से निर्णय लेते हैं। माल्थस की अपनी मातृभूमि में ही किस कदर जनसंख्यात्मक परिवर्तन हुआ।

माल्थस की दूसरी गलती थी कि उन्होंने बढ़ती मानव आबादी को भोजन–कपड़ा दे पाने की धरती की क्षमता को बहुत कम करके आंका। वैसे शायद इसमें अचरज की कोई बात नहीं कि आगे चलकर उद्योग और कृषि दोनों में उत्पादन की शक्तियों के जिस जबरदस्त विकास, जिसने जनसंख्या वृद्धि को पीछे छोड़ दिया, उसका पूर्वानुमान अठारहवीं सदी का लेखक न कर पाए। दरअसल अर्थशास्त्रियों के एक घराने की मान्यता है कि टेक्नोलॉजी आर्थिक प्रगति की वाहक के विकास का सबसे महत्वपूर्ण कारक – जनसंख्या वृद्धि ही था। अपने प्रभावशाली अध्ययन 'पाश्चात्य विश्व का उत्थान : एक नवीन आर्थिक इतिहास' में इतिहासकार डगलस नार्थ और राबर्ट थामस का निष्कर्ष है कि जनसंख्या वृद्धि ने 'संस्थागत नवाचारों की प्रेरणा दी जो पश्चिमी विश्व के उत्थान का आधार बने।' कुछ इतिहासकारों का मानना है कि आम जीवन स्तर की बेहतरी को रोकना तो दूर, जनसंख्या वृद्धि ऐसी बेहतरी के मूल में है।

जनसंख्या नियंत्रण के आधुनिक हिमायती माल्थस के तर्क की पुनर्व्याख्या करते हैं और इसे मात्र तीसरी दुनिया के गरीब देशों पर लागू करते हैं। माल्थस के नियमों का विभाजन करने के बाद मानव अधिकारों को भी इसी तरह विभाजन करना कोई बड़ी बात नहीं है : हम औद्योगिक देशों में रहने वालों के लिए बच्चा पैदा करना, नहीं करना या करना है तो कब, ये सब स्वैच्छिक निर्णय हैं जबकि उनके अधिकार जनसंख्या नियंत्रण की सर्वोपरि ज़रूरत के अधीन हैं। इस दोहरे वैज्ञानिक और नैतिक मापदंड के समर्थन में नव–माल्थसवादी बताते हैं कि तीसरी दुनिया में ऊंची जन्मदर और निम्न जीवन स्तर के बीच सीधा संबंध है। यह सच है कि आम तौर पर तीसरी दुनिया के देशों की जन्मदर औद्योगिक देशों (पूर्व और पश्चिम दोनों) की तुलना में ज्यादा है और यह भी कि जिन देशों की जनसंख्या वृद्धि ज्यादा है उनमें प्रति व्यक्ति आय कम होती है। इस आसान से समीकरण से शुरू करके माल्थसवादी प्रचलित फैशन के अनुरूप कई सारी सामाजिक जटिल बुराइयों को अति जनसंख्या के मत्थे मढ़ देते हैं।

1960 व 1970 के दशक में खाद्यान्न की कमी और भूख को अति आबादी पर थोपने का जैसे फैशन–सा था। 'विश्व खाद्यान्न उत्पादन जनसंख्या वृद्धि की छलांगों की बराबरी नहीं कर सकता।' इस चेतावनी में वॉशिंगटन के एक संगठन 'एन्वॉयरन्मेंटल फंड' (पर्यावरण कोष) ने माल्थस के तर्क को थोड़े रूखे ढंग से पेश किया। एहर्लिश की 'पॉपुलेशन बॉम्ब' ने सन् 1968 में दावा किया कि, 'पूरी मानवता का पेट भरने की जंग खत्म हो चुकी है।'

एवं 'सन् 1970 में दुनिया में अकाल होगा – सैंकड़ों लाख लोग भूखे मर जाएंगे।' क्लब ऑफ रोम की 'लिमिट्स टू ग्रोथ' (वृद्धि की सीमाएं) जैसी कम्प्यूटर गणनाओं ने इन भयानक भविष्यवाणियों को एक झूठी विश्वसनीयता प्रदान की, जो ठोस तथ्य नहीं कर सके थे क्योंकि जनसंख्या के कुलाचें भरते घोड़े को अपना ट्रेक्टर रूपी जोड़ीदार मिल गया था : हम खाद्यान्न बहुलता के युग की दहलीज़ पर खड़े थे।

खेती के उत्पादन में जबरदस्त प्रगति का मतलब है कि आज इतना अनाज पैदा होता है कि दुनिया के हर मर्द, औरत और बच्चे को 3000 कैलोरी प्रदान की जा सके। यह न्यूनतम स्वीकार्य खुराक स्तर (2200–2500 कैलोरी) से कहीं ज्यादा है। कम–से–कम संपूर्ण विश्व के स्तर पर खाद्यान्न की कोई कमी नहीं है। न ही भूख और जनसंख्या घनत्व के बीच कोई परस्पर संबंध है। नीदरलैंड में यह घनत्व 246 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है अर्थात् भारत से डेढ़ गुना ज्यादा और भारत के मुकाबले प्रति व्यक्ति कृषि भूमि एक चौथाई ही है। किंतु डच लोगों का जीवन स्तर दुनिया में सबसे बढ़िया की श्रेणी में आता है जबकि भारत का सबसे निचली श्रेणी में। मध्य अमरीकी देश अल सेल्वेडोर की गरीबी एवं भूख की समस्या के लिए अक्सर उसके जनसंख्या घनत्व को दोष दिया जाता है। 'मेसाचुसेट्स के आकार के देश अल सेल्वेडोर में 45 लाख लोग रहते हैं' – पॉल और एनी एहर्लिश द्वारा लिखी पुस्तक में यह तथ्य उजागर किया गया है। परंतु खुद मेसाचुसेट्स की आबादी 58 लाख है।

सरल माल्थसवादी तर्क बताते हैं कि ज्यादा पेटों का मतलब है प्रति व्यक्ति के लिए कम भोजन। यह बात सही है बशर्ते कि उस देश की खाद्यान्न उपलब्धि स्थिर हो और इस पर उस देश की जनसंख्या का कोई प्रभाव न पड़े। परंतु खाद्यान्न उपलब्धि स्थिर नहीं रहती और इस पर जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव सकारात्मक रूप से पड़ता है। यह सिर्फ इस तरह नहीं कि जनसंख्या वृद्धि से श्रमिक शक्ति का विस्तार होता है – हर पेट अपने साथ दो हाथ भी लाता है – बल्कि इसलिए भी कि संसाधनों पर जनसंख्या के दबाव से टेक्नॉलोजी संबंधी और संस्थागत परिवर्तनों की शुरूआत होती है जिससे प्रति व्यक्ति उत्पादन में बढ़ोत्तरी होती है। उदाहरण के लिए, अर्थशास्त्री कोलिन क्लार्क का मानना है कि भूमि को विस्तृत रूप से साफ करने, दलदल में निकासी की व्यवस्था, बेहतर फसलों और खाद का उपयोग आदि परिवर्तनों के पीछे जनसंख्या वृद्धि प्रमुख शक्ति का काम करती है।

इस बात की ज़रूर कोई गारंटी नहीं है कि जनसंख्या वृद्धि से स्वतः ही खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि की शुरूआत हो जाएगी, परंतु ऐसा भी कोई ठोस नियम नहीं है कि ऐसा नहीं

होगा। वास्तव में पिछले तीन दशकों में विश्व खाद्यान्न उत्पादन जनसंख्या के मुकाबले ज्यादा तेजी से बढ़ा है। सन् 1959 और 1980 के बीच विश्व खाद्यान्न उत्पादन दुगुना हो गया और राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) के हाल ही के अध्ययन के मुताबिक सन् 2000 तक यह फिर दुगुना हो सकता है। तीसरी दुनिया में औद्योगिक देशों के मुकाबले ज्यादा बढ़ोत्तरी हुई है। उप–सहारा अफ्रीका को छोड़ दें, तो तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उत्पादन भी बढ़ा है। आज अधिकांश देशों के पास अपनी बढ़ती आबादी का पेट भरने के लिए पर्याप्त भोजन है। परंतु जब भोजन प्रचुर मात्रा में है, तब भी लोग भूखे रह जाते हैं।

वे भूखे हैं क्योंकि कई परिवारों के पास अपनी जमीन नहीं है जिस पर अन्न उपजाएं या पैसा नहीं है जिससे भोजन खरीद सकें। समस्या यह नहीं है कि लोग बहुत सारे हैं और संसाधन बहुत कम अपितु **समस्या तो यह है कि बहुत ही थोड़े से लोगों ने बहुत ज्यादा संसाधनों पर कब्जा कर रखा है।** समस्या कमी की नहीं, वितरण की है।

1960 में संपन्न खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) के विश्व भूमि सर्वे से पता चला है कि कुल मिलाकर 2.5 प्रतिशत भू–स्वामी दुनिया की 75 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि पर कब्जा जमाए हैं और ऊपरी 0.23 प्रतिशत आधे से ज्यादा भूमि पर कब्जा जमाए हैं। भूमि का यह असमान वितरण तीसरी दुनिया में और भी महत्व का है जहां अधिकांश आबादी ग्रामीण इलाकों में रहती है।

एशिया के खेतिहर मजदूर, लातिनी अमरीका के जीविकोपार्जन के लिए कृषि करनेवाले कृषक[10] और अफ्रीका के किसान जिन्हें मौसमी रूप से बागानों या खदानों में काम करने जाना होता है, ये सब उस 97.5 प्रतिशत के हिस्से हैं जिनके पास कुल भूमि का मात्र चौथाई हिस्सा है। ये बस जिंदा भर रहते हैं। जब फसल चौपट हो जाती है या रोजगार नहीं मिलता, तो इनके पास भोजन खरीदने को पैसा नहीं होता चाहे बाज़ार में प्रचुर मात्रा में भोजन उपलब्ध हो।

अकाल के समय में भी, वास्तविक कमी से ज्यादा महत्व इस बात का होता है कि खाद्यान्न गरीब लोगों की पहुंच से बाहर होता है। उदाहरण के लिए, सहेल में 1960 व 1970 के दशकों के अकाल के समय लगभग सारे सहेल देशों के पास अपनी–अपनी आबादी का पेट भरने के लिए पर्याप्त अनाज था, बशर्ते कि यह सरकार की प्राथमिकता होती। दरअसल उक्त अवधि में उस क्षेत्र का कृषि उपज निर्यात बढ़ गया था।

---

[10]जिनकी खेती मात्र पेट पालने के लिए होती है।

आज उप–सहारा अफ्रीका ही दुनिया का एकमात्र ऐसा हिस्सा है जहां माल्थसवादी अपने तर्क की रोटियां सेंक सकते हैं। वहां एक ओर तो विश्व की सबसे ज्यादा जनसंख्या वृद्धि हो रही है – औसत अफ्रीकी महिला अपने जीवन काल में 6 जीवित बच्चों को जन्म देती है – और दूसरी तरफ प्रति व्यक्ति खाद्य उत्पादन गिरता दिख रहा है (विश्वसनीय आंकड़े बहुत कम हैं)। खाद्य एवं कृषि संगठन के महानिदेशक एडुअर्ड साओउमा चेतावनी देते हैं – 'यदि अफ्रीकी राष्ट्र अपनी प्रजनन दर कम करने के लिए सकारात्मक कार्रवाई नहीं करते, तो मुझे डर है कि वे औंधे मुंह गिरने वाले हैं।' (देखें बॉक्स 2)

बॉक्स 2

अफ्रीका : अति आबादी, अल्प आबादी या दोनों?

ऐतिहासिक रूप से अफ्रीका के कई इलाके वास्तव में (गुलामफ़रोशी, शोषणमूलक औपनिवेशिक श्रम नीतियों और यूरोप से आयातित नई बीमारियों के फलस्वरूप) आबादी विहीनता से ग्रस्त रहे हैं। अठारहवीं शताब्दी में दुनिया की 20 प्रतिशत आबादी अफ्रीका में थी, सन् 2000 आते तक यह आंकड़ा वर्तमान उच्च वृद्धि दर के बावजूद 13 प्रतिशत से भी कम होने की संभावना है। अफ्रीका ने अपनी आबादी का पुनर्निर्माण तो इस सदी की शुरूआत में आरंभ किया है।

आज समस्या लोगों की कुल संख्या की उतनी नहीं है जितनी उनके वितरण की है। 'कई अफ्रीकी देशों में लोग या तो अत्यधिक उपयोग की गई भूमि के आसपास बहुत तादाद में रहते हैं या फिर बहुत दूर–दूर बिखरे हुए हैं।' यह तथ्य इथियोपिया के अकाल पर अंतर्राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट में दर्ज़ है। अफ्रीका के अधिकांश हिस्से का जनसंख्या घनत्व दरअसल बहुत कम है। उदाहरणार्थ, उप–सहारा अफ्रीका का औसत जनसंख्या घनत्व मात्र 16 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. है। अंदरूनी मध्य अफ्रीका में अपेक्षाकृत कम जनसंख्या वृद्धि की एक पट्टी है जहां ज्यादातर महिलाएं यौन संबंधी रोगों से जुड़े बांझपन से ग्रसित हैं। इस महाद्वीप के नम उष्ण इलाके में लाखों एकड़ संभावित असिंचित कृषि भूमि है जो कृषि विहीन और निर्जन पड़ी है।

फिर भी शहरों में, समुद्र तट और पठारों में काफी ज्यादा घनत्व वाले इलाके हैं जहां जनसंख्या के दबाव से पर्यावरण का ह्रास हुआ है। उदाहरण के लिए, इथियोपिया में सबसे ज्यादा घनत्व सूखाग्रस्त और पर्यावरण की दृष्टि से कमजोर पठारी इलाकों में है जबकि दूसरी तरफ हजारों एकड़ कृषि योग्य पड़ती भूमि दक्षिण और पूर्वी भागों में उपलब्ध है।

मानव वैज्ञानिक (नृतत्व शास्त्री) रिचर्ड फ्रेंक ने पश्चिम अफ्रीका में श्रमिकों की मांग को जनसंख्या घनत्व और प्रजनन दर पर प्रभाव डालने वाले एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में पहचाना है। ऊंची जन्मदर, आर्थिक विकास का अति निम्न स्तर और कई हिस्सों में श्रमिकों की कमी वर्तमान पश्चिम अफ्रीका के प्रमुख लक्षण हैं। फ्रेंक इसकी जड़ें औपनिवेशिक जमाने में पाते हैं जब श्रमिकों की जबरदस्ती भर्ती, उनसे बलपूर्वक नगदी फसलें लगवाने, टैक्स प्रणाली और औपनिवेशिक दस्तों द्वारा फ़ौजी कार्रवाईयों में अफ्रीकी लोगों को 'मजदूरों की

सप्लाई बढ़ाने और औपनिवेशिक हालातों में अपनी अर्थव्यवस्था को यथासंभव पुनर्गठित करने के लिए ज्यादा से ज्यादा बच्चे पैदा करने पर' मजबूर कर दिया था।

पुरुष मजदूरों का बागान इलाके और तटवर्ती शहरों में रोजगार के लिए पलायन करना भी इसके साथ जुड़ गया। पतियों की अनुपस्थिति में महिलाएं कृषि कार्य और सुरक्षा के लिए बच्चों पर और भी ज्यादा निर्भर हो गईं।

आज भी पलायन का यही क्रम जारी है जिससे कई मामलों में खाद्य उत्पादन और पर्यावरण सुधार पर प्रतिकूल असर पड़ रहा है। उदाहरण के लिए, बुर्किना फासो में साल के कुछ निश्चित समय पर जब जवान मर्द टैक्स और उपभोक्ता ज़रूरतों की पूर्ति के लिए पैसा कमाने बाहर चले जाते हैं, तब नए खेतों में से झाड़ियां साफ करने या कुओं की देखभाल करने के लिए पर्याप्त श्रमिक नहीं होते। तदनुरूप इसका असर खाद्य उत्पादन पर भी पड़ता है। कई अवलोकनकर्ताओं ने यह बात नोट की है कि कैसे कम जनसंख्या घनत्व कृषि उत्पादन पर ब्रेक लगाता है।

क्या इस दुष्चक्र को तोड़ने का कोई तरीका है? फ्रेंक का अफ्रीका के योजनाकारों से कहना है कि, उन्हें अति आबादी की मासूम धारणा छोड़कर अपना ध्यान इलाके की जनसंख्या संबंधी वास्तविकता पर लगाना चाहिए ताकि पलायन और कृषि मजदूरों की कमी के बारे में सृजनात्मक और असरदार हल ढूंढे जा सकें।

अफ्रीका के खाद्य संकट का संबंध अधिक आबादी से कम और निम्न उत्पादकता से ज्यादा है। अफ्रीका के 60 से 80 प्रतिशत ग्रामीण श्रमिक अत्यधिक निम्न उत्पादकता स्तर पर काम करते हैं। सबसे प्रचलित कृषि औज़ार कुदाल है, जिसमें लौह युग के बाद थोड़ा ही सुधार हुआ है। तब कोई अचरज नहीं कि अफ्रीका में अनाज पैदावार सन् 1965 से थम–सी गई है जबकि तीसरी दुनिया के अन्य देशों में यह बढ़ी है।

खाद्यान्न उत्पादन के थम जाने का एक मुख्य कारण यह है कि संसाधनों को निर्यात हेतु नगदी फसलें उगाने पर केंद्रित कर दिया गया है। इस निर्यातमुखी नीति की जड़ें औपनिवेशिक जमाने में देखी जा सकती हैं जब दमनपूर्ण टैक्स प्रणाली और ज़रूरत पड़ने पर बल प्रयोग के ज़रिए किसानों को नगदी फसलें उगाने पर मजबूर किया गया था। शोध और विकास कार्यक्रम भी व्यावसायिक किसानों और बागान प्रबंधकों पर केंद्रित रहे और बुनियादी खाद्य फसलों और उनके उत्पादकों (जो आमतौर पर महिलाएं थीं) की अवहेलना की गई। आज भी यही प्रवृत्ति जारी है – अधिकांश अफ्रीकी सरकारें खाद्य उत्पादन को निम्न प्राथमिकता देती हैं और खेती में महिलाओं की भूमिका की अवहेलना करती हैं। इसके बजाय बागानों, शासकीय फार्म और भूमि चकबंदी योजनाओं पर ध्यान

दिया जा रहा है जो अक्सर विदेशी कृषि उद्योग के सहयोग से निर्यात के लिए फसलें उगाते हैं। मिसाल के तौर पर बुर्किना फासो में कपास उत्पादन सन् 1961 की तुलना में 20 गुना बढ़ गया है जबकि ज्वार और बाजरा जैसी फसलों की पैदावार 1960 के स्तर पर ही है।

चूंकि नगदी फसलें आमतौर पर सर्वोत्तम भूमि पर लगाई जाती हैं, इसलिए इनके विस्तार से खाद्यान्न उत्पादक सीमांत क्षेत्रों में धकेल दिए जाते हैं, जिसका परिणाम भूमि का ह्रास और पैदावार में कमी होता है। उदाहरण के लिए नायज़र में अनाज उत्पादन सन् 1920 में 500 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर से घटकर सन् 1978 में 350 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर रह गया और सन् 2000 तक इसके और भी कम हो जाने की आशंका है।

कृषि उपज की कीमतों में कमी और पक्षपातपूर्ण कर नीतियों के ज़रिए अफ्रीका में कृषकों का खून चूसकर शहरी क्षेत्रों का विकास किया जाता है और अभिजात्य वर्ग के लिए ऐशोआराम के साधन जुटाए जाते हैं। विदेशी सहायता कार्यक्रमों का रवैया भी स्थानीय तकनीकों और श्रम की बजाय आयातित टेक्नॉलोजी की हिमायत करना और छोटे (महिला) कृषकों या पशुपालकों को प्रशिक्षण, ऋण और अन्य सामग्री देने के बजाय विशाल व्यापारिक योजनाओं को आगे बढ़ाने का रहा है।

यद्यपि अफ्रीका में जन्मदर के घटने से निश्चय ही भूमि और खाद्य सप्लाई पर से दबाव कम होगा पर इससे उत्पादकता की समस्या कभी हल नहीं होगी जो इस महाद्वीप के कृषि संकट की जड़ है। गर्भनिरोधकों से पैदावार नहीं बढ़ती। दरअसल, बुनियादी कृषि सुधारों की ज़रूरत है। उदाहरण के लिए हाल ही में जिम्बावे में ग्रामीण ऋणों पर से गोरे किसानों के एकाधिकार के खात्मे, बेहतर यातायात सुविधा एवं कृषि साधन सामग्री और उपज की उचित मूल्य नीति के माध्यम से खाद्य उत्पादन में प्रभावशाली वृद्धि हुई है।

इन सारे सबूतों का अर्थ यही है कि अस्सी के दशक के अंतिम वर्षों में भूख के लिए आबादी को दोष देने का फैशन अंततः समाप्ति पर है। 1986 की विश्व बैंक की गरीबी और भूख संबंधी एक रिपोर्ट के मुखपृष्ठ पर यह घोषणा छपी है –

> 'दुनिया में पर्याप्त भोजन है। विश्व खाद्यान्न उत्पादन वृद्धि विश्व जनसंख्या में पिछले 40 सालों की अभूतपूर्व वृद्धि के मुकाबले ज्यादा रही है. . . फिर भी कोई गरीब देश और करोड़ों गरीब लोग इस प्रचुरता में अपना हिस्सा नहीं ले पाते। वे भोजन सुरक्षा के अभाव से ग्रस्त हैं जिसका मूल कारण क्रय शक्ति की कमी है।'

यह विश्व बैंक के लिए माल्थसवाद से परे हटने का एक साहसिक कदम है। अलबत्ता माल्थसवादियों के पास अन्य तर्कों का भंडार सुरक्षित है। जनसंख्या वृद्धि का पर्यावरण पर हानिकारक असर आजकल काफी प्रचलन में है।

विज्ञान के अन्य विषयों के सदस्यों की तरह ही इकॉलोजिस्ट[11] भी कोई एकमत समूह नहीं है। एक तरफ वे हैं, जिन्हें मैं मानव–धावक कहती हूं, जो पर्यावरण संघर्ष को इंसान और प्रकृति के बीच अपरिहार्य दौड़ के रूप में देखते हैं और जिनका कहना है कि धरती अपनी 'वहन क्षमता' की सीमा पर पहुंच गई है। चूंकि ये मानव जाति को ही दुश्मन मानते हैं, इसलिए 'मानव–धावक' माल्थसवादी हैं। वर्ल्ड वॉच इंस्टीट्यूट के लेस्टर ब्राउन चेतावनी देते हैं कि "आसान शब्दों में कहें तो हम एक दौड़ में भाग ले रहे हैं ताकि जीवन आधार के ढहने से पहले ही जनसंख्या वृद्धि को क्रमशः कम करते हुए अंततः रोक लें।"

दूसरी तरफ व्यवस्थावादी हैं जो पर्यावरण विनाश को अकार्यक्षम और अक्सर गैर–बराबरी वाली सामाजिक व्यवस्था के एक अंग के रूप में देखते हैं जिसे ठीक किया जा सकता है, और किया जाना चाहिए। वे मानते हैं कि कुछ मामलों में पर्यावरण ह्रास में जनसंख्या दबाव का हाथ हो सकता है परंतु उनका सवाल यह है कि इस दबाव को बनाने में कौन–सी सामाजिक प्रक्रियाएं निहित हैं।

मानव–धावकों के पास एक ठोस तर्क ज़रूर है। यह कोई नहीं चाहता कि दुनिया में सिर्फ खड़े रहने की जगह हो जहां जमीन का हर टुकड़ा, पानी की हर बूंद और ऊर्जा की हर इकाई, अंतहीन रूप से बढ़ती मानव जाति के लिए जीवन आधार बनाने में लगा दी जाए। अन्य प्रजातियों को भी जीने का हक है और पर्यावरण के प्रति आदर से हमारे खुद के जीवन की गुणवत्ता बढ़ती है। बहरहाल जनसंख्या को सीमित करना दूरगामी रूप में सार्थक लगता है किंतु इसका मतलब यह कतई नहीं है कि पर्यावरण में गिरावट का फ़ौरी कारण अति आबादी है।

बल्कि बात उल्टी है। तीसरी दुनिया में जनसंख्या विस्फोट की बजाय औद्योगिक विश्व में उपभोग विस्फोट के कारण प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकतम दबाव पड़ रहा है। उदाहरण के लिए अमरीका जिसकी आबादी विश्व की मात्र 5 प्रतिशत है, दुनिया के (अ–नवीनीकरणीय) संसाधनों के एक तिहाई और दुनिया में उत्पादित कुल माल और सुविधाओं का एक चौथाई हजम कर जाता है। औसत अमरीकी एक औसत बांग्लादेशी के

---

[11]परिस्थितिकी विज्ञानी।

मुकाबले 300 गुना ऊर्जा की खपत करता है। इस प्रकार से औद्योगिक देशों में तनिक–सी जनसंख्या वृद्धि भी तीसरी दुनिया की तेज जनसंख्या वृद्धि की अपेक्षा संसाधनों पर कहीं ज्यादा प्रभाव डालती है। तीसरी दुनिया में भी अभिजात्य लोग उपभोग के इन्हीं तौर–तरीकों की ओर बढ़ रहे हैं – अपने गरीब हमवतन लोगों से कहीं ज्यादा संसाधनों की खपत करना और उन्हीं को ज्यादा बच्चे पैदा करने का दोष देना।

इसके अलावा व्यवस्थावादियों का कहना है कि आज धरती पर होने वाले कई पर्यावरण अपराधों – समुद्र में रासायनिक और नाभिकीय कचरा डालना, काम–चलाऊ रिएक्टरों और शस्त्र परीक्षण से जनित रेडियोधर्मी बादल, गंदी चिमनियों की बदौलत अम्ल वर्षा – का अधिक संबंध टेक्नॉलोजी के विकास के अनुचित एवं अनियंत्रित तौर–तरीकों से है, न कि कृषकों की प्रजनन क्षमता से।

तीसरी दुनिया में, खासकर जंगल नष्ट होने व मरुस्थलीकरण के कारण जो पर्यावरण ह्रास हो रहा है, उसके बारे में आप क्या कहेंगे? हालांकि यहां माल्थस का सिद्धांत लागू होता दिखाई देता है परंतु कहानी सिर्फ जनसंख्या दबाव से कहीं ज्यादा है। जब नई दिल्ली में स्थित विज्ञान व पर्यावरण केंद्र ने भारत में जंगल विनाश की समस्या की खोजबीन की तो पता चला कि वास्तविकता सरकारी मत ('जनसंख्या विस्फोट ही हमारे कीमती जंगलों के ह्रास का कारण है') से बहुत अलग थी। भारत में लाखों हैक्टेयर जंगल हर साल गायब हो रहा है। केंद्र ने ऐसे कई अध्ययनों का हवाला दिया है जिनसे पता चलता है कि किस तरह भ्रष्ट वन–अधिकारियों को रिश्वत देकर प्राइवेट ठेकेदारों ने जंगलों के बड़े–बड़े हिस्से काट डाले हैं। ये वही जंगल हैं जिन्हें स्थानीय लोगों के लिए – जो जीवनयापन के लिए इन्हीं जंगलों पर निर्भर हैं, प्रतिबंधित कर दिया गया था। इसी दौरान विश्व बैंक जैसी अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों की मदद से चलने वाली सरकारी वन–परियोजनाओं के ज़रिए भारत से मजबूत लकड़ी के निर्यात को बढ़ावा दिया जा रहा है और पर्यावरण की दृष्टि से बढ़िया मिश्रित वनों को काटकर चीड़, नीलगिरी या सागौन के एकल–प्रजाति प्लांटेशन लगाए जा रहे हैं।

गरीब लोगों की जलाऊ लकड़ी की आवश्यकता का भी पर्यावरण पर उतना ज्यादा असर नहीं होता जितना कि आमतौर पर सोचा जाता है। वे खाना पकाने के लिए जिस लकड़ी का इस्तेमाल करते हैं वे अधिकतर छोटी शाखाएं और टहनियां होती हैं – मोटी लकड़ी तो सिर्फ अमीर लोग खरीद सकते हैं। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस (भारतीय विज्ञान संस्थान) के एक ग्रामीण अध्ययन से पता चला है कि 'जलाऊ लकड़ी बीनने का, जंगल नष्ट करने में कोई महत्वपूर्ण हाथ नहीं है। इससे कई पर्यावरण शास्त्रियों के इस प्रचलित

मत पर गहरी शंकाएं पैदा होती हैं कि गरीबों की जलाऊ लकड़ी की मांग के कारण जंगल नष्ट हो रहे हैं।'

इसी प्रकार की प्रक्रियाएं तीसरी दुनिया के कई और देशों में भी चल रही हैं। विश्व के उष्ण कटिबंधीय वर्षा वनों में सबसे बड़े गिने जाने वाले अमेजन वनों के नष्ट होने के पीछे व्यापारिक लालच की दुखद कहानी है। राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय कंपनियों जैसे–गुडईयर, फोल्कसवागन, नेस्ले और मिमत्शुविशी ने मिलकर लकड़ी और पशुपालन के लिए लाखों एकड़ जंगल छील डाला। फिलीपीन्स में तानाशाह फर्डिनान्डो मार्कोस ने सत्ताच्युत होने से पहले अपने रिश्तेदारों और राजनीतिक पिछलग्गुओं को लकड़ी काटने में अरबों डॉलर की गैर–कानूनी छूट दी जिसके फलस्वरूप देश का वन क्षेत्र जो मार्कोस के शासन में आने के समय लगभग साढ़े तीन करोड़ एकड़ था आज घटकर महज 54 लाख एकड़ रह गया है।

जंगल विनाश के समान ही मरुस्थलीकरण, जो आज दुनिया के 20 प्रतिशत इलाके पर खतरे की तरह मंडरा रहा है, को भी कई बार अति आबादी पर थोप दिया जाता है। राष्ट्र संघ की एक खबर के अनुसार 'सीमित भूमि पर अत्यधिक जनसंख्या के दबाव का अर्थ है मरुस्थलीकरण।' 'यह तो आधारभूत बात है।' परंतु कई किसानों के लिए एक और आधारभूत बात है – अमीरों द्वारा जमीन पर एकाधिकार। अल सेल्वेडॉर का मामला काबिले गौर है। इस छोटे से मध्य अमरीकी देश में चल रहे युद्ध की तरह ही यहां के बिगड़ते पर्यावरण का दोष भी अति आबादी पर मढ़ दिया जाता है। आज अल सेल्वेडॉर अपनी भूमि के अनुमानित 77 प्रतिशत के तेज भूक्षरण का सामना कर रहा है। पूरा देश पहाड़ी और खड़े ढलानों वाला है और अधिकांश उपजाऊ जमीन ज्वालामुखी की ढलानों, नदी के कछारों और तटीय मैदान में है। ये थोड़े से उपजाऊ इलाके बड़े एस्टेट के हाथों में हैं जो इन पर निर्यात के लिए कपास, शकर व कॉफी उगाते हैं और पशुपालन करते हैं।

अल सेल्वेडॉर का भूमि वितरण बहुत असमान है : 100 में से 1 से भी कम फार्म 250 एकड़ से ज्यादा हैं परंतु फिर भी देश की आधी से ज्यादा कृषि योग्य भूमि इन्हीं फार्मों में है। किसान ऊपरी ढलानों में ढकेल दिए जाते हैं जहां, जिंदा रहने के लिए वे पेड़–पौधों को साफ करके, कृषि के लिए अयोग्य भूमि पर, जीविकोपार्जन के लिए खेती करते हैं। भूक्षरण इसका अपरिहार्य परिणाम है।

ऐसी परिस्थिति में ज्यादा आबादी का मतलब है पर्यावरण का ज्यादा नुकसान क्योंकि उन्हें सीमित भूमि पर ठूंस दिया गया है। इस मायने में जनसंख्या की तेज वृद्धि

मरुस्थलीकरण का एक कारण होती है परंतु इसे प्रमुख कारण कहना एक जटिल प्रक्रिया का सरलीकरण होगा। अल सेल्वेडॉर के किसान हाशिए की (सीमांत) भूमि पर दबाव डाल रहे हैं परंतु अपनी आबादी के कारण नहीं बल्कि इसलिए कि अमीरों द्वारा नियंत्रित कृषि व्यवस्था में वे खुद हाशिए पर धकेल दिए गए हैं।

जनसंख्याशास्त्री जॉन काल्डवेल, जिन्होंने अफ्रीकी सहेल के नाजुक पर्यावरण क्षेत्र का अध्ययन किया है, उनके अनुसार जनसंख्या दबाव और मरुस्थलीकरण के बीच प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करना असंभव है। यह भी कि गरीब सूखे देशों के पर्यावरण पर बढ़ते जनसंख्या घनत्व को लेकर पिछले दशक में वैज्ञानिक अध्ययन बहुत कम हुए हैं। और कई जनसंख्याशास्त्री तो 'धारण क्षमता' जैसे जुमले का प्रयोग करने में भी हिचकिचाते हैं।

यह देखना दिलचस्प रहेगा कि क्या जनसंख्या वृद्धि के विरुद्ध पर्यावरण का तर्क, भूख के तर्क के समान ही फैशन से बाहर हो जाएगा? कई सारे परिष्कृत माल्थसवादी निश्चित रूप से इससे दूर जा रहे हैं और एवज में (तेज जनसंख्या वृद्धि के) सामान्य अर्थव्यवस्था प्रभाव पर अपना ध्यान लगा रहे हैं। उदाहरण के लिए विश्व बैंक की विश्व विकास रिपोर्ट सन् 1984, जिसका विषय जनसंख्या और विकास था, में कहा गया है, "तेज जनसंख्या वृद्धि 'विकास में एक गंभीर अवरोध है' और इसका परिणाम यह होता है कि खासकर दुनिया की गरीब आबादी को जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के अवसरों का लाभ नहीं मिल पाता।" विश्व बैंक ने पूर्व की अपनी माल्थसवादी कार्यकरण वाले विचारों को थोड़ा बदल लिया है। यद्यपि अब वह (विश्व बैंक) स्वीकार करता है कि मात्र लोगों की तादाद नहीं बल्कि गरीबी भी भूख और पर्यावरण ह्रास के लिए जिम्मेदार है परंतु गरीबी के लिए जनसंख्या वृद्धि के आर्थिक परिणामों को जिम्मेदार ठहराकर एक प्रकार से, गरीबों को ही खुद के दुःखों के लिए जिम्मेदार ठहराया गया है।

तेज जनसंख्या वृद्धि के खिलाफ आर्थिक मामला कई प्रमुख मान्यताओं पर टिका है। पहली और सबसे अपरिष्कृत (सुधार के बगैर) मान्यता यह है कि तेज जनसंख्या वृद्धि के कारण तीसरी दुनिया के कई देशों की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की दर धीमी हो जाती है। 'जनसंख्या संकट समिति' के अनुसार यह सीधे–सादे गणित का सवाल है। किसी भी देश की प्रति व्यक्ति आय वहां के सकल राष्ट्रीय उत्पाद (स.रा.उ.) को वहां की जनसंख्या से भाग देकर निकाली जाती है। इसलिए मूल तर्क यह है कि जितने ज्यादा लोग होंगे, सकल राष्ट्रीय उत्पाद में प्रत्येक व्यक्ति का हिस्सा उतना ही कम होगा। परंतु लोग संसाधनों और संपदा की सिर्फ खपत ही नहीं करते, बल्कि उसका निर्माण भी करते हैं। यानी सकल राष्ट्रीय उत्पाद, जनसंख्या बढ़ने पर स्थिर नहीं रहता। यदि आर्थिक हालात

अनुकूल रहे, तो जनसंख्या वृद्धि सकल राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि में योगदान देती है और इससे प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि होती है।

मध्यम आय वाले देशों का प्रभावशाली आर्थिक विकास पिछले कुछ दशकों में प्रति व्यक्ति आय में प्रतिवर्ष 3 प्रतिशत की वृद्धि – दरअसल तेज जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ हुआ है। इसका यह मतलब नहीं है कि तेज जनसंख्या वृद्धि उनकी सफलता का प्रमुख कारक थी पर निश्चित रूप से वह एक रुकावट भी नहीं थी। प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से अफ्रीका के दस अमीरतम देशों और दस गरीबतम देशों की जनसंख्या वृद्धि की दर समान है। इससे एक बार फिर यह साफ हो जाता है कि आर्थिक विकास की दृष्टि से जनसंख्या वृद्धि सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक नहीं है।

दूसरी मान्यता का संबंध सरकारी निवेश पर जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव से है। विश्व बैंक का तर्क है कि तेज जनसंख्या वृद्धि के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि ज्यादा–से–ज्यादा लोगों तक शिक्षा व स्वास्थ्य संसाधनों की निश्चित मात्रा पहुंचाई जाए। इस प्रक्रिया को विश्व बैंक 'पूंजी का फैलाव' कहता है। धीमी जनसंख्या वृद्धि से, बैंक के अनुसार, प्रति व्यक्ति ज्यादा खर्च किया जा सकेगा, जिसे बैंक 'पूंजी का गहराना' कहता है। इस तर्क में फिर से मान्यता वही है कि भाज्य अर्थात् इस मामले में खर्च के लिए उपलब्ध संसाधन सीमित हैं। इसमें इस बात की अवहेलना की गई है कि अव्वल तो लोग ही इन संसाधनों का निर्माण करते हैं। इसमें जीवन के इस बुनियादी राजनीतिक तथ्य की भी उपेक्षा की गई है कि एक राष्ट्र में शिक्षा और अन्य सामाजिक सुविधाओं पर किया जाने वाला खर्च लोगों की संख्या के आधार पर नहीं बल्कि सरकार की प्राथमिकताओं के आधार पर तय होता है। उदाहरण के लिए यह देखा जा सकता है कि सन् 1972 में निम्नतम आमदनी वाले 34 देशों में रक्षा खर्च 11 प्रतिशत था जो सन् 1982 में बढ़कर 18 प्रतिशत हो गया, जबकि इसी अवधि में शिक्षा पर खर्च 16 प्रतिशत से घटकर 6 प्रतिशत रह गया। यह तथ्य भी दिलचस्प है कि श्रीलंका और वियतनाम जैसे घनी आबादी वाले देशों में सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य लगभग प्राप्त कर लिया गया है जबकि उन्हीं के बराबर या उनसे ज्यादा प्रति व्यक्ति आमदनी वाले देश अभी इस लक्ष्य के निकट भी नहीं पहुंच पाए हैं।

हालांकि इसमें कोई शक नहीं कि जनसंख्या वृद्धि धीमी होने से तीसरी दुनिया में स्कूली तंत्र पर से दबाव कम हो जाएगा परंतु इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि इससे हुई बचत का उपयोग शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार या अन्य किसी सामाजिक रूप से उत्पादक कार्य के लिए किया जाएगा, जैसा कि विश्व बैंक मासूमियत से मानकर चलता है। इस

बचत का उपयोग हथियारों या वैभवशाली भवनों के निर्माण के लिए भी किया जा सकता है।

जनसंख्या वृद्धि के माथे पर जो सबसे बड़ा कलंक है वह है बेरोजगारी। तीसरी दुनिया में बेरोजगारी कम होती है क्योंकि लोग बैठे रहने की जुर्रत नहीं कर सकते। बेरोजगारी भत्ता या सामाजिक बीमा सुविधा न होने की स्थिति में उन्हें किसी प्रकार से कोशिश करके जिंदा रहने के लिए तो कमाना ही पड़ता है। वास्तविक समस्या कम आमदनी, कम उत्पादकता वाले कामों में अल्प–रोजगार की है, जैसे – खोमचे लगाना, घरेलू नौकर, हस्तकला उत्पादन आदि, जो कि तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्था के तथाकथित अनौपचारिक (असंगठित) क्षेत्र के पेंदे (सबसे निचले स्तर पर) में है।

इस सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता कि आज लाखों लोगों के पास अपनी मेहनत से कमाकर सम्मानपूर्वक जीवन जीने के अवसर नहीं हैं। परंतु ऐसा क्या इसलिए है कि संभावित कामगार बहुत ज्यादा हैं या इसलिए कि नौकरियां बहुत थोड़ी हैं? तीसरी दुनिया में अतिरिक्त श्रम की समस्या औपनिवेशिक जमाने से चली आ रही है, जब यूरोपीय शक्तियों ने एशिया, अफ्रीका और लातिनी अमरीका की भूमि एवं अन्य उत्पादक संसाधन हथिया लिए और ऐसे सारे उद्योग धंधे नष्ट कर दिए जो उनके (यूरोपीय) द्वारा निर्मित माल से प्रतियोगिता कर सकते थे। अपनी भूमि और व्यवसाय से वंचित होकर हजारों लोग अल्प–रोजगार प्राप्त श्रम की श्रेणी में आ गए। राजनीतिक आजादी से यह सब अपने–आप नहीं टूटा क्योंकि अभी भी औद्योगिक विकास पर ज्यादातर बहुराष्ट्रीय कंपनियां और अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं हावी हैं, जिन्होंने पूंजी आधारित उद्योग को बढ़ावा दिया, न कि श्रम आधारित उद्योग को।

पश्चिम में तीसरी दुनिया की 'बिन पेंदी के कटोरे' की छवि के बावजूद आज तीसरी दुनिया औद्योगिक विश्व से जितना ज्यादा पाती है उससे ज्यादा देती है। 'मदद' और निजी कर्जे व निवेश के रास्ते जितना आता है उससे कहीं ज्यादा मुनाफ़े, ब्याज, भुगतान और तीसरी दुनिया के संपन्न वर्ग द्वारा विदेश भेजी गई पूंजी के रूप में बाहर जाता है। तीसरी दुनिया में निश्चित रूप से हर कोई पीड़ित नहीं है। ये नव–औपनिवेशिक तौर–तरीके तीसरी दुनिया के शासक वर्ग की सांठ–गांठ के कारण जारी हैं, जिनमें से कई तो स्थानीय रोजगारोन्मुखी उद्योगों में पैसा लगाने की अपेक्षा उसे विदेशी बैंकों में जमा करना बेहतर समझते हैं। बैंक ऑफ इंटरनेशनल सेटलमेंट्स की गणना के अनुसार सन् 1978 और 1983 के बीच समृद्ध लातिनी अमरीकियों ने 55 अरब डॉलर विदेशों को भेजे जो कि उसी अवधि में क्षेत्र की विदेशी बैंकों से कर्ज़दारी में बढ़ोत्तरी का करीब

एक–तिहाई है। इस प्रकार की पूंजी की उड़ान और अल्प–रोजगार की हालत एक ही सिक्के के दो नाटकीय पहलू हैं।

यह विडम्बना ही है कि जहां एक ओर तीसरी दुनिया में तेज जनसंख्या वृद्धि को विकास में अवरोध के रूप में देखा जाता है, वहीं दूसरी ओर कई अर्थशास्त्रियों को भय है कि औद्योगिक देशों में जनसंख्या वृद्धि की शून्यप्राय या घटती दर के गंभीर नकारात्मक परिणाम होंगे। चिंता का प्रमुख विषय यह है कि एक बड़ी बुढ़ाती आबादी की सामाजिक सुरक्षा की कीमत को वहन करने के लिए श्रमशक्ति में बहुत ही थोड़े से युवा बचेंगे। जापानी अर्थशास्त्री नाओहिरा ओगावा का विश्वास है कि इससे उनके देश की आश्चर्यजनक आर्थिक वृद्धि पर विराम लग जाएगा। फ्रांस और पश्चिम जर्मनी की सरकारों ने लोगों को बड़े परिवार के लिए आर्थिक प्रलोभन देना भी शुरू कर दिया है।

कहने का मतलब यह नहीं है कि तेजी से बढ़ती जनसंख्या से तीसरी दुनिया में कोई समस्या ही नहीं होती। जब कृषि और उद्योग अल्परोजगार प्राप्त व्यक्तियों को रोजगार नहीं दे सकते, तब जनसंख्या वृद्धि के नकारात्मक प्रभाव हो सकते हैं। वाकई यदि नौकरियों की संख्या स्थिर रहती है और उनके लिए संघर्ष करने वालों की संख्या बढ़ती जाती है तब वेतन और जीवन स्तर गिरने लगते हैं। यदि भाज्य वही रहता है और भाजक बढ़ता जाता है तो हर व्यक्ति का हिस्सा छोटा होता जाता है – हां, संपन्न लोग तब भी अपने लिए पहले से भी बड़ा हिस्सा हथिया सकते हैं।

यह 'साधारण अंकगणित का सवाल' है लेकिन शाश्वत गणितीय कानून नहीं है। सवाल है कि क्यों सारी चीजें उतनी की उतनी ही रहती हैं? क्यों अधिकांश लोग भयानक गरीबी और कम उत्पादकता और फलस्वरूप ऊंची प्रजनन दर के लिए अभिशप्त हैं?

माल्थसवादियों के पास इस सवाल का कोई जवाब नहीं है, क्योंकि वे कभी यह पूछते ही नहीं हैं कि भूमि पर कब्जा किसका है, जंगल कौन काटता है, सरकारी बजट कौन बनाता है, अंतर्राष्ट्रीय बैंकों का कर्जा कौन चुराता (नहीं लौटाता) है, औपनिवेशिक ताकतें कौन थीं, और किन्हें उपनिवेश बनाया गया? अशक्त लोगों की गरीबी को बनाए रखने में संपन्न और शक्ति–संपन्न लोगों की भूमिका को वे एक जादुई छड़ी घुमाकर छू कर देते हैं। उनकी विचारधारा के जोश में एक आत्मघाती विचार पर नकाब डाल दिया जाता है कि – गरीब अपनी हालात के साथ ही पैदा होते हैं और इससे बचने का उनके पास एक ही उपाय है कि वे पैदा ही न हों।

जब गरीब अपने हकों की मांग करने लगते हैं, तब माल्थसवादी इसे 'राजनीतिक अस्थिरता' कहते हैं और इसके लिए अति–आबादी को दोष देते हैं। अमरीकी विदेश नीति के हाल के प्रवक्ता, जैसे मेक्सवेल टेलर और राबर्ट मैकनमारा का विश्वास है कि अल सेल्वेडॉर का हाल का गृहयुद्ध पूरी तरह नहीं तो आंशिक रूप से जनसंख्या दबाव का परिणाम है। वे उस देश में संपत्ति की घोर असमानता और सामाजिक सुधारों के शांतिपूर्ण प्रयासों के हिंसात्मक दमन की बात को भुला देते हैं। मध्य अमरीका की समस्या को अल्परोजगार प्राप्त युवा पुरुषों की ज्यादा तादाद के रूप में पेश किया जाता है जिससे, पॉप्यूलेशन रिफ़रेंस ब्यूरो के लीओन बूवियर के अनुसार, 'क्रांतिकारी गतिविधियों के लिए उपलब्ध लोगों की संख्या' बढ़ जाती है। इस प्रकार से माल्थसवादी यथास्थिति को न्यायसंगत ठहराने का भी काम करते हैं : गरीब लोग यदि उठ खड़े हो रहे हैं तो इसलिए कि उनकी संख्या भी तेजी से बढ़ रही है।

रेवरेंड श्री माल्थस ने खुद इसी बात को स्पष्ट रूपसे दो सदी पहले इसतरह प्रस्तुत किया था –

> "गरीबी के सबसे प्रमुख और सबसे स्थायी कारण का सरकार के स्वरूप से या संपत्ति के असमान विभाजन से कोई सीधा संबंध नहीं है और अमीरों के पास गरीबों को रोजगार देने या उनकी देखरेख करने की ताकत नहीं है। इसलिए स्वाभाविक रूप से गरीबों को इनकी मांग करने का हक भी नहीं है, ये जनसंख्या के सिद्धांत से उभरने वाली कुछ महत्वपूर्ण सच्चाइयां हैं. . . ।"

माल्थसवाद का निचोड़ यही सरल राजनीतिक वक्तव्य है।

प्रचुरतावादी

हाल के वर्षों में माल्थसवादी आत्मघाती विचारधारा को, कुछ प्रभावशाली नव–दक्षिणपंथी अर्थशास्त्रियों की अपराजेय आशावादिता में अपना जोड़ीदार मिला है। अपनी किताब 'दि रिसोर्सफुल अर्थ' (साधन संपन्न धरती) में जुलियन सायमन और हर्मन कान 'विकास की सीमा' वाले दर्शन को चुनौती देते हुए दावा करते हैं कि 'यदि वर्तमान रवैया जारी रहा, तो सन् 2000 में दुनिया में आज के मुकाबले कम भीड़–भाड़ (यद्यपि जनसंख्या ज्यादा होगी), कम प्रदूषण, पर्यावरण की दृष्टि से ज्यादा स्थिरता और संसाधन उपलब्धि में होने वाले व्यवधान का जोखिम भी कम होगा।'

इन प्रचुरतावादियों का विश्वास है कि यदि पर्यावरण नियमन के ज़रिए होने वाला सरकारी हस्तक्षेप बहुत ज्यादा न हो, तो मुक्त व्यवसाय और नाभिकीय ऊर्जा मिलकर यह

करतब कर सकते हैं। सायमन के अनुसार संसाधनों की अस्थायी कमी से नए संसाधन खोजने की तकनीकों के विकास को बल मिलता है जिससे हम अंततः पहले से बेहतर हालत में पहुंच जाते हैं। इसी के साथ जनसंख्या वृद्धि से 'कुशल, जोशीले' और आशान्वित लोगों के रूप में 'परम संसाधन' पैदा होता है जो तंत्र को चलाने के लिए नए विचारों को जन्म देते हैं बशर्ते कि वे एक मुक्त बाज़ार व्यवस्था के अंग हों।

प्रचुरतावादियों को रेगन के व्हाइट हाउस में सहानुभूतिपूर्ण सुनवाई मिली और उन्होंने सन् 1984 में जनसंख्या पर राष्ट्र संघ के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए अमरीकी नीति वक्तव्य पर गहरा प्रभाव डाला। नीति में भारी उलटफेर करते हुए, इस दस्तावेज में जनसंख्या वृद्धि को एक 'उदासीन घटना' बताया गया है जो सिर्फ इसलिए समस्या बन गई है क्योंकि 'अर्थव्यवस्था पर सरकारी नियंत्रण' बहुत ज्यादा है और 'एक बौद्धिकता विरोधी माहौल है जिसमें विज्ञान, टेक्नोलॉजी और पश्चिम में हुई भौतिक प्रगति की अवधारणा पर ही चोट हुई है।'

प्रचुरतावादी मत में कुछ स्पष्ट गलतियां हैं। विज्ञान, टेक्नोलॉजी और मानव की आविष्कार प्रतिभा में अटूट विश्वास के परिणामस्वरूप संसाधनों की वास्तविक सीमाओं के प्रति सरोकार की कमी है और समुचित और अनुचित टेक्नोलॉजी के प्रकार को नकारा गया है। तार्किक रूप से देखें, तो सरकारी पर्यावरण नियमन ज्यादा होना चाहिए, कम नहीं। न ही जनसंख्या वृद्धि की बढ़ी हुई दर से दुनिया में ज्यादा जीनियस पैदा होंगे, यदि अधिकांश लोग गरीबी की कैद में रहें। सर्वोत्तम दिमागों को भी जिंदा रहने के लिए भोजन और विकास के लिए शिक्षा चाहिए। और मुक्त बाज़ार पर बहस करने से पहले यह बता देना ज़रूरी होगा कि मुक्त बाज़ार का कोई अस्तित्व नहीं है, सिवाय शायद डिज़्नीवर्ल्ड के। तीसरी दुनिया के देश दक्षिण–कोरिया, ताईवान, सिंगापुर जो सायमन वगैरह के अनुसार मुक्त बाज़ार की सफलता के प्रतीक हैं, वहां भी अर्थव्यवस्था में सरकार की काफी भूमिका रही है। और अंत में, माल्थसवादियों के समान ही प्रचुरतावादी भी शक्ति और गैर–बराबरी के वास्तविक मुद्दों से कन्नी काट जाते हैं।

अलबत्ता, जनसंख्या की बहस को फिर से शुरू करके उन्होंने एक अच्छा काम किया है। लगभग दो दशकों तक हावी रहने के बाद माल्थसवादी आज बचाव पक्ष में हैं और अपना किला बचाने के लिए उन्हें कुछ इलाकों से पीछे हटना पड़ा है।

माल्थसवादी मत में शिथिलता का एक नमूना अमरीकी राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी (सन् 1968) की रिपोर्ट में देखा जा सकता है जिसमें वे पहले के 'खतरे की घंटी' वाले जनसंख्या वृद्धि अनुमानों से पीछे हटे हैं। जनसंख्या वृद्धि प्रगति में सहायक नहीं बाधक

ही होगी, यह कहने के साथ–साथ रिपोर्ट में कहा गया है कि यह (जनसंख्या वृद्धि) आर्थिक व पर्यावरण की दृष्टि से वैसी बुरी चीज नहीं है जैसा कि चित्रित किया गया है। रिपोर्ट के अनुसार जनसंख्या वृद्धि और संसाधन समाप्ति के बीच कोई 'आवश्यक संबंध' नहीं है और अर्थव्यवस्था पर जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव मिश्रित होता है। यदि जनसंख्या वृद्धि का असर नकारात्मक हो, तो भी धीमी वृद्धि प्रगति की गारंटी नहीं है। रिपोर्ट से जनसंख्या की बहस में एक 'मध्यम मार्ग' स्थापित हुआ है। यह 'मध्यम मार्ग' वही है जिसे कई ऐसे जनसंख्याशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों ने पहले से अपनाया हुआ है जो इस मुद्दे पर लगातार एक ज्यादा तर्कसंगत नज़रिया पेश करते रहे हैं।

जनसंख्या प्रतिष्ठान के अंदर इस रिपोर्ट का संभावित असर यह होगा कि माल्थसवादी अपने तर्क ज्यादा चुनिंदा मामलों पर लागू करने को बाध्य होंगे। उदाहरण के लिए, 'न्यू यार्क रिव्यु ऑफ बुक्स' के सन् 1986 के अंक में जनसंख्या परिषद् के जोनाथन लीबरसन यह तो मंजूर करते हैं कि 'अति आबादी कोई विश्वव्यापी समस्या नहीं है' परंतु फिर वे उप–सहारा अफ्रीका की 'वास्तविक' और 'गंभीर' समस्या का विवरण देने लगते हैं। विश्व बैंक ने हाल ही में घोषणा की है कि उप–सहारा अफ्रीका में जनसंख्या समस्या के लिए सहायता उसकी 'सर्वोच्च प्राथमिकता' है और जिसके लिए विदेशी मदद में भारी बढ़ोत्तरी की मांग की है – आज के 5 करोड़ डॉलर से बढ़ाकर सन् 2000 में 32 करोड़ डॉलर करने की।

गलत और सही

चूंकि माल्थसवादियों ने जनसंख्या समस्या का निदान ही गलत किया है इसलिए उनके द्वारा दिया गया इलाज का नुस्ख़ा भी सही नहीं हो सकता और वे अक्सर समस्या को और बिगाड़ देते हैं। यह कई स्तरों पर होता है।

सामाजिक नीति के तहत, माल्थसवादी गरीबी और तदजनित ऊंची जन्मदर के वास्तविक कारणों से ध्यान हटाते हैं। माल्थसवाद एक ऐसी दीवार खड़ी करता है जिसके पीछे तीसरी दुनिया की सरकारें और मदद करनेवाली पश्चिमी संस्थाएं संपत्ति व ताकत के असमान बंटवारे, को ललकारने में अपनी असफलता को छिपाते हैं। सामाजिक न्याय, और अति आवश्यक सुधारों जैसे – भूमि वितरण, रोजगार, सार्वजनिक शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, महिलाओं की मुक्ति आदि को नकारकर उनका स्थान जनसंख्या नियंत्रण ले लेता है। और ऊंची जन्मदर को जन्म देने वाले प्रतिकूल हालात बरकरार रहते हैं।

सांस्कृतिक स्तर पर माल्थसवाद पाश्चात्य जाति केंद्रित मत को पुख़्ता करता है। 'हमारे' न्यूक्लियर परिवार 'उनके' लिए भी अच्छे माने जाते हैं हालांकि अमरीकी उपनगर और तीसरी दुनिया के गांवों की परिस्थितियां बिल्कुल भिन्न हैं। आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता में बच्चों को वयस्क गतिविधियों से अलग–थलग रखा जाता है और उन्हें सामाजिक व आर्थिक बोझ समझा जाता है। इसके विपरीत, तीसरी दुनिया के कई समाजों में बच्चों को ज्यादा सराहनापूर्वक देखा जाता है। इस बात को समझ पाना माल्थसवादियों के लिए मुश्किल है। आज तीसरी दुनिया के कई अभिजात् लोग माल्थसवाद को पाश्चात्य लोगों के समान या उनसे भी ज्यादा आतुरता से अपना रहे हैं। इससे न केवल पश्चिमी मूल्यों की घुसपैठ का अंदाजा लगता है बल्कि यह भी पता चलता है कि कई देशों में वर्ग और जाति के अवरोध कितने ज्यादा हैं, अक्सर राष्ट्रीयता की कड़ी से भी ज्यादा मजबूत। और सबसे आखिर में, माल्थसवाद का उपयोग सांस्कृतिक जाति–संहार के औज़ार के रूप में किया जाता है। उदाहरण के लिए अमरीका में आदिवासी महिलाओं और दक्षिण एशिया में अल्पसंख्यकों की जबरन नसबंदी करना।

व्यक्तिगत स्तर पर माल्थसवाद ने लाखों महिलाओं के जन्म नियंत्रण के अनुभवों पर गहरा नकारात्मक प्रभाव डाला है। जनसंख्या नियंत्रण का लक्ष्य जुड़ जाने के कारण परिवार नियोजन कार्यक्रम में महिलाओं के स्वास्थ्य के प्रति जो सरोकार था, जिससे शुरूआती दौर में नारीवादियों को जन्म नियंत्रण की प्रेरणा मिली थी, वह खत्म हो गया। तीसरी दुनिया के स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन कार्यक्रमों का उद्देश्य मात्र गर्भनिरोध के कुछ लक्ष्य (टारगेट) प्राप्त करना रह गया है। सलाह–मशविरा, जोखिम और फायदे संबंधी जानकारी प्रदान करना आदि बातें यदि हैं भी तो गौण हैं। यह किसी एक स्वास्थ्य या परिवार नियोजन कार्यकर्ता की गलती नहीं है – वे खुद भी एक ऐसे तंत्र में फंसे हैं जहां महिलाओं की ज़रूरत पूरी करने की संवेदनशीलता को नहीं सराहा जाता और निर्णय का एकमात्र आधार जनसंख्या नियंत्रण के टारगेट होते हैं। यह रवैया आमतौर पर सब गुड़–गोबर कर देता है – गर्भनिरोधकों के प्रतिकूल प्रभावों (साइड इफेक्ट्स) से त्रस्त एवं उपचार के अभाव और सुविधाओं की निकृष्टता से परेशान होकर महिलाएं परिवार नियोजन कार्यक्रम को छोड़ देती हैं। इस तरह से भी माल्थसवाद ऊंची जन्मदर बरकरार रखने में योगदान देता है।

माल्थसवाद ने गर्भनिरोध टेक्नोलॉजी की विधियों में एक किस्म का पागलपन भर दिया है। गर्भावस्था टालने के लक्ष्य को प्राथमिकता देकर गर्भनिरोधक अनुसंधान में सुरक्षा को तिलांजलि दे दी गई है जिसके कारण 'ज्यादा कारगर' या उच्च टेक्नोलॉजी विधियों, जैसे – गोली, डीपो प्रोवेरा इंजेक्शन या अब हार्मोन रोपण आदि पर एक तरफ़ा रूप से जोर

दिया जा रहा है। गर्भनिरोध के लिए इन विधियों के जो भी गुण हों पर इनमें स्वास्थ्य का काफी जोखिम होता है, जो परीक्षण के समय व जनसंख्या वगैरह कार्यक्रमों में फॉलोअप के अभाव के कारण और भी बढ़ जाता है।

दूसरी ओर, कंडोम और डायफ्राम जैसी ज्यादा निरापद विधियों की अवहेलना – उनमें सुधार हेतु शोध के लिए पैसे की उपलब्धि और जनसंख्या कार्यक्रमों में इनके वितरण – दोनों रूपों में होती है। कई बातों में ये अवरोध विधियां[12] तीसरी दुनिया की परिस्थितियों में ज्यादा उचित हैं – इनसे यौन रोगों के फैलाव को रोकने में मदद मिलती है, स्तनपान पर इनका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता और दो बच्चों के जन्मों के बीच अंतर रखने में ये बहुत उपयोगी हैं। हालांकि संभव है कि गर्भावस्था रोकने में 100 प्रतिशत सफल न हों। परंतु जनसंख्या एजेंसियां इन्हें पर्याप्त रूप से कारगर नहीं मानतीं क्योंकि ये उपयोगकर्ता के नियंत्रण में होती हैं। दरअसल गर्भनिरोधक अनुसंधान का मुख्य जोर इस बात पर रहा है कि महिलाओं से गर्भनिरोध पर नियंत्रण को छीन लिया जाए, ठीक उसी प्रकार से जैसे – महिलाओं को जन्म प्रक्रिया से ही अलग करने की कोशिशें चल रही हैं।

नैतिक धरातल पर देखें, तो माल्थसवाद मानव अधिकार का हनन करता है। पर्यावरण एवं आर्थिक संसाधनों पर भावी पीढ़ी के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए वर्तमान पीढ़ी के प्रजनन हक छीनना माल्थसवादियों को स्वीकार्य प्रतीत होता है। उनके आपसी अंतर मात्र साधनों को लेकर हैं (साध्य को लेकर नहीं)। माल्थसवादी परिवार नियोजन कार्यक्रमों में दोस्ताना समझाईश का पक्ष लेते हैं जबकि रूढ़िवादी सरेआम दमन का समर्थन करते हैं।

माल्थसवादी बुनियादी रूप से गलत हैं। जनसंख्या समस्या का हल अधिकारों को कम करने में नहीं बल्कि बढ़ाने में है। क्योंकि जनसंख्या समस्या वास्तव में अतिरिक्त तादाद की नहीं है बल्कि बुनियादी अधिकारों के अभाव की है। बहुत सारे लोगों की पहुंच बहुत थोड़े संसाधनों तक ही है। बहुत सारी महिलाओं का खुद के प्रजनन पर बहुत कम नियंत्रण है। तेज जनसंख्या वृद्धि अल्प विकास का कारण नहीं है, यह तो सामाजिक सुधारों की धीमी गति का एक लक्षण है।

मुद्दा दो बुनियादी किस्म के अधिकारों का है। पहला, धरती पर मौजूद (न कि सिर्फ भावी) प्रत्येक व्यक्ति को भोजन, आवास, स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा की उपलब्धि के ज़रिए एक सम्मानीय जीवन स्तर जीने का अधिकार। वर्तमान जनसंख्या

---

[12]बैरियर मैथड्स।

वृद्धि की दर के बावजूद यदि सारे नहीं तो अधिकांश देशों के पास इतने साधन हैं कि प्रत्येक को यह अधिकार मिल सके, बशर्ते कि उनकी संपत्ति और ताकत का बंटवारा बराबरी से हो। औद्योगिक राष्ट्रों और तीसरी दुनिया के बीच भी संसाधनों का उचित बंटवारा इतना ही ज़रूरी है।

एक बार लोगों की जिंदगी सुनिश्चित हो जाए और उनकी सुरक्षा का एकमात्र साधन बच्चे न रहें, तो इतिहास गवाह है कि जनसंख्या वृद्धि की दर स्वैच्छिक रूप से कम हो जाती है। औद्योगिक देशों में जनसंख्या रचना में उलटफेर के पीछे ऊंचे जीवन स्तर का प्रेरक बल काम कर रहा था। चाहे पूंजीवादी हो, समाजवादी या मिश्रित अर्थव्यवस्था वाला देश हो, यदि किसी देश ने व्यापक विकास को प्राथमिकता दी है तो अपेक्षाकृत कम प्रति व्यक्ति आय के बावजूद जनसंख्या वृद्धि में कमी आई है। क्यूबा, श्रीलंका, कोरिया, ताईवान और चीन इसके उदाहरण हैं। दूसरी तरफ भारत में (जहां आर्थिक प्रगति के लाभ बहुत थोड़े से लोगों ने हथिया लिए हैं) सरकार द्वारा जनसंख्या नियंत्रण पर भारी खर्चे के बावजूद जनसंख्या वृद्धि की ऊंची दर बरकरार है।

अच्छे जीवन स्तर का अधिकार ज़रूरी है, पर यथेष्ट नहीं। दूसरा निर्णायक अधिकार है – महिलाओं का अपने प्रजनन पर अधिकार।

परिवार नियोजन कार्यक्रम एवं गर्भनिरोधकों के अनुसंधान का लक्ष्य जनसंख्या नियंत्रण नहीं बल्कि प्रजनन के विकल्पों का विस्तार होना चाहिए।

प्रजनन के विकल्प का अर्थ क्या है? संकीर्ण रूप में देखें तो इसका अर्थ है महिलाओं के लिए जन्म नियंत्रण की कई सारी विधियां, जिसमें कानूनी गर्भपात शामिल है, उपलब्ध कराना जिनमें से वे स्वतंत्रतापूर्वक चुनाव कर सकें। परंतु चुनाव का संबंध किसी खास उत्पाद से उतना नहीं है जितना कि परिवार नियोजन सुविधा में प्रदानकर्ता और प्राप्तकर्ता के बीच के रिश्ते से है। अच्छी तरह से छानबीन (स्क्रीनिंग), सलाह, फॉलोअप, और अनौपचारिक सहमति (इनफॉरमल कन्सेंट) उस महिला (या आदमी) के अनुभवों व ज़रूरतों के प्रति सम्मान पर निर्भर होती है। वही इस बात की अंतिम निर्णायक होगी कि गर्भनिरोधक का इस्तेमाल करना है या नहीं और यदि करना है, तो कौनसी विधि? आखिर उसकी कोख उसकी अपनी है।

प्रजनन विकल्प का सवाल अंततः परिवार नियोजन कार्यक्रम की सीमाओं से कहीं आगे जाता है जिसमें परिवार और समाज में महिला की भूमिका की बात भी आती है। उन महिलाओं का प्रजनन पर नियंत्रण ज्यादा होता है जिनका अपनी आर्थिक व सामाजिक

ज़िंदगी पर भी नियंत्रण होता है और जो आदमियों के साथ शक्ति का बंटवारा बराबरी से कर पाती हैं।

जैसे गरीबी घटने से जन्म दर घटती है, उसी तरह पितृसत्ता का दबाव घटने से भी जन्म दर घटती है। कम अंतर पर लगातार गर्भ का शारीरिक बोझ ही इतना होता है कि जो महिलाएं प्रजनन पर स्वतंत्रतापूर्वक नियंत्रण कर सकती हैं वे कभी–कभार ही बहुत बच्चे पैदा करती हैं। जिन महिलाओं को शिक्षा व सार्थक रोज़गार उपलब्ध हैं वे और भी कम बच्चे चाहती हैं क्योंकि उनके सामने अन्य विकल्प मौजूद हैं।

कहने का मतलब यह नहीं है कि इन दो बुनियादी अधिकारों की गारंटी मिलने मात्र से जनसंख्या वृद्धि घट जाएगी, इसलिए ये अधिकार दिए जाने चाहिए, बल्कि बात तो उल्टी है। जब सामाजिक सुधार, महिला परियोजनाएं, परिवार नियोजन कार्यक्रम आदि जनसंख्या वृद्धि घटाने के घोषित लक्ष्य से आयोजित किए जाते हैं तो अंदर–अंदर ही खोखले होते हैं और अंततः असफल। महान माल्थसी व्यूह में व्यक्तियों का कोई महत्व नहीं बचता। माल्थसवाद अपनी प्रकृति से ही सामाजिक सुधारों के विरुद्ध हैं। ये बुनियादी अधिकार तो अपने आप में बहुमूल्य हैं और मानव कल्याण के लिए इनका महत्व जनसंख्या वृद्धि कम करने से कहीं ज्यादा है।

इन अधिकारों को सुनिश्चित करने का कोई आसान नुस्खा नहीं है। सामाजिक परिवर्तन एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें गहन सांस्कृतिक परिवर्तन और थोड़े कम राजनीतिक बदलाव और देशों, वर्गों, लिंगों के बीच सत्ता संघर्ष शामिल हैं। अलबत्ता एक बात साफ हैः माल्थसवाद प्रकृति के रास्ते का रोड़ा है। क्योंकि जनसंख्या समस्या को हम जिस प्रकार से प्रस्तुत करते हैं उससे इस बात पर गहरा असर पड़ता है कि हम तीसरी दुनिया में जीवन को बेहतर बनाने के ठोस प्रयत्नों और दुनिया भर की महिलाओं द्वारा प्रजनन के सार्थक चुनाव के प्रयासों को किस तरह का समर्थन देंगे, या नहीं देंगे।■

जनसंख्याशास्त्र की सुरंग के उस पार रोशनी की किरण[13]

– प्रो. बेट्सी हार्टमान

इस पुस्तक[14] के पहले अध्याय में दो बुनियादी किस्म के अधिकारों की बात की गई थी, जो जनसंख्या समस्या को समझने और हल करने के लिए आवश्यक हैं। पहला है – भोजन, आवास, स्वास्थ्य सुविधा, शिक्षा, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा के ज़रिए हर व्यक्ति को इस धरती पर सम्मानजनक जीवन स्तर का जीने का अधिकार। दूसरा है – महिलाओं का अपने प्रजनन पर नियंत्रण का बुनियादी अधिकार।

जनसंख्या संक्रमण[15]

श्रम व सुरक्षा के स्रोत के रूप में बच्चों का महत्व, लड़कों को प्रमुखता, उच्च शिशु मृत्युदर, महिलाओं की पराधीनता आदि को मिलाकर यह समझने में मदद मिलती है कि लोगों के परिवार बड़े क्यों होते हैं, और कम बच्चे पैदा करने के लिए कौन–सी चीजें उन्हें प्रेरित करती हैं?

जनसंख्याशास्त्रियों ने यूरोप में पिछली कुछेक सदियों में हुई जन्मदर की कमी के कारणों की तलाश की है। ये कारण दुनिया में अन्यत्र जनसंख्या रुझान पर भी लागू किए जा सकते हैं। यूरोप के जनसंख्या संक्रमण को काफी आसान और सीधे–सादे नियमों से समझा जाता था। आधुनिक चिकित्सा, जनस्वास्थ्य उपायों और बेहतर भोजन के फैलाव के फलस्वरूप मृत्युदर में कमी की वजह से कुछ समय के बाद जन्मदर में गिरावट आई। इसके साथ–साथ आर्थिक विकास के कारण बच्चों की ज़रूरत (मांग) भी कम हो गई, महिलाओं की शिक्षा और रोज़गार के कारण शादी की उम्र बढ़ गई। औद्योगीकरण, शहरीकरण, और संचार माध्यमों के फैलाव ने पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों को चुनौती दी और प्रजनन नियंत्रण विधियों को बढ़ती स्वीकृति मिली।

जनसंख्याशास्त्रियों ने अब उजागर किया है कि राष्ट्रों और क्षेत्रों के बीच विविधता के कारण जनसंख्या संक्रमण के बारे में आसान सूत्र लागू नहीं किए जा सकते। उदाहरण के लिए इंग्लैंड में औद्योगीकरण और मृत्युदर में गिरावट की अपेक्षाकृत तेज गति के बावजूद

---

[13]'रिप्रोडक्टिव राईट्स एंड रांग्स : . . .' (जनवरी 1987) से साभार। मूल अंग्रेजी से अनुवाद : डॉ. सुशील जोशी।

[14]'रिप्रोडक्टिव राईट्स एंड रांग्स : . . .' (जनवरी 1987)।

[15]संक्रमण यानी 'एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाने' का आशय यहां जनसंख्या वृद्धि रोकने के लिए सामाजिक–आर्थिक हालात बदलकर समर्थक माहौल बनाने से है।

फ्रांस में प्रजनन दर ज्यादा तेजी से गिरी। हॉलैण्ड और हंगरी के छोटे भूस्वामियों – जो आमतौर पर परंपरा से बंधे रहते हैं – ने उन्नीसवीं सदी में अपने परिवारों को सीमित करना शुरू कर दिया था ताकि उनके बच्चे विरासत में जमीन का उचित टुकड़ा पा सकें।

हालांकि राष्ट्र विशेष की आर्थिक, सांस्कृतिक व सामाजिक परिस्थितियों का प्रजनन दर में कमी पर अवश्य प्रभाव पड़ा परंतु बीसवीं सदी की शुरूआत तक पूरे यूरोप और उत्तरी अमरीका में जनसंख्या संक्रमण काफी आगे बढ़ चुका था। सोवियत संघ और जापान ने भी इसका अनुसरण किया और इनमें तो और तेज प्रजनन गिरावट आई। छुटपुट विविधताएं कुछ भी हों पर जनसंख्या संक्रमण की घटना पर स्थूल रूप में आर्थिक विकास हावी रहा है। और यह संक्रमण किसी भी घोषित सरकारी जनसंख्या नियंत्रण नीति के बगैर आया। यह अनुभव तीसरी दुनिया के लिए आज कितना प्रासंगिक है, यह बहस का विषय है। जनसंख्याशास्त्री जॉन कॉडवेल के अनुसार संस्कृति में महत्वपूर्ण भिन्नताओं के कारण एक मामले से दूसरे मामले पर सामान्यीकरण असंभव है। उदाहरण के लिए यूरोप में जनसंख्या संक्रमण की शुरूआत से बहुत पहले ही परिवार व समाज के ढांचे में परिवर्तन के कारण बच्चे आर्थिक रूप से बोझ बन गए थे जो कि तीसरी दुनिया के आम संयुक्त परिवारों में उतना नहीं हुआ है। विश्व बैंक के लिए औद्योगीकृत देशों का अनुभव अप्रासंगिक है क्योंकि तीसरी दुनिया के कई देशों में हो रही जनसंख्या वृद्धि एक ऐसी घटना है 'जिसकी आर्थिक और जनसांख्यिकीय इतिहास में कोई मिसाल नहीं मिलती।'

तीसरी दुनिया में बढ़ती जनसंख्या को कैसे रोका जाए, इसको लेकर सिद्धांतों की भरमार है। कॉडवेल का भरोसा है कि सार्वजनिक शिक्षा और पाश्चात्य मूल्यों की घुसपैठ से प्रजनन दर में गिरावट आएगी चाहे विस्तृत औद्योगीकरण नदारद रहे। जनसंख्या परिषद् के मीड केन का मानना है कि सामाजिक सुरक्षा का मुद्दा सर्वोपरि है और सुरक्षा के वैकल्पिक स्वरूप प्रदान करने एवं 'जोखिम के माहौल' को सुधारने से लोगों की बच्चों की ज़रूरत में कमी आ सकती है।

जनसंख्या नियंत्रण के कट्टर पक्षधरों की दलील है कि तीसरी दुनिया के पास इतने संसाधन ही नहीं हैं कि वे पश्चिम के उस आर्थिक स्तर तक पहुंच सकें जो संक्रमण के वक्त था। और उनके पास जो संसाधन हैं भी, वह बढ़ती आबादी खा जाती है। इसलिए उनका तर्क है कि जनसंख्या नियंत्रण से ही जन्मदर कम होने की उम्मीद है, न कि आर्थिक बेहतरी से। परंतु क्या यह ज़रूरी है कि जनसंख्या संक्रमण के लिए तीसरी दुनिया को पश्चिम के आमदनी के स्तर तक आना ही पड़े?

कई जगहों चीन, कोरिया, श्रीलंका, ताइवान और भारत के केरल प्रांत में जन्मदर तभी गिरना शुरू हो गई थी जब उनकी प्रति व्यक्ति आय केवल कुछ सौ डॉलर थी। इन देशों के अनुभवों से क्या पता चलता है?

अब अपनी मूल मान्यता पर वापिस चलते हैं कि जनसंख्या संक्रमण के पीछे बुनियादी शक्ति आर्थिक विकास की थी। यदि विकास को प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद[16] से मापा जाए, तो हम देखते हैं कि प्रति व्यक्ति ऊंची आमदनी वाले देशों की जन्मदर आमतौर पर कम है हालांकि इस नियम के महत्वपूर्ण अपवाद भी हैं। कई सारे उच्च आमदनी वाले देशों यथा, सीरिया, जार्डन, ईरान, इराक और दक्षिण अफ्रीका की स्थूल जन्मदर 40 या इससे ज्यादा है, जबकि दुनिया के निर्धनतम दो देशों – चीन और श्रीलंका – की जन्मदर क्रमशः 19 और 27 ही है।

क्या यह मात्र एक सांख्यिकीय असमानता है या विकास की अवधारणा की दिक्कत है? यदि हम विकास की परिभाषा इस रूप में करें कि आर्थिक वृद्धि से कितने लोगों को वाकई लाभ हुआ है तो पाएंगे कि संसाधनों के ज्यादा समतामूलक वितरण से जन्मदर कम हो जाती है, फिर चाहे प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद अपेक्षाकृत कम ही क्यों न हो। सबसे पहले यह आमदनी के वितरण का मुद्दा है। उदाहरण के लिए श्रीलंका में तीसरी दुनिया के अन्य देशों के मुकाबले संपत्ति का वितरण ज्यादा समान है। वहां सबसे ऊपरी 20 प्रतिशत परिवारों का आमदनी के 43 प्रतिशत पर कब्जा है और सबसे नीचे के 20 प्रतिशत का 7 प्रतिशत पर। इसकी तुलना में कीन्या (जिसका प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद श्रीलंका के 360 डॉलर से थोड़ा ही ज्यादा है) में सबसे ऊपरी 20 प्रतिशत परिवार 60 प्रतिशत आमदनी पर कब्जा जमाए बैठे हैं और निर्धनतम 20 प्रतिशत मात्र 3 प्रतिशत पाते हैं। कीन्या की जन्मदर विश्व में सर्वाधिक है।

ब्राजील का आमदनी वितरण कीन्या से भी खराब है। और इसका सकल राष्ट्रीय उत्पाद 2,000 डॉलर होने के बावजूद इसकी जन्मदर 31 है अर्थात् श्रीलंका से 4 अंक ज्यादा। दक्षिणी अफ्रीका में, जहां अश्वेत बहुमत को विकास प्रक्रिया में कोई स्थान नहीं है, वहां की जन्मदर (40) का ऊंची प्रति व्यक्ति आय 2,500 डॉलर से कुछ संबंध नहीं है।

---

[16]प्रति केपिटा जी.एन.पी.।

तालिका क्र. 1

चुने हुए देशों की शिशु मृत्युदर, स्थूल मृत्युदर और प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद (सन् 1984)

देश	शिशु मृत्यदर	स्थूल मृत्युदर	प्रति व्यक्ति स.रा.उ. (अमरीकी डॉलर में)
नाइज़ीरिया	110	50	730
आयवरी कोस्ट	106	45	610
अल्ज़ीरिया	82	42	2,410
सऊदी अरब	61	43	10,530
मेक्सिको	51	33	2,040
श्रीलंका	37	26	360
चीन	36	19	310
कोस्टारिका	19	29	1,190
क्यूबा	16	17	1,410[17]
टमरीका	11	16	15,390
स्वीडन	07	11	11,860

इस विरोधाभास के कारणों को ढूंढने के लिए ज्यादा गहराई में नहीं जाना पड़ेगा। पूरी आबादी के बढ़े हुए जीवन स्तर के कारण स्वास्थ्य, शिक्षा और नौकरियां आमतौर पर उपलब्ध होने लगती हैं। ये सारे कारक लोगों को परिवार सीमित करने के लिए प्रेरित करते हैं। जिन देशों में ज्यादा समतामूलक आमदनी वितरण नीति है वहां आमतौर पर ऐसी नीतियों पर अमल किया जाता है जिनसे बहुतों तक सेवाएं पहुंच सकें। जैसे कुछेक संपन्न लोगों के लिए उच्च शिक्षा की बजाय सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा को प्राथमिकता देना। इसी प्रकार से श्रीलंका, चीन और क्यूबा जैसे देशों ने विस्तृत जनस्वास्थ्य सुविधाएं विकसित की हैं और अपेक्षाकृत कम प्रति व्यक्ति आमदनी के बावजूद शिशु मृत्युदर घटाई है जबकि कई संपन्न देश इसमें असफल हो गए।

एक और महत्व का मुद्दा यह भी है कि महिला–पुरुष के बीच संसाधनों का वितरण कितना समतामूलक है। मध्य पूर्व के संपन्न देशों में ऊंची जन्मदर का एक कारण यह भी

[17]सन् 1981 का आंकड़ा। स्रोत : विश्व बैंक, विश्व विकास रिपोर्ट 1986.

हो सकता है कि घर से बाहर महिलाओं की भागीदारी पर रोक लगाई गई है। इसके विपरीत श्रीलंका और थाइलैंड जैसे एशियाई देशों में महिलाओं के ऊंचे दर्जे के कारण उनका नियंत्रण न सिर्फ संसाधनों पर है बल्कि अपने प्रजनन पर भी है।

इन कारकों को पहचानने के बाद जनसंख्या संक्रमण के परंपरागत सिद्धांत को फिर से ढाला गया है, जिसमें सामाजिक और आर्थिक न्याय की प्रमुख भूमिका है।

जनसंख्या संक्रमण पर दोबारा विचार

परंपरागत जनसंख्या सिद्धांत के तहत प्रजनन में गिरावट के तीन मुकाम (पड़ाव) माने जाते हैं –

पहला, उच्च मृत्युदर और उच्च जन्मदर – उद्योग पूर्व के समाजों में चिकित्सा सुविधा और पोषण के अभाव से उपजी उच्च मृत्युदर को उच्च जन्म दर से बराबर कर दिया जाता है और एक जनसंख्या संतुलन बना रहता है।

दूसरा, पिछड़ाव – निम्न मृत्युदर और उच्च जन्मदर – सामाजिक विकास शुरू होने पर आधुनिक टेक्नोलॉजी मौतों की संख्या घटा देती है। इस समय जन्मदर ऊंची ही रहती है क्योंकि बच्चे जनने को लेकर परंपरागत नज़रिया टिका रहता है और लोगों को यह समझने में समय लगता है कि उनके बच्चों के जिंदा रहने की संभावना अब ज्यादा है। इसका परिणाम तेज जनसंख्या वृद्धि होता है। तीसरी दुनिया के कई देश इस मुकाम पर अटक गए हैं।

तीसरा, निम्न मृत्युदर और निम्न जन्मदर – औद्योगिक विकास ऐसी स्थिति में पहुंच जाता है जब नए मूल्यों, महिलाओं के लिए ज्यादा अवसरों और बच्चों को पालने की बढ़ी हुई लागत के कारण लोग छोटे परिवार को पसंद करने लगते हैं। अपनी 'जनसंख्या संक्रमण के सामाजिक न्याय सिद्धांत' में डॉ. जॉन रैटक्लिफ इस परंपरागत नज़रिए को चुनौती देते हुए तीन अवस्थाओं को परिभाषित करते हैं, जो निम्नानुसार हैं –

- **उच्च मृत्युदर व उच्च प्रजनन दर** – यह प्राकृतिक परिस्थिति नहीं है अपितु बुरी तरह से स्तरबद्ध उन समाजों की आम जनसंख्या के हालात हैं, जहां संसाधनों का बंटवारा भी गैर–बराबरी से होता है। इसमें वे समाज भी शामिल हैं जो उपनिवेश रहे हैं। इन समाजों में स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी सुविधाएं अल्पसंख्यक अभिजात्य शासक वर्ग की सेवा में काम करती हैं। परिणामस्वरूप बहुसंख्य आबादी ऊंची मृत्युदर की शिकार होती है। परिवार ही जीवन सुरक्षा की इकाई है और इसलिए जीविकोपार्जन अर्थव्यवस्था में उच्च प्रजनन दर ज़रूरी हो जाती है।

- **गिरती मृत्युदर व ऊंची प्रजनन दर** – यह बात आज तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों पर लागू होती है। यह आधुनिक चिकित्सा तकनीक के कारण नहीं होता, जैसाकि परंपरागत जनसंख्या सिद्धांत में मान्यता है अपितु इसलिए होता है कि औपचारिक शासकीय सेवाएं सारे लोगों तक तो नहीं, पर पहले से ज्यादा लोगों तक पहुंचाई जाती हैं। ऐसा अक्सर औपनिवेशिक शासन से आज़ादी मिलने पर होता है। नए राष्ट्रवादी शासक बुनियादी सामाजिक सुधारों का वायदा करके सत्ता में आते हैं परंतु अंततः कई सारी पुरानी औपनिवेशिक नीतियों को अपना लेते हैं, जैसे – संसाधनों को प्राथमिक शिक्षा के बजाय अभिजात्य लोगों की उच्च शिक्षा पर केंद्रित करना या ग्रामीण गरीबों को प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधा मुहैया कराने की बजाय शहरी क्षेत्रों में पाश्चात्य इलाज आधारित चिकित्सा उपलब्ध कराना।

  परंतु फिर भी आधुनिक संचार तंत्र के गठन, कृषि उत्पादन में वृद्धि और टीके जैसे बुनियादी स्वास्थ्य उपायों के रूप में प्रगति होती है। चूंकि औपनिवेशिक जमाने की तुलना में अब सरकारी सुविधाएं ज्यादा लोगों तक पहुंचती हैं इसलिए खासकर शहरी क्षेत्रों में और संपन्न तबके में मृत्युदर गिरने लगती है। संगठित क्षेत्रों में काम करने वाले लोग भी कम बच्चे चाहने लगते हैं।

  गांवों में रहने वाली अधिकांश गरीब आबादी के लिए फिर भी, जीवन के हालातों में कोई नाटकीय परिवर्तन नहीं आता। मृत्युदर थोड़ी कम हो जाती है पर उर्वरता स्तर वही रहता है क्योंकि परिवार अभी भी जीवन सुरक्षा की इकाई है।

  इस प्रकार से निम्न मृत्युदर और ऊंची प्रजनन दर के बीच की खाई वास्तव में संपन्न और निर्धन के बीच की सामाजिक खाई है।

- **निम्न मृत्युदर और निम्न प्रजनन दर** – यह तब होता है जब सरकार विस्तृत सामाजिक सुधार के उपाय करती है, जैसे – भूमि और आय का पुनर्वितरण, शैक्षिक सुधार, प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रावधान, और महिलाओं की स्थिति में सुधार। अब लोगों को जीवन सुरक्षा की इकाई के रूप में परिवार पर आश्रित नहीं रहना पड़ता क्योंकि सरकार व अन्य संस्थाएं सुरक्षा और रोजगार देती हैं।

जनसंख्या संक्रमण के इस नज़रिए के क्या मायने हैं? यह तो पक्का है कि जनसंख्या नियंत्रण के कार्यक्रम जनसंख्या वृद्धि की दर कम नहीं करते अपितु समाज के ढांचे – जिसके ज़रिए गरीबी को जारी रखा जाता है और लोग जीवन सुरक्षा के लिए बच्चों पर निर्भर रहते हैं – में परिवर्तन से यह दर कम होती है। क्यूबा, दक्षिण कोरिया, श्रीलंका और केरल (भारत) के निम्नलिखित उदाहरण ठोस रूप में बताते हैं कि यह सामाजिक न्याय आधारित जनसंख्या संक्रमण कैसे होता है।

क्यूबा : कामयाबी की अनकही कहानी

जनसंख्या नियंत्रण संबंधी अधिकांश साहित्य क्यूबा के बारे में खामोश है, जिसने न्यूनतम समय में और वह भी अपेक्षाकृत कम प्रति व्यक्ति आय के स्तर पर, जन्मदर में सर्वाधिक कमी हासिल की है। सन् 1965 और 1980 के बीच क्यूबा की जन्मदर आधी रह गई। सन् 1959 में क्रांति के तुरंत बाद इसकी स्थूल जन्मदर 35 जन्म प्रति हजार व्यक्ति थी, आज यह मात्र 17 है। यह अमरीका से सिर्फ एक अंक ज्यादा है जबकि क्यूबा की प्रति व्यक्ति आय अमरीका का दसवां हिस्सा है। दरअसल, पूरे लातिनी अमरीका में क्यूबा की जन्मदर सबसे कम है।

क्रांति से पहले क्यूबा के अधिकांश लोगों का जीवन स्तर अधिकांश लातिनी अमरीकियों जैसा ही खराब था – प्रत्याशित आयु कम थी, शिशु मृत्युदर ऊंची थी, और आधे से ज्यादा बच्चे कुपोषित थे। आर्थिक और सामाजिक सुधार और साथ में कारगर सार्वजनिक स्वास्थ्य तंत्र के निर्माण से, जीवन की गुणवत्ता में नाटकीय सुधार हुआ है।

आज क्यूबा की शिशु मृत्युदर लातिनी अमरीका में न्यूनतम है, प्रत्याशित आयु अमरीका से सिर्फ दो वर्ष कम है और रोजगार व साक्षरता दर ऊंची है। आमदनी में अंतर कम है और हालांकि लिंगभेद अभी भी बहुत है पर क्यूबा की महिलाएं शेष लातिनी अमरीकी देशों के मुकाबले ज्यादा स्वतंत्र हैं। क्यूबा के पारिवारिक संहिता कानून में यहां तक कहा गया है कि पुरुषों को घरेलू काम में बराबरी की हिस्सेदारी करनी चाहिए।

लातिनी अमरीका में क्यूबा एक मिसाल है कि किस तरह से समानता का असर प्रजनन पर पड़ता है। क्यूबा से दुगुनी प्रति व्यक्ति आय वाले देश वेनेजुएला की जन्मदर 33 है और बराबर प्रति व्यक्ति आय वाले मेक्सिको की जन्मदर 32 है। इन दोनों देशों में सारी संपत्ति कुछ लोगों की मुट्ठी में है और अधिकांश लोग गरीब हैं। क्यूबा में निम्न जन्मदर बगैर किसी जनसंख्या अभियान के हासिल हुई है। स्वास्थ्य तंत्र के ज़रिए परिवार नियोजन सेवाएं जिसे चाहिए उसे मुफ़्त में मिलती हैं।

कोरियाई 'चमत्कार'

दक्षिण कोरिया भी सर्वाधिक तेज जनसंख्या संक्रमण का दावेदार है – सन् 1960 की स्थूल जन्म दर 41 से घटकर 1974 में 24 रह गई (और 1984 में 20)। कोरिया में इसका प्रमुख कारण दूसरे विश्व युद्ध के बाद हुए आर्थिक व सामाजिक परिवर्तन हैं, जिनसे समानता की दिशा में तरक्की हुई। ये किसी लोकप्रिय क्रांति के परिणाम नहीं थे। अर्थशास्त्री राबर्ट रेपेटो बताते हैं –

"समानता का उच्च–स्तर जनकल्याण के प्रति किसी जोरदार संकल्प के कारण नहीं वरन् युद्ध के विनाश के ज़रिए आया, एक भूमि सुधार कानून के ज़रिए, जो कम्युनिस्ट दखलंदाजी के भय के माहौल में पारित किया गया और मुख्यतः निजी भूमि बिक्री द्वारा या अमरीकी फौजी सरकार द्वारा संपादित किया गया, और एक शैक्षिक सुधार के ज़रिए जो अमरीकी फौजी सरकार ने शुरू किया।"

दूसरे विश्व युद्ध के अंत में जब कोरिया मित्र राष्ट्रों के कब्जे में था, तब ग्रामीण क्षेत्र में भूस्वामित्व की एक सामंती व्यवस्था लागू थी, जिसमें अधिकांश जमीन पर बड़े जमींदारों का कब्जा था। उदाहरण के लिए, सन् 1938 में कोरिया के मात्र 19 प्रतिशत कृषक परिवार के मुखिया जमीन के पूर्ण मालिक थे। अमरीका द्वारा प्रायोजित भूमि सुधारों के बाद यह आंकड़ा 72 प्रतिशत हो गया।

इसी दौरान शैक्षिक सुधारों से औपचारिक स्कूल सभी की पहुंच के दायरे में आ गए। सन् 1954 में 64 प्रतिशत बच्चे स्कूल जाते थे, 1960 में 95.3 प्रतिशत जाने लगे। इसी अवधि में माध्यमिक, उच्च माध्यमिक शालाओं व कॉलेजों में भर्ती लगातार बढ़ रही थी। सन् 1960 में एक चौथाई बच्चे कॉलेज स्तर की शिक्षा प्राप्त करने की उम्मीद रखते थे जो कि अधिकांश देशों से ज्यादा हैं। इन नए शैक्षिक अवसरों ने गरीब लोगों की सामाजिक गतिशीलता बढ़ाने का काम किया, जिससे आमदनी की गैर–बराबरी घटाने में मदद मिली।

जीवन स्तर में सुधार के फलस्वरूप कोरिया के सभी इलाकों और वर्गों में प्रजनन दर में कमी आई। शुरूआती गिरावट का परिवार नियोजन कार्यक्रमों से कुछ लेना–देना नहीं था यानी सन् 1964 तक, जबकि गिरावट शुरू हो चुकी थी, तब तक मात्र 12 प्रतिशत महिलाओं ने गर्भनिरोधक उपयोग करने की बात की। सन् 1973 में यह आंकड़ा 55 प्रतिशत हो गया था। हालांकि गर्भपात गैरकानूनी था पर जन्म नियंत्रण की वह सबसे आम विधि थी। महिलाओं की शिक्षा और रोज़गार से भी प्रजनन दर कम हुई क्योंकि इनसे शादी की उम्र बढ़ गई। दुर्भाग्यवश, आज पाश्चात्य जनसंख्या नियंत्रण दर्शन को अपनाने की सरकारी नीति के कारण अब कोरिया में नसबंदी का प्रचार किया जाता है।

1960 और 1970 के दशक में सस्ते श्रम पर आधारित निर्यातमुखी उद्योगों के विकास से कोरिया में 'चमत्कारिक' आर्थिक वृद्धि हुई। यद्यपि परंपरागत मत यह है कि इस वृद्धि से सामाजिक बराबरी में और वृद्धि हुई है पर इस बात के काफी जोरदार सबूत हैं कि सच्चाई इसके विपरीत है। बहरहाल द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के सुधारों के कारण, अभी भी कोरिया में गरीब–अमीर की खाई कई अन्य तीसरी दुनिया के देशों के मुकाबले कम है।

ताईवान में भी इसी तरह से प्रजनन में गिरावट आई। युद्ध के बाद का इसका इतिहास कोरिया से काफी मिलता–जुलता है – अमरीका द्वारा प्रायोजित भूमि सुधार, शिक्षा का प्रसार और निर्यातमुखी उत्पादन के ज़रिए औद्योगिक विकास।

परंतु यह संदेहास्पद है कि दक्षिण कोरिया–ताईवान का मॉडल अन्यत्र भी लागू किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, अमरीका द्वारा प्रायोजित ताजा भूमि सुधार कार्यक्रम अल सेल्वेडॉर और तत्कालीन दक्षिणी वियतनाम में असफल हो गए क्योंकि ये भूमि व संपत्ति के वास्तविक बंटवारे से बहुत दूर रह गए। ऊपर से सामाजिक न्याय थोपना मुश्किल है, खासकर ऐसी परिस्थिति में जब नीचे से इसके उभार का दमन किया जा रहा हो।

श्रीलंका : एक जमाने का कल्याणकारी राज्य

श्रीलंका कोई समृद्ध देश नहीं है। सन् 1983 में इसकी प्रति व्यक्ति आय 330 डॉलर थी। इससे अर्थव्यवस्था के ठहराव का आभास मिलता है, जिसकी जड़ें ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के जमाने से चली आ रही हैं जब यह देश अपनी आमदनी के लिए कतिपय नगदी फसलों पर निर्भर हो गया था। हालांकि श्रीलंका आर्थिक विकास के क्षेत्र में सफल नहीं रहा है परंतु यहां मानव विकास के क्षेत्र में बहुत तरक्की हुई। सन् 1977 में रूढ़िवादी सरकार के चुने जाने से पहले, श्रीलंका तीसरी दुनिया के कुछेक कल्याणकारी राज्यों में से एक था।

मुफ़्त चावल का पूरक राशन, नौकरी और वृद्धावस्था सुरक्षा प्रावधान, प्रगतिशील कर प्रणाली और मुफ़्त शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं के ज़रिए श्रीलंका के लोगों का जीवन स्तर अन्य निम्न आय या शायद मध्य आय देशों से भी बेहतर है। शिशु मृत्युदर जो सन् 1946 में 150 थी सन् 1983 में गिरकर 37 रह गई, प्रत्याशित आयु आज 76 वर्ष है, और देश में लगभग पूर्ण साक्षरता है। चाय बागानों में काम करने वाले शोषित तमिल अल्पसंख्यक इसके अपवाद हैं। यहां महिलाओं के जीवन में वास्तविक सुधार हुआ है। सन् 1977 में विश्वविद्यालय में लड़कों की अपेक्षा लड़कियां ज्यादा थीं। कई महिलाएं घर के बाहर काम पर जाती हैं, परिणामस्वरूप उनकी शादी देर से होती है।

प्रजनन पर इन उपायों के प्रभाव का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। सन् 1963 और 1983 के बीच स्थूल मृत्युदर में 20 प्रतिशत की कमी हुई (33 से 27) और प्रजनन उम्र की आधी से ज्यादा महिलाएं आज गर्भनिरोधकों का उपयोग करती हैं। दरअसल श्रीलंका की जन्मदर तीसरी दुनिया में सबसे कम है।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक के दबाव के कारण आज श्रीलंका की सरकार कल्याणकारी उपायों को त्यागकर निर्यातमुखी आर्थिक विकास के पीछे भाग रही है। विदेशी निवेश के लिए मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाए जा रहे हैं। इसका औचित्य यह बताया जाता है कि कल्याणकारी कामों से सरकारी संसाधनों पर दबाव पड़ रहा था और आर्थिक विकास रुक गया था। परंतु क्या श्रीलंका आज ऐसा होता, यदि वह कल्याणकारी राज्य न होता तो? शायद नहीं। इसके बजाय शिशु मृत्युदर व जन्मदर ऊंची होती, प्रत्याशित आयु कम होती और विश्व बैंक एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष इसे बांग्लादेश या भारत की तर्ज़ पर कठोर जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम चलाने की सलाह देते होते। वास्तव में श्रीलंका का नसबंदी कार्यक्रम आज प्रलोभन की नीति पर चलाया जाने लगा है।

केरल : भारत का अपवाद

भारत के केरल प्रांत का नैसर्गिक सौंदर्य ध्यान खींच लेता है : इसके हरे–भरे नारियल के बगीचे, धान के खेत, सुंदर समुद्र तट और नहरें। उष्ण कटिबंध का यह स्वर्ग इंसानों के लिए भी स्वर्ग है। अपने हमवतनों की तरह केरल के लोग गरीबी के बोझ से दोहरे नहीं दिखते। भूख और बीमारी बहुत कम नज़र आती है, बच्चे स्कूल में होते हैं और महिलाएं आत्मविश्वास से काम करती हैं।

परंतु मानक मापदंडों से केरल गरीब है। इसकी प्रति व्यक्ति आमदनी और प्रति व्यक्ति कैलोरी खपत भारत में सबसे कम है और इसका जनसंख्या घनत्व 550 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. है जो कि बांग्लादेश के बराबर है। जीवन गुणवत्ता के दूसरे सूचकांक, अलबत्ता बहुत बेहतर हैं। केरल के लगभग 70 प्रतिशत लोग साक्षर हैं (भारत 36 प्रतिशत)। राष्ट्रीय औसत प्रत्याशित आयु 52 वर्ष की तुलना में केरल में प्रत्याशित आयु 64 वर्ष है। इसकी शिशु मृत्युदर 55 है जो भारत की औसत दर (125) से कहीं कम है।

केरल में जीवन की गुणवत्ता का असर परिवार के आकार (साइज़) पर भी पड़ा है। भारत के अधिकांश प्रांतों में जनसंख्या वृद्धि की दर ऊंची है परंतु केरल जनसंख्या संक्रमण में से गुजर रहा है। सन् 1978 में इसकी स्थूल जन्म दर 26 थी जबकि भारत का औसत 33 था। आखिर यह अंतर कैसे आया?

डॉ. रैटक्लिफ बताते हैं कि किस तरह से जन–आंदोलनों के ज़रिए प्रांत में प्रगतिशील सरकारें सत्ता में आईं और इन्होंने सामाजिक सुधार की पहल की। उदाहरण के लिए, 1950 व 1960 के दशक के भूमि सुधार कानूनों से संपत्ति पुनर्वितरण में मदद मिली। कागज पर ये भूमि सुधार अन्य प्रांतों से ज्यादा प्रगतिशील नहीं थे पर जनदबाव से इनको वास्तव में लागू किया गया। भारतीय अर्थशास्त्री के. एन. राज लिखते हैं, "केरल भारत का

एकमात्र ऐसा प्रांत है जहां भूमि सुधार लागू करवाने में जनसंगठनों और समर्थन पर आधारित राजनीतिक दबाव की प्रमुख भूमिका रही है और जहां भूमि सुधारों पर लगातार ध्यान दिया गया है।"

इसके अलावा, मजबूत श्रमिक यूनियन और मजदूरों की अपेक्षाकृत ज्यादा मांग होने से केरल के भूमिहीन भी भारत के अन्य हिस्सों की अपेक्षा बेहतर स्थिति में होते हैं। सन् 1974 में एक कानून के माध्यम से कृषि मजदूरों को रोज़गार की गारंटी और कल्याण व पेंशन कोष प्रदान किए गए।

भूमि सुधारों के कारण खाद्य के बेहतर वितरण और बढ़े हुए उत्पादन के ज़रिए पोषण स्तर भी बेहतर हुआ है। इसके अलावा सरकारी राशन की दुकानें सभी सामाजिक समूहों के लिए खुली हैं जबकि अन्य प्रांतों में शहरी और व्यावसायिक वर्ग ही इनका लाभ लेते हैं।

सन् 1961 से 1971 की अवधि में संपूर्ण भारत में सर्वोच्च आयु समूह ने अपनी संपत्ति में 5 प्रतिशत का इज़ाफ़ा किया। मात्र तीन प्रांतों में ही गरीब लोगों ने अमीरों के मुकाबले ज्यादा अर्जन किया। केरल में यह अर्जन सर्वाधिक था।

संपत्ति के पुनर्वितरण के साथ ही शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं तक लोगों की पहुंच बढ़ी। केरल के शिक्षा बजट का सबसे बड़ा हिस्सा प्राथमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा को मिलता है और युवा लोगों में निरक्षरता का सफाया कर दिया गया है। स्वास्थ्य सुविधाओं के उपयोग की दृष्टि से भी केरल सर्वोच्च है हालांकि आठ अन्य राज्य स्वास्थ्य पर प्रति व्यक्ति इससे ज्यादा खर्च करते हैं।

डॉ. रेटक्लिफ के अनुसार शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं के बेहतर वितरण से पूरी बात समझ में नहीं आती : केरल की राजनीतिक रूप से जागरूक जनता 'अखबारों और वोट की ताकत के उपयोग से तंत्र को अपनी मांगों के प्रति अनुकूल रवैया अपनाने पर मजबूर कर देती है।' यह भारत के अन्य भागों से एकदम अलग है जहां 'लोग जनसुविधाओं पर अपने हक और राजनीतिक प्रक्रिया को नहीं समझ पाते और उन्हें आसानी से उल्लू बना दिया जाता है या वंचित कर दिया जाता है और इस प्रकार वे तंत्र में घुसने या उस पर प्रभाव डालने में असमर्थ रहते हैं।'

केरल की जन्मदर की गिरावट में सामान्य सामाजिक विकास के अलावा महिलाओं की स्थिति में सुधार का भी हाथ है। शिक्षा के कारण महिलाएं कामगारों में शामिल हुई हैं और अब उनके पास बच्चे जनने का वास्तविक विकल्प है। केरल में लड़की की शादी की उम्र भारत में सबसे ज्यादा है। दुर्भाग्यवश, केरल के परिवार नियोजन कार्यक्रम में

जबरदस्ती के मामले हुए हैं। इस वजह से महिलाओं को प्रजनन संबंधी पूर्ण स्वतंत्रता नहीं है।

भारत केरल से कई सबक सीख सकता है। उनमें सबसे महत्वपूर्ण यह है कि **समानता की बुनियाद गरीब लोगों की राजनीतिक ताकत पर टिकी होती है।** यह दुःख की बात है कि अन्य प्रांतों में राजनीति पर संपन्न लोगों का एकाधिकार है और लोकप्रिय आंदोलनों का दमन किया जाता है। दूसरी ओर गैर–बराबरी के कारण गरीबों को ज्यादा बच्चे चाहिए और फिर उन्हीं को जनसंख्या वृद्धि के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है। इसका परिणाम होता है कि विशाल जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम, जबकि ज़रूरत ऐसे सामाजिक व आर्थिक विकास की है जिससे लोगों का अपने जीवन पर नियंत्रण बढ़े।

जनसंख्या नीति के नुस्खे

इन मामलों के अध्ययन से क्या सबक सीखे जा सकते हैं?

क्यूबा, श्रीलंका, कोरिया और केरल में से कहीं भी जनसंख्या संक्रमण के पीछे सघन जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम नहीं रहा। इसके बजाय, कई सारे सामाजिक व आर्थिक मोर्चों पर आगे बढ़ने से इन समाजों में ऐसी परिस्थितियां निर्मित हुईं जिसमें लोग स्वयं छोटे परिवार को प्राथमिकता देने लगे। इनके जनसंख्या संक्रमण की घटना में मुख्य कारक थे –

- आमदनी और भूमि का पुनर्वितरण,
- रोजगार के अवसर और सामाजिक सुरक्षा,
- सार्वजनिक शिक्षा, महिलाओं की स्थिति में सुधार, शादी की उम्र ज्यादा होने सहित, एवं
- स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन सेवा तक पहुंच।

क्या अन्य देश इसी नुस्खे को लागू कर सकते हैं?

अवश्य! आज तो जनसंख्या नियंत्रण के सबसे प्रबल समर्थक भी मानते हैं कि जनसंख्या नीति को मात्र गर्भनिरोधक तक सीमित न रखते हुए इसमें सामाजिक व आर्थिक उपाय भी जोड़ना चाहिए ताकि छोटे परिवारों को प्रोत्साहन मिले। यद्यपि कट्टरपंथी प्रलोभन देने और न देने की नीति का समर्थन करते हैं परंतु उदारवादी परिवार नियोजन कार्यक्रमों को महिलाओं के लिए आय उपार्जन, कृषि सहायता, मां और बच्चे को स्वास्थ्य सुविधाएं आदि उपायों से जोड़ने की बात करते हैं। (देखें बॉक्स 3 : एक कवायद अलग–थलग) –

बॉक्स 3

एक कवायद अलग–थलग

आज कई सारे जनसंख्या शोधकर्ता विकास के इन सूचकांकों को पृथक करने की कोशिश कर रहे हैं – प्रत्याशित आयु, मृत्यु दर, साक्षरता, स्वास्थ्य, प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद, परिवार नियोजन तक पहुंच, आदि – जो प्रजनन दर में कमी के लिए अनुकूल हैं। आज उपलब्ध समस्त सांख्यिकीय व कम्प्यूटर तकनीक को इस समस्या पर लगाया जा रहा है ताकि एक बार कई सारे सूचकांक पहचान लिए जाने पर इनको एक स्पष्ट राष्ट्रीय परिवार नियोजन नीति का प्रमुख अंग बनाया जा सकेगा। एक ताजा अध्ययन के लेखक फिलिप्स कटराइट के अनुसार, "यह संभव है क्योंकि विकास कोई समग्र प्रक्रिया नहीं है और प्रजनन दर विकास की कुछ चीजों पर निर्भर करती है और कुछ पर नहीं।"

इस नज़रिए से अक्सर यह आभास दिया जाता है कि प्रजनन दर में गिरावट का एक प्रमुख कारक परिवार नियोजन कार्यक्रम की शक्ति है। 1984 की वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट में पूर्ण विश्वास से कहा गया है कि "1965 और 1975 के बीच प्रजनन दर में गिरावट का 40 प्रतिशत हिस्सा परिवार नियोजन की उपलब्धि के कारण आया जबकि सामाजिक–आर्थिक बदलाव को मात्र 27 प्रतिशत का श्रेय दिया जाता है। इसके अलावा प्रजनन दर घटाने के इकलौते लक्ष्य के संदर्भ में परिवार नियोजन पर किया गया खर्च ज्यादा लाभदायक है बजाय शिक्षा, स्वास्थ्य या अन्य कार्यक्रमों पर किए गए खर्च के।"

परंतु अभी–अभी शिक्षा और स्वास्थ्य को भी प्रजनन दर घटाने वाले कारकों के रूप में मान्यता मिल गई है। यह कटराइट के अध्ययन और केरल पर मोनी नाग के लेख का निष्कर्ष था। नाग का मानना है कि "शिक्षा और स्वास्थ्य के बराबरी पूर्ण वितरण का प्रजनन दर पर ज्यादा प्रभाव पड़ा है बजाय आमदनी के वितरण के।" इसका मतलब क्या है? नाग का कहना है कि "जनसंख्या संक्रमण के लिए भूमि सुधार या अन्य आर्थिक पुनर्वितरण उपायों का इंतजार करने की जरूरत नहीं है; इसकी बजाय शिक्षा व स्वास्थ्य में बराबरी हासिल करने में शायद अपेक्षाकृत **कम राजनीतिक विरोध** का सामना करना पड़े और शायद ज्यादा गहरे परिणाम निकलें।"

यहां इस पूरी कवायद में निहित संदेहास्पद मान्यताओं का खुलासा करना उपयोगी रहेगा। विकास एक समग्र प्रक्रिया है : एक सूचकांक का संबंध दूसरे से होता है और इसलिए यह बता पाना असंभव है कि अमुक सूचकांक का प्रजनन दर में गिरावट से कार्यकारी संबंध है। परिवार नियोजन के प्रयासों से स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति का संबंध है, जिसका संबंध आमदनी के वितरण से है, जिससे यह तय होता है कि लोगों को कितने बच्चे चाहिए, और इससे तय होता है कि लोग परिवार नियोजन को किस हद तक अपनाएंगे।

जनसंख्याशास्त्री जॉन कॉडवेल के अनुसार यदि यह मान भी लें कि कुछ विकास सूचकांकों का प्रजनन दर में गिरावट से सीधा संबंध है, तो भी इसे साबित करना लगभग असंभव है। "इसका कारण है कि कई सारे आर्थिक व सामाजिक बदलाव साथ–साथ चलते हैं।" दरअसल जॉन कॉडवेल प्रजनन दर की गिरावट के विश्लेषण के लिए 'संख्या–शास्त्रियों और संख्याशास्त्रमुखी अर्थशास्त्रियों के उपयोग' के आलोचक हैं। इसके बजाय वे व्यक्तियों या समाजों के प्रत्यक्ष अवलोकन को ज्यादा तरज़ीह देते हैं।

इन दोनों तरीकों के साथ दिक्कत यह है कि या तो इनमें जबरदस्ती की जाती है या फिर आधे मन से बेअसर सामाजिक सुधार के उपाय किए जाते हैं, चूंकि ये समस्या की जड़ में स्थित गैर–बराबरी के रिश्तों से निपटने में असफल रहते हैं। जैसे कि, ज्यादा बच्चे चाहने के लिए लोगों के कारण जितने जटिल हैं उतने ही इनके हल भी। एक या दो नीतियों के स्तर पर सीमित हस्तक्षेप से जीवन के हालात इतने नहीं बदल जाएंगे कि लोगों की ज़रूरत कम बच्चों की हो जाए।

क्यूबा, श्रीलंका, कोरिया और केरल व अन्य सारे समाजों में जहां जनसंख्या संक्रमण हुआ, वहां लक्ष्य जन्मदर नियंत्रण नहीं था। उनका लक्ष्य तो विकास का था, जिसमें लोगों के जीवन के हालात बेहतर बनाने में प्रजनन नियंत्रण मात्र एक पहलू था और वह भी सबसे महत्वपूर्ण नहीं। कागज पर यह अंतर बहुत कम लगता है परंतु वास्तविकता में नहीं। प्रजनन नियंत्रण को अपना मुख्य उद्देश्य बनाकर जनसंख्या नियंत्रण के हिमायती दरअसल उन सामाजिक व आर्थिक गैर–बराबरी के ढांचों की मदद कर रहे हैं जिनके रहते जन्मदर कम करने का उनका लक्ष्य कभी–भी पूरा नहीं हो सकता।

व्यावहारिक और नैतिक दृष्टिकोण से सर्वश्रेष्ठ जनसंख्या नीति तो यह होगी कि मानव कल्याण के सारे पक्षों को बेहतर बनाने पर ध्यान दिया जाए।■

खंड – दो

गर्भनिरोध : पितृसत्ता व पूंजीवाद की चुनौतियां

गर्भनिरोध के विकल्प : सुरक्षा बनाम कारगरता[18]

– डॉ. सी. सत्यमाला

यह एक आम–धारणा है कि गर्भनिरोधकों के उपयोग से मातृत्व संबंधी मृत्युदर में कमी आती है। इस कथन को ही लीजिए –

> "सभी दवाइयों के समान, जन्म नियंत्रण गोली से भी कुछ व्यक्तियों को गंभीर समस्याएं होती हैं . . .गर्भवती होने वाली 15,000 महिलाओं में से 75 गर्भावस्था या जचकी की समस्याओं के कारण मर जाएंगी, जबकि जन्म नियंत्रण गोलियां खाने वाली 15,000 महिलाओं में से शायद एक महिला गोली खाने से हुई समस्या के कारण मरेगी। निष्कर्ष : गोली लेना कहीं अधिक सुरक्षित है बनिस्बत गर्भवती होने के।"
>
> (संदर्भ क्र. 1)

ऐसे कथन यह बताने के लिए दिए जाते हैं कि आधुनिक गर्भनिरोधक, प्रजनन कर रही महिलाओं के लिए कितना बड़ा वरदान हैं। यदि गर्भनिरोधक विधियों से जुड़ी दिक्कतों या मृत्युदर की चर्चा भी करने की कोशिश करें, तो बहाना बनाया जाता है, कि ". . .यह सही है कि नसबंदी में मृत्युदर, जचकी बाद मृत्युदर से ज्यादा होती है परंतु इनमें से किसी में भी मृत्युदर इस देश (भारत) की मातृत्व मृत्युदर से कम है अर्थात् मरीज को होने वाला वह खतरा जो नसबंदी न किए जाने पर होगा" (संदर्भ क्र. 2)। यही मुगालता इस कथन में भी दिखता है कि यदि अमुक गर्भनिरोधक से जान को जोखिम नहीं है, तो वह सुरक्षित है। इन सारे कथनों में छिपी मान्यता यह है कि सारी प्रचलित गर्भनिरोधक विधियां गर्भवती होने की अपेक्षा ज्यादा सुरक्षित हैं।

हालांकि यह सही हो सकता है कि बच्चे जनने के कारण महिला आबादी पर थोड़ा खतरा बढ़ जाता हो परंतु निश्चयात्मक खतरा सिर्फ उन्हीं आबादियों के लिए होता है जिनकी कुल मृत्युदर पहले ही ज्यादा हो। और इस पर्चे का उद्देश्य यही प्रस्तुत करना है कि यद्यपि गर्भनिरोधकों के उपयोग से गर्भावस्था संबंधित मौतें कम हो जाएं परंतु इनसे उत्पन्न भयानक रोग (बीमारियां), विकासशील देशों में इनके व्यापक उपयोग के औचित्य पर प्रश्न खड़े करती हैं। इन देशों में ऊंची मातृत्व मृत्युदर के पीछे जो कारण हैं उन्हीं से गर्भनिरोधक उपयोग से होने वाली मौतों की संख्या में भी वृद्धि होगी।

---

[18]मेडिको फ्रेंड सर्कल की 13वीं वार्षिक बैठक हेतु पृष्ठभूमि चर्चा। मूल अंग्रेजी से अनुवाद : डॉ. सुशील जोशी।

वर्तमान में उपलब्ध स्त्री गर्भनिरोधकों द्वारा उत्पन्न बीमारियों का बोझ

गर्भनिरोधकों के उपयोग से होने वाली उलझनों की दर के आधार पर संभावित रोगों का अनुमान लगाया जा सकता है। सन् 1980–81 में उपयोगकर्ताओं की संख्या के आधार पर उलझनों/रोगों (बीमारियों) की दर निकाली गई है, देखें तालिका क्र. 2 –

तालिका क्र. 2

गर्भनिरोधकों के उपयोग से होने वाली तकलीफ़ें/रोग

गर्भनिरोध विधि	रुग्णता (रोग या बीमारी)	घटना दर कितनी बार	1980–81 में उपयोगकर्ता	उन महिलाओं की संख्या जो रोग–ग्रस्त हुई होंगी
14 डी	रक्तस्राव एवं दर्द	10–15/100 उपयोगकर्ता	6,00,000	60,000 से 90,000 तक
	श्रोणि (Pelvic) सूजन रोग	10/100 उपयोगकर्ता	6,00,000	60,000
	बांझपन	10/100 उपयोगकर्ता	6,00,000	60,000
	अस्थानिक गर्भावस्था	0.8 से 4 प्रतिशत विधि असफलता	6,00,000	240–1200
	स्वतः गर्भपात	विधि असफलता का 50 प्रतिशत	6,00,000	15,000
	गर्भाशय छिद जाना	1/2500 उपयोगकर्ता	6,00,000	240
नसबंदी	ऑपरेशन के बाद ज्यादा खून बहना	5.1 प्रतिशत	15,50,000	79,500
	श्रोणि पर रोग संक्रमण	12.42/1000	15,50,000	19,251

उपरोक्त दो गर्भनिरोध विधियों के कारण हुई रुग्णता	2,93,781
कुल उपयोगकर्ता	21,50,000
रुग्णता (बीमारी) की दर (दोनों विधि)	137/1000 उपयोगकर्ता
सिर्फ 14 डी के कारण हुई रुग्णता की दर	326–337/1000 उपयोगकर्ता

(संदर्भ क्र. 3)

इन गणनाओं में प्रयुक्त की गई घटना दर ग्रामीण इलाकों की वास्तविक दर से शायद काफी कम हो। इन गणनाओं में गर्भनिरोधक असफल हो जाने के कारण हुई तकलीफों को भी नहीं जोड़ा गया है। उल्लेखनीय है कि नसबंदी से हुई तकलीफों के ये आंकड़े प्रशिक्षण अस्पतालों में हुए ऑपरेशनों के हैं। मैदानी परिस्थिति यानी कि प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र और परिवार नियोजन शिविरों में घटना दर इससे कहीं ज्यादा होगी।

उपरोक्त तालिका क्र. 2 में गोली से होने वाली तकलीफों (बीमारी) को इसलिए शामिल नहीं किया गया है क्योंकि भारत में गोली को स्वीकारने और जारी रखने की दर बहुत कम है। दरअसल यह इतनी कम है कि इसे योग्य युगल (जोड़ा) सुरक्षा दर के मूल्यांकन में भी शामिल नहीं किया जाता। गोली को न स्वीकारे जाने की समस्या के हल के लिए 1983 में स्वास्थ्य मंत्रालय ने एक तरीका आजमाया – ग्रामीण स्वास्थ्यकर्ता के माध्यम से इस गोली का वितरण करवाकर। बाद में यह योजना इसलिए रोक दी गई क्योंकि भारतीय महिला वैज्ञानिक संघ ने इस आधार पर इसका विरोध किया कि यह न तो सुरक्षित होगी न ही कारगर। किंतु 'राष्ट्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रम–संशोधित रणनीति' की रिपोर्ट से लगता है कि सामुदायिक बिक्री व 'ग्रामीण महिला कार्यकर्ता दल' (विलेज़ लेवल वीमेन वॉलंटियर कोर) के ज़रिए गोली का उपयोग बढ़ाने की पक्की योजना है। देश के कई हिस्सों से खबरें मिली हैं कि यह नवगठित दल हरकत में आ चुका है और घर–घर बिक्री तकनीक के ज़रिए गोली को बढ़ावा दिया जा रहा है। इस रणनीति का ज्यादा चिंताजनक पहलू यह है कि पहली बार सरकारी नीति में कहा गया है कि, "यदि चिकित्सीय परामर्श की बात न करें, तो ग्रामीण इलाकों में गोली की स्वीकार्यता बढ़ाई जा सकती है।" (संदर्भ क्र. 4)। गोली से होने वाली संभावित बीमारियां (तकलीफें) व मृत्युदर का अंदाज अन्य देशों के आंकड़ों से लगाया जा सकता है। आगे दी गई तालिका क्र. 3 में यूनाइटेड किंगडम (इंग्लैंड) में गोली के उपयोगकर्ताओं को अस्पताल में भर्ती कराने के केसों की संख्या और मृत्युदर के आंकड़े दिए गए हैं।

निम्नांकित तालिका क्र. 3 में दिए गए आंकड़ों से पता चलता है कि गर्भनिरोधक गोली का उपयोग करने वाली 500 महिलाओं में से एक को प्रतिवर्ष गंभीर बुरे प्रभाव के कारण अस्पताल में भर्ती किया जाता है। हर 5,000 उपयोगकर्ताओं में से प्रतिवर्ष एक की आघात, दिल के दौरे या खून जम जाने के कारण मौत हो जाती है. . . इनमें से दो–तिहाई धूम्रपान करने वाली व एक–तिहाई धूम्रपान न करने वाली महिलाएं शामिल हैं। (संदर्भ क्र. 5)

तालिका क्र. 3

इंग्लैंड में मुंह से लिए जाने वाले मिश्रित गर्भनिरोधकों के उपयोग से जुड़े गंभीर बुरे प्रभाव

बुरे प्रभाव	प्रति एक लाख उपयोगकर्ताओं में प्रतिवर्ष अतिरिक्त रोग और मृत्युदर		
	निदान	अस्पताल में दाखिल	मौतें
आघात	31	35	9.7
अंदरूनी शिरा में खून जमना या फेफड़े की धमनी का रुंध जाना (पल्मोनरी एम्बोलिज्म)	91	—	—
सतही खून का जमना	125	70	3.4
दिल का दौरा या दूसरी गैर रूमेटिक[19] हृदय की बीमारियां	17	17	8.0
गुर्दे के रोग	383	—	—
पित्ताशय के रोग	79	79	—
लीवर का फोड़ा	01	01	0.1
उच्च रक्तचाप	406	—	1.7
योग	**1,133**	**202**	**22.9**

(संदर्भ क्र. 5)

ऐसा कहा जाता है कि ये खतरे एशियाई महिलाओं पर लागू नहीं होते क्योंकि उनको दिल के दौरे या खून जम जाने जैसी दिक्कतें नहीं होतीं। उनकी यह मान्यता निराधार है, क्योंकि भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् की सन् 1981 की रिपोर्ट के अनुसार ". . . हृदय रोग से ग्रस्त भारतीय महिलाओं का लिपिड[20] स्तर हालांकि आम भारतीय महिलाओं से ज्यादा था किंतु पश्चिमी देशों की हृदय रोगग्रस्त महिलाओं की बनिस्बत बहुत कम था।" (संदर्भ क्र. 6)। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् का निष्कर्ष है कि व्यापक स्तर पर एक रोग वैज्ञानिक सर्वेक्षण किया जाना चाहिए ताकि यह पता लग सके कि क्या भारतीय महिलाओं में मुंह से लिए जाने वाले गर्भनिरोधकों के उपयोग से हृदय रोग का

---

[19]शरीर की मांसपेशियों आदि में सूजन व सड़न की बीमारी को रूमेटिज्म कहते हैं।

[20]लिपिड ऐसे अकार्बनिक पदार्थों का समूह है जो पानी में नहीं घुलते वरन् अल्कोहल, क्लोरोफॉर्म, ईथर और दूसरे चिकनाई वाले द्रवों में घुल जाते हैं। लिपिड, जो आसानी से शरीर में जमा हो जाते हैं, ऊर्जा का स्रोत और कोशिका रचना का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

खतरा कम है। हांगकांग में किए गए इस तरह के एक अध्ययन से पता चला है कि सन् 1969–75 की अवधि में अर्थात् गोली मुहैय्या कराए जाने के बाद हृदय रोगों में बढ़ोत्तरी हुई है। यदि गोली कार्यक्रम वाकई सफल हो जाता है, तो भी हम मुगालता ही पाल सकते हैं कि कोई नुकसान नहीं है क्योंकि भारत के ग्रामीण इलाकों में न तो ये रोग पहचाने जाएंगे और न ही अस्पतालों में पहुंचेंगे; जैसाकि ब्रिटेन में हो पाया है। परंतु यह बात पक्के तौर पर कही जा सकती है कि कार्यक्रम के सफल होने पर उपयोगकर्ता महिलाओं में रुग्णता और मृत्युदर बहुत ज्यादा होगी।

सेंटर ऑफ डिसीज़ कंट्रोल (रोग नियंत्रण केंद्र), अमरीका की एक ताजा रिपोर्ट (सन् 1982) में कहा गया है कि पहली बार अमरीका में गर्भनिरोधक संबंधी मौतों की संख्या गर्भावस्था संबंधित मौतों की संख्या से ज्यादा हो गई है। यदि इसी तरह ज्यादा खतरनाक गर्भनिरोधक झोंकते जाने का रवैया जारी रहा, तो भारत में भी ऐसी स्थिति आ सकती है। 'राष्ट्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रम–संशोधित रणनीति' में इसकी नियति का खुलासा पेश किया गया है। 'परिवार नियोजन अनुसंधान' के अंतर्गत कहा गया है –

> "कार्यक्रम में शामिल किए जाने से पहले, नई टेक्नोलॉजी जैसे – इंजेक्शन, चमड़ी के अंदर लगने वाला इम्प्लांट आदि पर परीक्षण चल रहे हैं। इन टेक्नोलॉजी को कार्यक्रम में तेजी से शामिल करने की दृष्टि से नई टेक्नोलॉजी के बारे में प्रक्रियाएं, प्रोटोकॉल और समय की ज़रूरत को संशोधित किया जाएगा।"
>
> "आसान, उत्क्रमणीय (उन्नति करने/प्रस्थान योग्य), सुरक्षित व देर तक कारगर गर्भनिरोधक जैसे उर्वरतारोधी टीकों की संभावनाएं ज्यादा दिखती हैं। ऐसे टीकों के विकास के लिए अनुसंधान को प्राथमिकता दी जाएगी।" (संदर्भ क्र. 7)

इन तरीकों की क्रियाविधि के थोड़े भी जानकार व्यक्ति को समझ में आ जाएगा कि इनके व्यापक उपयोग से उभरने वाली परेशानियां गर्भनिरोधक इतिहास में अभूतपूर्वक होंगी। गर्भनिरोध की इन विधियों की एक और समस्या यह है कि रुग्णता और मृत्यु सिर्फ महिला तक ही सीमित नहीं रहेगी अपितु अगली पीढ़ी पर भी हावी रहेगी।

तब सवाल यह उठता है कि जब आंकड़े बताते हैं कि इन खतरनाक गर्भनिरोधकों से महिलाओं के जीवन को खतरा है, तो भी इनसे इतना लगाव क्यों? इसके जवाब में 'कारगरता' का जुमला उछाल दिया जाता है। यह कहा जाता है कि कोई विधि जितनी

ज्यादा घुसपैठी[21] होगी उसकी कारगरता उतनी ही ज्यादा होगी क्योंकि यह एक साथ कई स्तरों पर काम करेगी और गर्भधारण को कोई मौका ही नहीं मिलेगा।

यदि **वर्तमान में उपलब्ध विधियों की असफलता दर** की तुलना की जाए, तो उन सबकी कारगरता लगभग बराबर ही है।

तालिका क्र. 4

वर्तमान में उपलब्ध गर्भनिरोधक विधियों की असफलता दर

विधि	न्यूनतम असफलता दर (प्रतिशत में)
महिला नसबंदी	0.4
पुरुष नसबंदी	0.4
मिश्रित गोली	0.5
आई.यू.डी. (गर्भाशय के अंदर डाले जाने वाले साधन जैसे, लूप, कॉपर टी)	1.5
कंडोम (निरोध)	2.0
डायफ्राम और शुक्राणुनाशक क्रीम	0.2
ग्रीवा टोपी	2.0
प्रजनन जागरूकता	2—20

(संदर्भ क्र. 8)

इसका मतलब है कि कम–से–कम सिद्धांत में तो किसी नियंत्रित परिस्थिति में घुसपैठी विधियों की कारगरता अवरोध विधियों[22] के समान ही है। समस्या तो तब आती है जब वास्तविक उपयोग के दौरान कारगरता की बात की जाती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई महिला बगैर चूके हर दिन एक गोली खाए तो सैद्धांतिक कारगरता उस पर लागू होगी। परंतु वास्तविक परिस्थिति में गोली सेवन की कारगरता गोली खाने की नियमितता/अनियमितता पर निर्भर करेगी। अतः गोली सेवन की वास्तविक असफलता दरें 5 (आई.यू.डी.) व 10 (कंडोम) से लेकर 19 (डायफ्राम) तक कुछ भी हो सकती हैं। और इसी बात से जनसंख्या विशेषज्ञ चिंतित हैं : कौन–सी विधि ऐसी आबादी में काम करेगी जिसको वे शायद 'नियंत्रित' न कर सकें। और इसीलिए उनका घुसपैठी विधियों से

[21]घुसपैठी विधियां – जो अलग–अलग तरह से शरीर की स्वाभाविक क्रियाओं को रोकती हैं।

[22]अवरोध विधियां – जो शरीर की स्वाभाविक क्रियाओं पर प्रभाव नहीं डालतीं वरन् शुक्राणुओं के रास्ते में रोक लगा देती हैं।

इतना लगाव है क्योंकि उन पर मानव प्रकृति की स्वाभाविक गड़बड़ियों का असर शायद न पड़े।

परंतु चिकित्सा प्रतिष्ठान एक ऐसी विधि, जिसकी सैद्धांतिक और वास्तविक कारगरता बराबर हो, की ज़रूरत का औचित्य अलग ढंग से बताता है। दलील यह दी जाती है कि यदि महिलाएं उच्च असफलता दर वाली विधि का उपयोग करें, तो उन्हें गर्भधारण का खतरा ज्यादा रहेगा। प्रजनन नियंत्रण विधियों से जुड़ी मृत्यु की जोखिम (जिसमें विधि असफलता के बाद हुई मौतें और विधि संबंधित मौतें शामिल हैं) की तुलना से पता चलता है कि प्रजनन की ऊंची दर के जोखिम के बावजूद गर्भपात की सुविधा के साथ में कंडोम (निरोध) सबसे सुरक्षित तरीका है।

तालिका क्र. 5

प्रजनन नियंत्रण विधियों से संबंधित मृत्यु का जोखिम

(प्रति 1,00,000 महिलाएं – जो बच्चों को जन्म दे सकती हैं)

विधि	15–34	35–39	40–44	15–44
1. गोली / धूम्रपान करने वाली महिलाएं	132	257	588	**977**
2. गोली / धूम्रपान न करने वाली महिलाएं	21	70	160	**251**
3. रिदम	36	14	18	**68**
4. डायफ्राम / शुक्राणुनाशक	28	11	14	**53**
5. आई.यू.डी.	25	10	10	**45**
6. गर्भपात	26	09	06	**41**
7. कंडोम	19	02	02	**23**
8. कंडोम / गर्भपात	01	01	01	**03**
9. कोई विधि नहीं	192	129	141	**462**

(संदर्भ क्र. 9)

स्पष्ट है कि यदि परिवार नियोजन नीति में महिलाओं के स्वास्थ्य के प्रति चिंता है, तो फिर किसी गर्भनिरोधक की असफलता के कारण अनियोजित गर्भधारण की घटना को एक राष्ट्रीय संकट नहीं समझा जाएगा। जब तक ऐसा नहीं हो जाता, तब तक वे 100 प्रतिशत कारगर विधि की मृगतृष्णा के पीछे भागते रहेंगे और सुरक्षा की धारणा को दफन कर दिया जाएगा।

जो प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है, वह है – क्या गर्भावस्था वाकई इतना बढ़ा खतरा है कि महिलाओं के लिए असुरक्षित होने के बावजूद, खतरनाक गर्भनिरोधकों का व्यापक उपयोग

और उन्हें बढ़ावा देना जारी रखा जाए? इस संदर्भ में यह भी याद रखना होगा कि जब गर्भनिरोधकों और गर्भावस्था से उत्पन्न रोग/तकलीफें एवं मृत्युदर की तुलना करते हैं तो वास्तव में दो अलग–अलग व्यक्तियों की बात हो रही है। गर्भनिरोधकों से जुड़े खतरों का असर महिलाओं की ज्यादा बड़ी संख्या पर होता है और विधि विशेष को स्वीकारने से पहले ये महिलाएं गर्भवती होने का खतरा पहले ही झेल चुकी हैं। हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि गर्भनिरोधकों से होने वाली दिक्कतें अक्सर दूरगामी असर वाली होती हैं और इनसे स्थायी अक्षमता भी पैदा हो सकती है।■

टिप्पणियां और संदर्भ

1. 'जहां डॉक्टर न हो', भारतीय संस्करण, डॉ. सी. सत्यमाला, वी.एच.ए.आई, 1980.
2. भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् बुलेटिन, जून 1982, पृ. 92.
3. (क) रक्तस्राव व दर्द की घटना दर, 'कॉन्ट्रासेप्टिव टेक्नोलॉजी, 1986–87', 13वां संशोधित संस्करण, इर्विन्गटन प्रकाशक, पृ. 202.

   (ख) श्रोणि सूजन रोग की घटना दर, पॉप्यूलेशन रिपोर्ट्स, सीरीज बी, क्र. 4, जुलाई 1982, पृ. बी–121.

   "हाल के अन्य अध्ययनों से पता चला है कि विकसित देशों में आई.यू.डी. उपयोगकर्ताओं में श्रोणि सूजन रोग का जोखिम 1.5 से 10 के बीच होता है।" मैंने उच्चतर दर ली है क्योंकि विकासशील देशों में जोखिम इससे ज्यादा ही होने वाले हैं।

   (ग) बांझपन की घटना दर, पॉप्यूलेशन रिपोर्ट्स, सीरीज बी, क्र. 4, जुलाई 1982, "इस प्रकार से अस्थानिक गर्भधारण या बांझपन अंडवाहिनी की श्रोणि सूजन की एक ही घटना के बाद हो सकता है।"

   (घ) अस्थानिक गर्भ की घटना दर, पॉप्यूलेशन रिपोर्ट्स, सीरीज बी, क्र. 4, पृ. बी–125.

   (च) स्वतः गर्भपात की घटना दर, पॉप्यूलेशन रिपोर्ट्स, सीरीज बी, क्र. 4, पृ. बी–124, "यदि यंत्र को हटाया न जाए, तो बच्चादानी के करीब 50 प्रतिशत गर्भ स्वतः गिर जाते हैं।"

   (छ) बच्चादानी के छिद जाने की घटना दर, कॉन्ट्रासेप्टिव टेक्नोलॉजी, 1986–87, पृ. 208.

   (ज) ऑपरेशन बाद रक्तस्राव श्रोणि रोग संक्रमण की घटना दर, आईसीएमआर बुलेटिन, जून 1982, पृ. 59.
4. 'राष्ट्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रम–संशोधित रणनीति', भारत सरकार, 1986, पृ. 6.
5. 'गर्भनिरोधक और विकासशील देश : अवरोध विधियों की भूमिका', ब्रूस और शीरर, इंटरनेशनल सिम्पोजियम ऑन रिसर्च ऑन दी रेग्यूलेशन ऑफ ह्यूमन फर्टिलिटी (मानव उर्वरता नियमन अनुसंधान पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन), स्वीडन, फरवरी 1983, पृ. 407.
6. आई.सी.एम.आर. बुलेटिन, दिसंबर 1981.
7. 4 के समान, पृ. 123.
8. कॉन्ट्रासेप्टिव टेक्नोलॉजी, 1986–87, पृ. 102.
9. 'आउटलुक', खंड 1, क्र. 3, सितंबर 1983, पृ. 4, आंकड़े 'ओरी एवं अमरीकी रोग – नियंत्रण केंद्र' से लिए गए।

———————

गर्भनिरोध की नारीवादी समझ[23]

– डॉ. मनीषा गुप्ते

महिला स्वास्थ्य आंदोलन से संबंधित और कोई मुद्दा इतना विवादास्पद नहीं है जितना कि गर्भनिरोध। एक तरफ तो विपरीत लैंगिक (महिला–पुरुष) संबंधों वाली महिलाओं को अपने प्रजनन दर पर नियंत्रण का मौका मिलने से मुक्ति मिलती है तो वहीं दूसरी तरफ ये मुक्ति तब छिन जाती है जब बहुत से घुसपैठी व घातक गर्भनिरोधक, जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम के पुलिंदे के साथ आते हैं। इन कार्यक्रमों का लक्ष्य असहाय लोग होते हैं जिन्हें चुना जाता है, प्रोत्साहित किया जाता है व ज़रूरत पड़ने पर जबरदस्ती भी की जाती है। चिकित्साशास्त्र के शोध, निर्णय की प्रक्रिया और नीति निर्धारण सभी में पुरुष साम्राज्य है। क्या वर्तमान गर्भनिरोधकों के उपयोग से अंततः महिलाओं की चुनने की आजादी और खुद के शरीर पर नियंत्रण कम हो जाते हैं। वे कौन से तंत्र हैं जो महिलाओं के शरीर पर से उनके अपने नियंत्रण को समाप्त करना चाहते हैं और क्या इसका कोई हल है?

उपरोक्त बातों को समझने के लिए गर्भनिरोधकों को लेकर हमें अपने मत स्पष्ट करने होंगे। यह उस स्थिति में और भी ज़रूरी है जब इंजेक्शन वाले गर्भनिरोधक को भारत सरकार के परिवार नियोजन कार्यक्रम में शामिल करने की संभावना सामने हो। यद्यपि यह जरूरी है कि हम सारे घुसपैठी, खतरनाक और शरीर तंत्र पर असर वाले गर्भनिरोधकों के विरुद्ध संघर्ष करें। किंतु इस वक्त गर्भनिरोधक को लेकर महिलाओं की चुनाव स्वतंत्रता और इंजेक्शन योग्य गर्भनिरोधकों के संबंधों पर ध्यान केंद्रित किया जाना ज़रूरी है।

इस लेख में इस बात पर विचार किया जाएगा कि एक लक्ष्य या टारगेट उन्मुखी, बलपूर्वक संचालित जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम के संदर्भ में असुरक्षित नुकसानदेह गर्भनिरोधकों से घिरी एक महिला कितनी स्वतंत्रता से चुनाव कर पाती है या नहीं कर पाती।

नारीवाद और गर्भनिरोध

गर्भनिरोधकों के बारे में एक दलील यह भी दी जाती है कि जहां एक ओर इससे गर्भावस्था टालने में मदद मिलती है, वहीं दूसरी ओर इससे महिला 'यौनिक रूप से उपलब्ध' हो जाती है। यह दलील पश्चिमी देशों की हमारी बहनों के संदर्भ में काफी सही

[23]मेडिको फ्रेंड सर्कल बुलेटिन, अक्टूबर 1986 से साभार। मूल अंग्रेजी से अनुवाद : डॉ. सुशील जोशी।

उतरी है और जर्मेन ग्रीयर व बेटी फ्रीडन के कामों से स्पष्ट है कि यौन क्रांति से वाकई महिलाएं और ज्यादा शोषण की शिकार हुई हैं। वे यह कहना चाहती हैं कि एक बार गर्भनिरोधक हाथ में आ जाने पर, महिला के साथ यौन संबंधों को लेकर आदमी और भी गैर–जिम्मेदार हो जाते हैं, क्योंकि अब यौन संबंधों को गर्भधारण और उससे जुड़े अपराधबोध व दायित्व से अलग किया जा सकता है। यदि गर्भ ठहर गया, तो महिला को कई बार अपनी मर्जी व सेहत के खिलाफ बार–बार गर्भपात में से गुज़रना होता है। इस मत के प्रवर्तकों की स्थिति सैद्धांतिक रूप से नैतिकतावादियों से भिन्न है। नैतिकतावादी मानते हैं कि बगैर गर्भधारण के यौन संबंध पाप है, खासकर यदि संबंध शादी के बाहर हो। यदि दुर्घटनावश विवाहेतर संबंध में गर्भ ठहर जाता है तो यह इस पाप की उचित सजा है।

आइए, जरा इस मत व इसके परिणामों की जांच करें। दरअसल इस पर एक प्रति–प्रश्न किया जा सकता है। क्या हम यह कह रहे हैं कि यदि गर्भनिरोधक न होते, तो महिला यौन कार्य के लिए 'उपलब्ध' न होती? ऐसी परिस्थिति में हमारा विश्लेषण क्या होगा? तथ्य यह है कि पुरुष सत्ता (पितृसत्ता) शक्तिशाली व सर्वव्यापी है। यह बड़ी सुगमता से अपने आपको किसी भी स्थिति के अनुरूप ढाल लेती है। दरअसल इसमें कई बार प्रगतिशील व बुनियादी बदलाव वाली परिस्थितियों को भी शोषण के नए स्वरूपों में ढाल लेने की ताकत है। यह सामंती समाज में मौजूद थी और पूंजीवाद के साथ हाथ डालकर चलती है। सबसे निराशाजनक बात तो यह है कि इसे क्रांति पश्चात् समाजों में से भी हटाया न जा सका और न ही वाम आंदोलन में से। तब इस बात पर कोई अचरज नहीं होना चाहिए कि यह पुरुष सत्ता पश्चिमी यौन क्रांति का भी इस्तेमाल कर लेगी और गर्भनिरोधकों का भी।

इसलिए हमारा संघर्ष सही दुश्मन के खिलाफ़ होना चाहिए। पुरुष सत्ता जो हमें दबाती है, हमें यौन वस्तु के रूप में ज़लील करती है, जो गर्भधारण और शिशुपालन की ज़िम्मेदारी से इंकार करती है और जो अपने खुद के शरीर पर नियंत्रण स्थापित करने के हमारे हर प्रयास को विफल करती है। कानूनी गर्भपात या गर्भनिरोधक का प्रावधान खत्म कर देने का अर्थ नैतिकतावादियों की आकांक्षा से कुछ अलग नहीं होगा – महिलाओं के लिए और दंड। यदि हम स्वीकार करते हैं कि महिलाएं यौनिक रूप से स्वतंत्र नहीं हैं तो उसके बचाव के तरीकों को हटा लेने का मतलब पीड़ित को दोषी ठहराने जैसा होगा।

गर्भनिरोधकों के संदर्भ में शादी के अंतर्गत पत्नी की यौनिक उपलब्धता से काफी नाजुक प्रश्न उभरते हैं। जैसे कि पहले दलील दी गई थी, क्या पत्नी तभी यौनिक दासी बनती है जब दम्पति गर्भनिरोधक का इस्तेमाल करें। पति के यौन अधिकारों की हकीकत

गर्भनिरोधकों से कहीं ज्यादा गहरी है। 'वैवाहिक संबंधों की पुनर्स्थापना' ऐसा ही एक मुद्दा है, जो महिला के मानव अधिकारों का अतिक्रमण करता है। परिवार में कोई भी महिला दाम्पत्य संबंधों में बलात्कार का सवाल नहीं उठा सकती क्योंकि उसने शादी के वक्त ही इसकी सहमति दे दी होती है। जब पत्नियों ने बच्चे जनने से इंकार किया, तो पतियों ने कानूनी कार्रवाई की है। इन मामलों में गर्भनिरोध कहां आता है।

शादी के अंतर्गत महिला की अपने शरीर को लेकर आजादी कम ही होगी। हर बार जब वह अनचाहे यौन संबंध में से गुजरती है, तो शायद वास्तविक 'बलात्कार' न होता हो, परंतु पति के साथ न सोने का परिणाम, उसके साथ सो जाने की अपेक्षा कहीं ज्यादा भयानक हो सकते हैं। वह असुरक्षा से डराई जा सकती है, उस पर वैवाहिक कर्तव्य का निर्वाह न करने का या यौन उदासीनता का आरोप लग सकता है, और यहां तक कि छोड़ने तक की नौबत आ सकती है। ऐसी परिस्थिति में गर्भनिरोधक महिला का बचाव करता है : कम–से–कम उसे थामने के लिए एक छोर तो मिलता ही है, चाहे वह कितना ही कमज़ोर क्यों न हो।

यहां यह कहने की कोशिश कतई नहीं हो रही है कि पत्नियां और महिलाएं आमतौर पर यौन इच्छा विहीन होती हैं और हर बार विपरीत लैंगिक अनुभव में वे अपनी इच्छा के विरुद्ध मात्र आदमी की तुष्टि के लिए ही भाग लेती हैं। महिलाएं स्वतंत्र रूप से अपनी यौनिकता प्रगट कर सकती हैं और करनी चाहिए। साथ–ही–साथ उनको अपने प्रजनन पर नियंत्रण की आजादी भी होनी चाहिए, चाहे शादी के अंतर्गत हो या बाहर।

इस बिंदु में से एक और गर्मागर्म बहस का मुद्दा उभरता है : क्या गर्भनिरोध पूर्णतया महिला की जिम्मेदारी है? स्पष्ट है कि यह सही नहीं है और हमें लगातार सवाल उठाने पड़ेंगे कि क्यों अधिकांश शोध महिलाओं हेतु गर्भनिरोधक पर केंद्रित हैं, कि क्यों जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम का प्रिय निशाना महिलाएं ही होती हैं, और क्यों असुरक्षित व घुसपैठी गर्भनिरोधक महिलाओं के शरीर में झोंक दिए जाते हैं। आदर्श रूप में, गर्भनिरोधक की जिम्मेदारी जोड़े के दोनों सदस्यों द्वारा उठाई जानी चाहिए और प्राकृतिक परिवार नियोजन जो कि गर्भनिरोध की सबसे सुरक्षित विधि है, इस तरह की परस्पर समझदारी की मांग करती है। गर्भधारण के विरुद्ध महिला की मांग की मर्द इज्ज़त करता है और सक्रिय सहयोग देता है। यहां हम उस आदमी की बात कर रहे हैं जो अपने अंतरंग संबंधों को जिम्मेदारी से संभालता है। वह आम नियम का अपवाद हो सकता है। सिर्फ मुंबई शहर में ही आधिकारिक रूप से पंजीकृत गर्भपातों की संख्या 50,000 है,

इसके अलावा अपंजीकृत मामले भी होंगे (कारकल, सन् 1985)। इसी से मालूम चलता है कि एक शहर में एक साल में कितने अनचाहे गर्भ ठहरते हैं।

यहां हम यह कहने की कोशिश कर रहे हैं कि यह जानते हुए कि गर्भनिरोध एक साझा ज़िम्मेदारी है परंतु एक महिला समर्थक माहौल के अभाव में गर्भनिरोधकों के ज़रिए किसी महिला का अनचाहे गर्भ से बच पाना बचाव का अंतिम अस्त्र है।

क्या कोई विकल्प है?

जहां गर्भनिरोधक का उपयोग करना मुक्तिपरक है क्योंकि इससे महिला को अपने प्रजनन पर नियंत्रण हासिल होता है, तो वहीं मौजूदा गर्भनिरोधकों की कहानी दुखदाई है। आज गर्भनिरोधक के विकल्प का चुनाव महिला के द्वारा नहीं बल्कि ऐसे तंत्र द्वारा किया जाता है जो उसके नियंत्रण से परे है। यह तंत्र राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर काम करते हैं – जनसंख्या नियंत्रण की सरकारी नीति और बहुराष्ट्रीय कंपनियां। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हित साफ समझ में आते हैं यदि हम यह ध्यान रखें कि दुनिया भर की स्वस्थ महिलाएं इसका संभावित बाज़ार हैं। सन् 1978 में सत्तर देशों की 30 से 50 लाख महिलाएं सिर्फ डीपो प्रोवेरा का इस्तेमाल कर रही थीं। सन् 1981 की जनगणना के अनुसार भारत की सारी महिलाओं में से 43.4 प्रतिशत प्रजनन आयु की थीं और इनमें से 80.48 प्रतिशत शादीशुदा थीं। इसका मतलब है कि अकेले भारतीय उपमहाद्वीप में 11.6 करोड़ प्रजनन आयु की शादीशुदा महिलाएं हैं। चूंकि इंजेक्शन योग्य गर्भनिरोधकों का इस्तेमाल बच्चों के जन्म में अंतर बढ़ाने के लिए किया जाता है इसलिए इनमें से हरेक महिला के जीवन में कम–से–कम एक बार इसके संभव लक्ष्य हैं।

इसलिए यह समझना आसान है कि दवा उत्पादक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में क्यों दीर्घावधि गर्भनिरोधक अनुसंधान से जुड़े हैं। तद्नुसार अनुसंधान के पूर्वाग्रह भी निर्धारित हो जाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय नियोजित पालकत्व संघ (इंटरनेशनल प्लांड पेरेंटहुड फेडरेशन) जैसे 'प्रतिष्ठित' संगठन भी इंजेक्शन योग्य गर्भनिरोधकों को परिवार नियोजन के लिए एक उपयोगी व विश्वसनीय विधि मानते हैं। गर्भनिरोधक टेक्नोलॉजी महिलाओं की बजाय बहुराष्ट्रीय कंपनियों के नियंत्रण में ज्यादा हैं। गर्भनिरोधकों का विवरण महिलाओं के हाथ में हो सकता है (जैसा कि ब्रिटेन में है) किंतु इसका मतलब यह नहीं है कि उनके बारे में व्यापक स्तर के निर्णय के अधिकार या किसी खास गर्भनिरोधक के बारे में निर्णय की स्वतंत्रता महिलाओं के हाथ में है। पुरुष साम्राज्य मौजूद है और इसीलिए गर्भनिरोध एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें विपरीत लैंगिक संबंध वाली महिलाएं सीमित विकल्पों से जकड़ी हुई हैं। इसके अलावा चिकित्सा प्रतिष्ठान में भी पुरुष वर्चस्व है और महिलाओं को पुरुष

परिभाषित श्रेणियों में 'फिट' होने के लिए बाध्य किया जाता है। इसी पूर्वाग्रह के साथ चिकित्सा प्रतिष्ठान हमारी मासिक चक्र की समस्याओं को देखता है। चूंकि हमारी स्त्री रोग संबंधी गड़बड़ियों को 'मनो–शारीरिक' का खिताब दे दिया जाता है, इसलिए इन घुसपैठी गर्भनिरोधकों से होने वाली मासिक चक्र गड़बड़ियों, पीड़ा और अन्य मनोवैज्ञानिक समस्याओं की कोई समझ नहीं है।

कई सारे शोध अध्ययनों के निष्कर्ष विवादास्पद हैं। मैदानी परीक्षण अध्ययनों में महिलाओं की शारीरिक जांच नहीं की जाती क्योंकि इससे वे अध्ययन में भाग लेने को लेकर निरुत्साहित हो सकती हैं और ऐसा होने पर ग्राम स्तर परिवार नियोजन कार्यक्रम की बदनामी होगी (बालसुब्रमन्यम, सन् 1981)। लंबी अवधि का कोई फ़ॉलोअप भी नहीं किया जाता। तब सुरक्षा संबंधी दावे किस आधार पर किए जाते हैं। हार्मोन से दीर्घावधि गड़बड़ियां हो सकती हैं। अतः जो महिलाएं हार्मोन गर्भनिरोधक ले रही हैं वर्षों तक उनकी निगरानी होनी चाहिए। न सिर्फ उनकी बल्कि यदि उन्होंने इन गर्भनिरोधकों का उपयोग जचकी बाद की अवधि में किया हो, तो उनके बच्चों की भी तब तक निगरानी होनी चाहिए जब तक कि वे यौवनावस्था पर न पहुंच जाएं। इस संदर्भ में हमें गोली व उन सब गर्भनिरोधकों के विरुद्ध संघर्ष करना चाहिए जिनके हार्मोन संबंधी या शरीर तंत्र में प्रभाव हो सकते हैं। किंतु इंजेक्शन योग्य गर्भनिरोधकों के खिलाफ़ हमारे सघन प्रयास इसलिए भी हैं कि दीर्घावधि असर के गर्भनिरोधकों के उपयोग के बाद शरीर पर नियंत्रण की संभावना न्यूनतम होती है और ऐसे खतरनाक प्रभाव होते हैं, जिनका इलाज हम तत्काल इन्हें छोड़कर नहीं कर सकते। इसके अलावा इनके दुरुपयोग की भी ज्यादा संभावना है।

दीर्घावधि असर गर्भनिरोधक खासकर इंजेक्शन चुनाव की स्वतंत्रता के संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण हैं। जनसंख्या नियंत्रण हिमायती इंजेक्शन का 'महत्व' ही इस रूप में देखते हैं कि यह चुनाव की आजादी महिलाओं के हाथों से छीनकर पुरुष साम्राज्य के हाथों में दे देता है। लंदन में 14 वर्षीय अश्वेत लड़की को तब डीपो प्रोवेरा दिया गया जब वह गर्भपात के लिए बेहोश की गई थी (राकुसेन, सन् 1981)। स्कॉटलैंड के सामाजिक कार्यकर्ता बताते हैं कि एक लड़की को ग्लूकोज इंजेक्शन के बहाने डीपो प्रोवेरा दिया गया। ब्रिटेन में एशियाई महिलाओं की जचकी के बाद टीकों के साथ नियमित रूप से डीपो प्रोवेरा दिया जाता है। ऐसा करते हुए इस बात का कोई ध्यान नहीं रखा जाता कि बच्चा स्तनपान के साथ हार्मोन भी पिएगा।

ये उदाहरण तो मात्र झलकियां हैं। ये इतने बेबाक हैं क्योंकि हम साफ देख सकते हैं कि इंजेक्शन के दुरुपयोग के ज़रिए कैसे हमारी आजादी छीनी जा सकती है परंतु व्यापक चित्र शायद इससे कहीं ज्यादा भयानक होगा। सारी दुनिया और खासकर विकासशील देशों में इंजेक्शनों को 'सुविधाजनक' होने के बहाने बढ़ावा दिया जाएगा। सवाल उठता है कि किसके लिए सुविधाजनक? जब प्रभावित महिला यह तय नहीं कर सकती है कि वह कौन–सा गर्भनिरोधक इस्तेमाल करे तो 'जानकारी आधारित मंजूरी' मात्र आधा सच है और जब वह इनके दीर्घावधि हार्मोन संबंधी व शरीर तंत्र पर असरों को नियंत्रित नहीं कर सकती तो 'सुविधा' की बात करना अमानवीय है। दरअसल यह दवा कंपनियों और जनसंख्या नियंत्रण के दादाओं की सुविधा की बात हो रही है ताकि यह खतरनाक हार्मोन मिश्रण 'मूर्ख और गैर–जिम्मेदार' महिलाओं के शरीर में झोंका जा सके।■

संदर्भ

1. बालसुब्रमन्यम, विमल, 'आफ्टर दी पिल', मेनस्ट्रीम, खंड 20, क्र. 13, नवंबर 1981.
2. काफ्मैन, पी.ए., जिल राकुसेन में उद्धरित (1981).
3. इंटरनेशनल प्लांड पेरेन्टहुड फेडरेशन, फेक्टशीट्स ऑन डीपो प्रोवेरा.
4. कार्कल, मालिनी, साईंस एज, 1985.
5. राकुसेन जिल, डीपो प्रोवेरा : समस्या की हद, जन्म नियंत्रण की राजनीति पर एक अध्ययन, महिला, स्वास्थ्य व प्रजनन में संकलित, सं. हेलन राबर्ट्स, रूटलेज और केगन पोल (1981).
6. राबर्ट्स, हेलन, परिवार नियोजन में पुरुष साम्राज्य (उपरोक्त पुस्तक में संकलित).

———

हमारी सामूहिक चिंता[24]

— डॉ. कामाक्षी भाटे

कोस्टारिका मध्य अमरीका का एक छोटा सा देश है जिसकी जनसंख्या तीस लाख से भी कम है। इसलिए 'कैफ़ेमिना' नामक कोस्टारिका की महिलाओं की एक स्वतंत्र संस्था द्वारा मई, 1987 में पांचवे अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन 'स्त्री और स्वास्थ्य' की ज़िम्मेदारी लेना वास्तव में एक हिम्मत का काम था। सौ देशों की 800 से भी ज्यादा महिला प्रतिनिधि इस सबसे बड़े अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में 'स्त्री और स्वास्थ्य' व स्वास्थ्य संबंधी अन्य विषयों पर विचार—विमर्श करने के लिए इकट्ठी हुईं और सम्मेलन, पूरे विश्वास, दोस्ती और विचारों के लोकतांत्रिक आदान—प्रदान के माहौल में हुआ। इससे पता चलता है कि महिला संगठनों के समर्पण व सामूहिक प्रयास से क्या महान उपलब्धि हो सकती है।

सम्मेलन के तीन प्रमुख विषय थे — 1. जनसंख्या नीति और नई प्रजनन तकनीकें 2. महिला और सामुदायिक स्वास्थ्य तथा 3. महिलाएं और दवाइयां। मैंने एक परचा प्रस्तुत किया — 'लिंग निर्धारण परीक्षण : भारतीय नारी आंदोलन को नई चुनौती' जिसमें एम्नियोसेंटेसिस[25] (Amniocentesis) और लिंग निर्धारण परीक्षण के बड़े पैमाने पर हो रहे दुरुपयोग के बारे में बताया, जिसका इस्तेमाल मादा भ्रूण हत्या के लिए किया जा रहा है। लिंग निर्धारण परीक्षण की इस अमानवीय प्रथा पर रोक लगाने के लिए देश के विभिन्न भागों में हो रहे अभियानों के बारे में भी बताया। अधिकांश प्रतिनिधि यह जानकर हतप्रभ रह गए कि भारत में ऐसा कुछ हो रहा है।

प्रधानमंत्री राजीव गांधी (तत्कालीन) के लिए एक अपील पर लगभग सभी प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किए जिसमें मादा भ्रूण हत्या के लिए लिंग निर्धारण परीक्षण के दुरुपयोग की निंदा की गई थी और इसे रोकने के लिए वैधानिक कार्रवाई करने का आग्रह किया गया था। इस विषय को सम्मेलन के अंत में पारित किए गए प्रस्ताव में भी अभिव्यक्ति मिली। उसमें कहा गया कि हमारी प्रजनन क्षमता का दुरुपयोग किया जा रहा है और इसे वैज्ञानिक प्रयोगों का साधन बनाया जा रहा है, हालांकि शोध कभी भी उदासीन नहीं होता। तीसरी दुनिया की महिलाओं के लिए इस तरह के शोध का अर्थ संगठित जाति संहार है। भारतीय महिलाओं के अनुभव से यह बहुत साफ पता चलता है।

---

[24]मूल अंग्रेजी से अनुवाद : सुश्री शशि सक्सेना।

[25]गर्भवती महिला के गर्भाशय के तरल पदार्थ (फ्लुइड) की जांच; बच्चे की जन्मजात कमियों व विकृतियों का पता लगाने के लिए।

अमरीका की कई संस्थाओं से बहुत–सी प्रतिनिधि आई थीं। उन्होंने अमरीका में गर्भपात विरोधी लोगों की बढ़ती ताकत के बारे में बताया जिन्हें रीगन सरकार और दक्षिणपंथी ताकतों से सीधा बढ़ावा मिल रहा है। इस विषय पर बहुत विचार–विमर्श हुआ। अमरीकी सरकार ने उन सभी चिकित्सा संस्थाओं को पैसा देना बंद कर दिया है जहां गर्भपात किए जाते हैं। जीवन के समर्थक समूह (प्रो लाइफ़ ग्रुप) गर्भपात करने वाले चिकित्सालयों के सामने नियमित रूप से प्रदर्शन करते हैं और उन महिलाओं का सामाजिक बहिष्कार भी करते हैं जो गर्भपात करवाती हैं। लोगों की भावनाओं का गलत फ़ायदा उठाने के उद्देश्य से पोस्टर और विज्ञापन लगाए जा रहे हैं जैसे कि एक पोस्टर जिसमें एक बच्चा अपनी गर्भवती मां से कहता हुआ दिखाया गया है कि 'मां कृपया मेरी छोटी बहन को न मारो, मैं उसे बहुत प्यार करता हूं' को बहुत जगह प्रदर्शित किया गया है।

बहुत से लातिनी अमरीका के देशों के प्रतिनिधियों ने वहां गर्भपात गैर–कानूनी होने के कारण महिलाओं को होने वाली समस्याओं के बारे में बताया। कोस्टारिका के स्वास्थ्य मंत्रालय से आई एक नर्स ने बताया कि वहां लूप, कॉपर–टी आदि व नसबंदी ऑपरेशनों को बहुत ही आक्रामक ढंग से बढ़ावा दिया जा रहा है व इसका महिलाओं पर क्या असर हो रहा है इस पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। पेरू में गर्भपात करवाने वाली महिलाओं को जेल में सजा भुगतनी पड़ती है। निकारागुआ में गर्भपात केवल बलात्कार की स्थिति में ही कानूनी है। चिली में यह बलात्कार और व्याभिचार की स्थिति में भी गैर–कानूनी है। क्यूबा ही एक मात्र लातिनी अमरीका का ऐसा देश है जहां की महिलाओं को बिना किसी बंधन के गर्भपात का पूरा–पूरा अधिकार है।

नाइजीरिया और युगांडा की महिलाओं ने बहुत से अफ्रीकी देशों में बांझपन से जुड़ी अजीबो–गरीब मान्यताओं की बात की। उन्होंने बताया कि वहां की परंपरा और संस्कृति में प्रजनन क्षमता की पूजा सी होती है। पर बांझपन के बुनियादी कारणों जैसे तपेदिक, बाल–विवाह, यौन रोगों व अस्वच्छ परिस्थितियों में प्रसव आदि समस्याओं को दूर करने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता। अफ्रीकी महिलाओं ने अपने विशेष प्रस्ताव में इन हालातों का फल भुगतने और गुनहगार साबित किए जाने से होने वाली परेशानियों के बारे में विशेष जोर देकर बताया।

उत्तरी अफ्रीकी देशों सूडान और इजिप्त की सुन्नत प्रथा के बारे में भी बातचीत हुई। जबकि इसके बहुत गंभीर शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक परिणाम हो सकते हैं फिर भी यह पुरानी प्रथा आज भी व्यापक रूप से प्रचलित है। कई पूर्वाग्रहों, और अंधविश्वासों के अनुसार शादी के समय महिलाओं का कौमार्य बेहद ज़रूरी है, के कारण सुन्नत प्रथा बहुत गहराई से जड़ें जमाए हुए है और इसे झूठे तरीके से इस्लाम धर्म की

स्वीकृति की आड़ में सही ठहराया जाता है। सुन्नत प्रथा के तहत किए जाने वाले ये ऑपरेशन ज्यादातर अकुशल व्यक्तियों के द्वारा बहुत गंदे स्थानों में किए जाते हैं और उपकरणों को कीटाणु रहित करने की सुविधा भी नहीं होती या होती भी है तो न के बराबर।

ब्रिटेन के प्रतिनिधियों द्वारा प्रस्तुत मानसिक स्वास्थ्य का सत्र बहुत बढ़िया था। उन्होंने बताया कि किस तरह स्वास्थ्य सेवा के अन्य क्षेत्रों की तरह मानसिक पीड़ा के उपचार को बहुत अलग–थलग प्रकार की चिकित्सा समस्या करार दे दिया जाता है। इस सबका मानसिक स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता है क्योंकि मानसिक रोगों के उपचार के लिए सामाजिक हालातों और भावनात्मक संबंधों में सकारात्मक बदलाव बहुत ही ज़रूरी होता है।

ग्रीस की एक स्त्री रोग विशेषज्ञ ने आनुवांशिकी, जीव वैज्ञानिक और सामाजिक मातृत्व के विकृत स्वरूप द्वारा महिलाओं के दमन के बारे में बताया। उन्होंने कहा कि, "या तो हमें मातृत्व के प्राकृतिक रूप से वंचित रखा जाता है या फिर इसका बिगड़ा हुआ रूप हम पर थोप दिया जाता है।" जापान की एक प्रतिनिधि ने भी इससे संबंधित विषय उठाया। यह प्रतिनिधि सीशिरेन नामक समिति से थी जो कि सुंदर संतान उत्पन्न करने के विषय से संबंधित (सुजननिकी) संरक्षण कानून सुधार का विरोध कर रही है। इसमें बोसई या जबरदस्ती थोपे हुए मातृत्व पर भी एक कार्यशाला आयोजित की है। जापान में बोसई का महत्व न केवल गर्भधारण में है बल्कि यह कई विशेषताओं जैसे आदर्श महिला (सुगठित शरीर वाली), आदर्श मां और आदर्श बच्चे से भी संबंधित है। जापानी महिलाओं को जबरदस्ती परंपरागत अपरिवर्तनीय रूप दिया जाना उनके लिए बहुत ही हानिकारक है। यह एक विडम्बना ही है कि जापान की अभूतपूर्व आर्थिक और तकनीकी उन्नति में वहां की महिलाओं का महान योगदान रहा है फिर भी वहां का पुरुष प्रधान समाज महिलाओं को घर और बच्चों के बंधनों तक ही सीमित रखना चाहता है।

स्वास्थ्य एक राजनीतिक तथ्य

सम्मेलन में इस समझ की ओर ध्यानाकर्षित किया गया कि स्वास्थ्य सबसे पहले एक राजनीतिक तथ्य है। यानी स्वास्थ्य वास्तव में एक भौतिक, मानसिक, आध्यात्मिक और पर्यावरण की परिस्थिति का संतुलन है जो कि समाज के भीतर के न्यायपूर्ण सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक हालातों द्वारा संभव हुआ है। सम्मेलन के अंत में स्वीकार किए गए प्रस्ताव में टिप्पणी की गई कि यह बहुत ज़रूरी है कि सारी दुनिया की महिलाओं के संघर्ष को समन्वित किया जाए जिससे साधनों को उन स्वास्थ्य योजनाओं के लिए

नियंत्रित और वितरित किया जा सके जो समाज द्वारा महत्वपूर्ण मानी गई हैं। 'अपनी इतनी सारी क्षमताओं को पूरा करने के लिए हमें समाज में अपने लिए जगह बनानी है जहां हम अपने आपको सृजनात्मक और सहभागी के रूप में जान सकें। इसके लिए हमें समझना होगा कि अपने घाव भरने की क्षमता हमारे भीतर ही है।'

प्रस्ताव में उन स्वास्थ्य नीतियों की भी आलोचना की गई जिनका आधार अभिजात्य वर्ग के लिए लाभ और शक्ति जुटाना ही है। प्रस्ताव में कहा गया है कि समाज में पहले से ही विद्यमान वर्ग और प्रजाति आधारित ढांचे, जो पुरुष शक्ति पर आधारित हैं, का इस्तेमाल साम्राज्यवादी इन नीतियों को लागू करने में करते हैं। अभिजात्य वर्ग की इन नीतियों ने परंपरागत जानकारियों और व्यवहार की विविधता के महत्व को कम किया है। ये नीतियां स्वास्थ्य संबंधित सांस्कृतिक मूल्यों पर भी प्रहार करती हैं और कई बार इन्हें बरबाद भी करती हैं।

सम्मेलन में विकासशील देशों की खस्ता आर्थिक स्थिति पर भी चिंता व्यक्त की गई जो कि 'अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय कोष' (आईएमएफ़) की योजनाओं के कारण और भी बिगड़ती जा रही है और जिसके फलस्वरूप विपत्ति, भूख, बेकारी, घरों की कमी और अंततः करोड़ों लोगों खासकर महिलाओं के लिए गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं पैदा कर रही हैं। यूरोप और उत्तरी अमरीका में रह रही प्रवासी महिलाओं की खास समस्याओं के बारे में भी बात हुई। अफ्रीका, एशिया, केरोबियन, लातिनी अमरीका, मध्यपूर्व और दक्षिण पैसिफिक की महिलाएं, जिनके पूर्वज यूरोप और उत्तरी अमरीका आकर गुलामी के लिए मजबूर हुए थे और जो आज भी उपनिवेशवाद की विषमताओं के कारण बाध्य हो रही हैं और जिनकी मेहनत ने इन देशों को धनी बनाया है, वे आज निर्वासन, अपहरण, देश निकाला, विस्थापन, कैद, वेश्यावृत्ति, बलात्कार, यंत्रणा, जाति–संहार की योजनाओं और आतंकवादी हमलों की शिकार हैं। यह संस्थागत हिंसा सभी तरह की और हिंसा को जन्म देती है। हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में एक डर घर कर गया है कि जो हमारे अस्तित्व को भयभीत करता है और हमारे स्वास्थ्य पर बहुत नाटकीय ढंग से असर डालता है।

सम्मेलन में विकासशील देशों में चल रही बहुराष्ट्रीय दवाई कंपनियों की बेईमान नीतियों पर भी दुःख प्रकट किया गया। उन्होंने मांग रखी कि सहायता केवल मांगने पर ही दी जानी चाहिए और वह भी प्राप्त करने वाले देश की शर्तों के अनुसार। एक अफ्रीकी प्रतिनिधि ने संस्कृति, जाति व रंगभेद नीति के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर हुए विनाशकारी प्रभावों के बारे में बताया और दुनिया भर की महिला संगठनों से आग्रह किया कि वे दक्षिण अफ्रीका और अन्य अफ्रीकी देशों के स्वतंत्रता सेनानियों को उनकी आजादी के संघर्ष में बिना किसी हिचक के अपना पूरा सहयोग दें।

लातिनी अमरीकी प्रतिनिधियों ने भी अवैध दवाइयों के व्यापारियों के खिलाफ आवाज उठाई और मांग रखी कि ऐसे धंधों के असली मालिकों को सजा मिलनी चाहिए न कि उन मजदूर–किसानों को जिनका आर्थिक आधार इस पर निर्भर है।

निकारागुआ क्योंकि कोस्टारिका का पड़ोसी देश है अतः वहां कोन्टास द्वारा चलाए जा रहे गंदे युद्ध, जो अमरीका के उपनिवेशवाद के सीधे सहयोग से भड़काया जा रहा है, उसका औपचारिक व अनौपचारिक विचार–विमर्श में ज़िक्र आना स्वाभाविक ही था। एक प्रमुख प्रस्ताव में हिस्सा लेने वाले प्रतिनिधियों ने एकमत होकर स्पष्ट रूप से अपना मत व्यक्त किया कि 'निकारागुआ को अपनी नियति नए सिरे से तय करने का अधिकार है। हम इस गंदी लड़ाई और झगड़ों की भर्त्सना करते हैं क्योंकि इनका गहरा असर महिलाओं के स्वास्थ्य पर पड़ता है।'

अंत में सर्वसम्मति से पूरे परमाणु निरस्त्रीकरण की आवश्कता पर बल दिया गया। सम्मेलन में केरीबियन सागर और प्रशांत व हिंद महासागर में सैनिक अड्डे बनाए जाने का विरोध किया गया।

सम्मेलन में हमें लगा कि महिलाएं वास्तव में अंतर्राष्ट्रीयवाद की प्रतीक हैं, दुनिया में महिलाओं के और अंततः सभी जगहों पर सभी तरह के दमन को खत्म करने के लिए कटिबद्ध हैं। हालांकि इस सम्मेलन में हमारी चिंता मुख्यतः महिलाओं के स्वास्थ्य की है पर यह सारे विश्व के लिए स्वस्थ और सुरक्षित भविष्य की हमारी चिंता का केवल एक हिस्सा मात्र है। महिला वर्ग के बहनापे का सबसे बड़ा अनुभव मुझे 'केफेमिना' द्वारा सभी महिलाओं की वाद्य–वृन्द रचना सुनकर हुआ जब होटल कोरोबिसी के भव्य भवन में सम्मेलन के उद्घाटन समारोह में सब अपरिचित महिलाएं एक साथ गा रही थीं, नाच रही थीं व एक–दूसरे को खुशी से गले लगा रही थीं।

एक अमरीकी पुरुष जो महिलाओं के इस उत्सव को देख रहा था वह इनकी बेहिचक सहजता, जोश और सच्ची दोस्ती से हैरान रह गया और उसने मुझसे कहा कि, "आप महिलाओं ने वह पा लिया है जो पुरुषों ने नहीं पाया। पुरुषों की सभा इससे कहीं ज्यादा औपचारिक होती है, उसमें इस तरह के उत्साह और मैत्री की भावना की कमी होती है।" इसका जवाब मैंने ऐसे दिया, "आप गलत कह रहे हैं, महिलाओं ने यह सब प्राप्त नहीं किया है बल्कि उन्होंने यह सब खोया नहीं है। उन्होंने यह सब संजोकर रखा है जो मानवता के लिए बहुत स्वाभाविक है। जबकि पुरुषों को ज़रूरत है कि वे वह सब वापिस पाएं जो वे खो चुके हैं।" ■

अवरोध गर्भनिरोधक और प्राकृतिक परिवार नियोजन[26]

– प्रो. बेट्सी हार्टमान

1960 व 70 के दशक की गर्भनिरोधक क्रांति ने गोली, बच्चेदानी के अंदर डालने वाले साधनों (कॉपर–टी, लूप आदि), इंजेक्शन और इम्पलांट (त्वचा के नीचे रखी जाने वाली गोली) को जन्म दिया जो सभी बहुत कारगर व पलटे जा सकने वाले गर्भनिरोधक हैं, बशर्ते कि इनका सही ढंग से उपयोग किया जाए। परंतु अनुसंधान में करोड़ों डॉलर झोंकने के बावजूद उक्त क्रांति में गर्भनिरोधक सुरक्षा में कोई वास्तविक सुधार नहीं हुआ। ठीक इसके विपरीत इन विधियों में स्वास्थ्य का जोखिम काफी है और जनसंख्या कार्यक्रमों में इनके दुरुपयोग के कारण यह और भी बढ़ जाता है।

आज एक और गर्भनिरोधक क्रांति की ज़रूरत है। ज्यूडिथ ब्रूस और एस ब्रूस शीरर का कहना है, "आज के गर्भनिरोधकों की कारगरता, सुविधा और कम कीमत को बरकरार रखते हुए, कल के गर्भनिरोधक ऐसे होने चाहिए जो अल्प और दीर्घ अवधि में सुरक्षित हों, पूर्णतया पलटे जा सकने वाले हों और भावी उर्वरता एवं दूध पीते बच्चों और दुग्धस्राव पर कोई प्रभाव न डालें।"

विडम्बना तो यह है कि अवरोध गर्भनिरोधकों के रूप में ऐसी विधियां आज भी उपलब्ध हैं – जैसे शुक्राणु नाशक, निरोध (कंडोम), डायफ्राम, ग्रीवा टोपी आदि – हालांकि इनके सुधार की बहुत गुंजाइश व ज़रूरत है। परंतु फिर भी तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों के परिवार नियोजन कार्यक्रमों में ये उपलब्ध नहीं हैं और पश्चिमी देशों में लोगों को इनका उपयोग करने से निरुत्साहित किया जाता है।

बांग्लादेश में मेरा अनुभव ऐसा ही रहा, जहां मैं खुद विदेश से आयातित डायफ्राम का उपयोग करती थी। इसकी सारी कमियों के बावजूद मैं ग्रामीण महिलाओं को एक विकल्प के रूप में डायफ्राम या शुक्राणु नाशक उपलब्ध कराना ज्यादा उचित समझती हूं बजाय गोलियां बांटने के। परंतु इसकी कोई संभावना नहीं थी।

पड़ोसी देश भारत में भी यही हालत थी। यदि आप संपन्न हैं और बड़े शहर में रहते हैं, तो एक या दो केमिस्टों के पास स्त्री–अवरोध विधि जैसे डायफ्राम या ग्रीवा टोपी मिल

---

[26]'रिप्रोडक्टिव राईट्स एंड रांग्स : . . .' (जनवरी 1987) से साभार। मूल अंग्रेजी से अनुवाद : डॉ. सुशील जोशी।

सकती है। परंतु यह सब होने के बाद भी एक हिंदुस्तानी लेखक का कहना है कि "इस बात में शक है कि यहां के डॉक्टर को पता होगा कि ये उपकरण कैसे लगाए जाएं।"

एम्स्टर्डम में सन् 1984 में हुई 'वीमेन्स इंटरनेशनल ऑन रिप्रोडक्टिव राईट्स' (प्रजनन हकों पर अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन) में भी यही शिकायत बार–बार दोहराई गई। सम्मेलन में बताया गया कि 'इंटरनेशनल प्लांड पैरेंटहुड फेडरेशन' (आई.पी.पी.एफ.) कोस्टारिका में गोली और नसबंदी को जोरदार प्रोत्साहन देता है परंतु पूरे देश में एक भी डायफ्राम नहीं मिलेगा।

जनसंख्या प्रतिष्ठान के अंदर, अवरोध विधियों के खिलाफ गहरे पूर्वाग्रह हैं। एक प्रसिद्ध अनुसंधानकर्ता डॉ. मालकोम पाट्स का कहना है, "पश्चिमी देशों में डायफ्राम तभी तक उपयोगी था जब तक कि सुविधाएं दवाखाने पर आश्रित थीं और बच्चेदानी के अंदर डालने वाले साधन (आई.यू.डी.) एवं गोली का अविष्कार नहीं हुआ था। अब तो यह किसी पुरानी कार के समान है जो कुछ जगहों पर चल रही है पर विश्व स्तर पर जिसका कोई महत्व नहीं।"

क्या अवरोध विधियां वाकई इतनी पुरातन और नगण्य हो गई हैं – या क्या ये एक–दूसरी गर्भनिरोधक क्रांति की बुनियाद बन सकती हैं, जिसमें स्वास्थ्य और सुरक्षा का प्रथम स्थान होगा?

अवरोध विधियों से दोबारा मुलाकात

ज्यूडिथ ब्रूस और एस. शीरर, "उच्च टेक्नोलॉजी जन्म नियंत्रण विधियों पर एक तरफा ध्यान के कारण दुनिया भर के लाखों पुरुषों व महिलाओं की ज़रूरतें उपेक्षित पड़ी हैं।" पुरानी कारों के विपरीत, अवरोध विधियां आज भी कई लोगों द्वारा इस्तेमाल की जाती हैं। बीसवीं सदी के पूर्वाध में अमरीका में सबसे आम गर्भनिरोधक कंडोम और डायफ्राम थे। हालांकि गोली और आई.यू.डी. के विकास के बाद इनका प्रचलन कम हो गया। पर जैसे–जैसे ज्यादा–से–ज्यादा लोग आधुनिक विधियों के बुरे प्रभावों से त्रस्त हो रहे हैं और अपने आपको यौन रोगों से बचाना चाह रहे हैं, वैसे–वैसे अवरोध विधियां फिर उत्थान पर हैं। अमरीका में किए गए एक सर्वे के अनुसार जो दंपत्ति थोड़े देर से बच्चे चाहते हैं, उनमें गोली का उपयोग सन् 1973 के 61 प्रतिशत से घटकर सन् 1982 में 45 प्रतिशत रह गया। इसी अवधि में डायफ्राम का उपयोग 16 प्रतिशत से बढ़कर 34 प्रतिशत यानी दुगुने से भी ज्यादा हो गया। इसके बावजूद अमरीका में परिवार नियोजन कार्यक्रम में

अवरोध विधियों के खिलाफ भेदभाव जारी है। एक ताजा अध्ययन से पता चला है कि लोगों को जानकारी देते समय परिवार नियोजन स्टॉफ गोली और आई.यू.डी. की कारगरता को ज्यादा करके बताते हैं और अवरोध विधियों की कम। इस तरह से लोगों को अवरोध विधियों के प्रति पूर्वाग्रहित किया जाता है।

तीसरी दुनिया के देशों में महिला अवरोध विधियों की जानकारी और उपयोग काफी कम हैं। बानगी सर्वे से पता चलता है कि गर्भनिरोधक उपयोग करने वाली महिलाओं में से मात्र 1 से 5 प्रतिशत ही इनका उपयोग करती हैं, सिवाय त्रिनिदाद और टोबेगो के, जहां यह आंकड़ा 10 प्रतिशत है। कंडोम (निरोध) का उपयोग ज्यादा व्यापक रूप से होता है। उदाहरण के लिए फिज़ी, कोरिया, पाकिस्तान, सिंगापुर, बार्बेडोस, जमेका, त्रिनिदाद व टोबेगो में गर्भनिरोधक उपयोगकर्ताओं में से 15 प्रतिशत कंडोम का उपयोग करते हैं। जापान में यह आंकड़ा 75 प्रतिशत तक पहुंच गया है। इसका आंशिक कारण यह है कि एक तो कंडोम पूरे देश में उपलब्ध हैं और वहां की सांस्कृतिक परंपरानुसार गर्भनिरोध पुरुष की ज़िम्मेदारी है।

अवरोध विधियों से क्या लाभ है? हार्मोन आधारित गर्भनिरोधक या आई.यू.डी. के विपरीत इनका कोई बड़ा ज्ञात बुरा प्रभाव नहीं है। यदि इन्हें कानूनी गर्भपात की सुविधा के साथ–साथ इस्तेमाल किया जाए, तो जान के जोखिम के संदर्भ में से ये सबसे सुरक्षित पलटे जा सकने वाले गर्भनिरोधक हैं। उपयोग बंद करने पर इनसे उर्वरता खत्म होने या लंबित होने का कोई खतरा नहीं है और ये उपयोगकर्ता को कई सारी यौन बीमारियों से बचाती हैं। ये बीमारियां दुनिया के कई हिस्सों में बांझपन और रोगग्रस्तता का प्रमुख कारण हैं। इनसे ग्रीवा कैंसर की संभावना कम हो जाती है जबकि हार्मोन विधि से यह संभावना बढ़ती है। (देखिए बॉक्स 4 : एड्स[27] और अवरोध गर्भनिरोधक)

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने दूध पिलाती मांओं के लिए खासतौर पर अवरोध विधियों की अनुशंसा की है, क्योंकि इनसे दूध की मात्रा या गुणवत्ता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ये विधियां यौन सक्रिय अविवाहित युवाओं के लिए भी अनुकूल हैं, जिनकी संख्या पूरी दुनिया में बढ़ती जा रही है क्योंकि वे औपचारिक तंत्र से गर्भनिरोधक पाने में या तो असमर्थ हैं या उसके इच्छुक नहीं हैं और उनको यौन संक्रामक रोगों का खतरा भी बहुत ज्यादा है।

[27]'एक्वायर्ड इम्युनो डेफ़िशिएन्सी सिन्ड्रोम' यानी रोगप्रतिरोधक क्षमता की अभावग्रस्तता।

बॉक्स 4

एड्स और अवरोध गर्भनिरोधक

शरीर के रोग प्रतिरोध तंत्र को नष्ट कर देने वाली इस जानलेवा बीमारी एड्स का आज तक कोई इलाज नहीं है। अमरीका में इस बीमारी से ज्यादा खतरा समलैंगिक पुरुषों और इन्ट्रावीनस (जो सीधी शिरा में दी जाए) दवाइयों का उपयोग करने वालों को ही है। परंतु कुछ अनुसंधानों से पता चलता है कि यह स्त्री–पुरुष यौन संबंधों से भी फैल सकता है। अफ्रीका में इस बीमारी के फैलने का प्राथमिक माध्यम विपरीत लैंगिक संपर्क है। ज़ाएर, जाम्बिया, वींडा और युगांडा में यह बीमारी महामारी के स्तर तक पहुंच गई है।

यद्यपि एड्स का कोई इलाज नहीं है, फिर भी अवरोध गर्भनिरोधकों से लैंगिक संक्रमण को रोकने में मदद मिल सकती है और एड्स महामारी को थामने का यह एक महत्वपूर्ण तरीका हो सकता है। इस बात की काफी संभावना है कि साधारण कंडोम एड्स के वायरस को रोकता है। प्रयोगशाला की परिस्थितियों में पहले ही यह साबित हो चुका है कि कंडोम हर्पीस सिम्पलेक्स टाइप 2 और सायटीनिगेलो वायरस के प्रति अपारगम्य है यानी ये दो प्रकार के वायरस कंडोम को भेदकर अंदर नहीं जा सकते। अमरीका में एड्स और अन्य यौन संक्रामक रोगों के भय से कंडोम की बिक्री बढ़ी है। इनमें 40 प्रतिशत खरीददार महिलाएं हैं।

बहरहाल, कंडोम की 1 से 2 प्रतिशत की असफलता दर को देखते हुए, यह अकेला एड्स के खिलाफ़ पूर्ण बचाव नहीं कर सकता। वैज्ञानिकों का मानना है कि यदि कंडोम को शुक्राणु नाशक के साथ उपयोग किया जाए, तो बचाव हो सकता है। एक इन विट्रो* अध्ययन में नानाक्सिनाल नामक आम शुक्राणु नाशक ने एड्स वायरस को निष्क्रिय कर दिया था। अन्य इन विट्रो अध्ययनों से संकेत मिलता है कि जीवाणुनाशक कई यौन संक्रामक रोगों जैसे गनोरिया, ट्रायकोमोनास, हर्पीस और कैंडिडा आदि के खिलाफ़ कारगर हैं।

संयुक्त राज्य राष्ट्रीय बाल स्वास्थ्य एवं मानव विकास संस्थान की गर्भनिरोधक मूल्यांकन शाखा ऐसे कुछ अध्ययन शुरू करने के बारे में विचार कर रही है जिसमें एड्स संक्रमण की उच्च संभावना वाले लोग कंडोम, डायफ्राम, ग्रीवा टोपी और नानानिक्साल–9 की ज्यादा मात्रा वाले शुक्राणु नाशक का उपयोग करेंगे। इस अध्ययन का उद्देश्य यह पता लगाना है कि क्या इन विधियों के मिश्रण से एड्स से बचाव होता है? अध्ययन में यह भी देखा जाएगा कि क्या पहले से एड्स–ग्रस्त व्यक्ति में अवरोध गर्भनिरोधकों के उपयोग से एड्स का विकास भी धीमा होता है?

यदि अवरोध विधियां एड्स के खिलाफ कारगर साबित हुईं, तो अमरीका में गर्भनिरोधक उपयोग का चित्र ही बदल जाएगा। जनसंख्या प्रतिष्ठान इन विधियों के तीसरी दुनिया में उपयोग के खिलाफ अपने पूर्वाग्रह बदलेगा या नहीं, वह अलबत्ता एक अलग मसला है। खासकर अफ्रीका में अवरोध विधियों के उपयोग का स्वास्थ्य संदर्भ में बहुत महत्व हो सकता है पर क्या जनसंख्या वृद्धि रोकने में कारगरता की दृष्टि से इसे बेकार ही माना जाएगा?

*इन विट्रो – ऐसे प्रयोगों को कहते हैं जो प्राणियों के शरीर के अंदर न करके किसी उपकरण में शरीर जैसी परिस्थितियों का निर्माण करके किए जाते हैं।

और नुकसान? हाल ही में इस बात पर कुछ चिंता व्यक्त की गई है कि जो महिलाएं गर्भधारण के बाद भी शुक्राणु नाशकों का उपयोग जारी रखती हैं उनमें गर्भपात और जन्मजात गड़बड़ियों की दर ज्यादा हो सकती है। बहरहाल ऐसी कड़ी जोड़ने वाले अध्ययन दोषपूर्ण पाए गए हैं। कुछ ऐसी घटनाएं भी हुई हैं जिनमें महिलाओं ने डायफ्राम या गर्भनिरोधक स्पंज को लंबे समय लगा ही रहने दिया जिससे उन्हें तकलीफ हुई। एक ताजा अध्ययन के अनुसार, डायफ्राम का उपयोग करने वालों में मूत्रवाहिनी रोगों की दर ज्यादा होती है।

अवरोध विधियों के खिलाफ बुनियादी आरोप उच्च असफलता दर का है। उदाहरण के लिए, 'पॉप्यूलेशन रिपोर्ट' के अनुसार स्त्री अवरोध विधियां "खाने वाले गर्भनिरोधक, आई.यू.डी. और स्वैच्छिक नसबंदी की अपेक्षा कम कारगर हैं।" फिर भी, वास्तविकता में, अवरोध विधियों की कार्यक्षमता के बारे में आंकड़ों में काफी विविधता है – 100 उपयोगकर्ताओं में से प्रतिवर्ष मात्र दो गर्भ ठहरने (जो कि लगभग आई.यू.डी. या गोली के बराबर है) से लेकर 30 तक महिलाओं के गर्भवती होने की रपटें हैं। इन अंतरों का क्या कारण है?

अधिकांश अध्ययनों से पता चलता है कि लंबे समय से अवरोध विधियों का उपयोग करने वाले अनुभवी लोगों में सफलता की दर अच्छी है। ब्रूस और शीरर के अनुसार सफल उपयोग 'पूरी जानकारी, स्पष्ट निर्देश और फ़ॉलोअप सुविधा' पर भी निर्भर है। चूंकि अवरोध विधियों को हर बार संभोग के समय प्रयोग करना होता है, इसलिए इनके कारगर होने के लिए युगल (जोड़े) के दोनों सदस्यों में सहयोग ज़रूरी है।

अवरोध विधियों की कारगरता की तुलना अन्य पलटे जा सकने वाली विधियों से करते समय यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि तीसरी दुनिया के देशों में उच्च गर्भधारण का कारण गोली का गलत ढंग से उपयोग है। और उपयोग जारी रखने की दर को देखें, तो गोली, आई.यू.डी. और इंजेक्शन के बुरे प्रभावों के कारण इन विधियों के उपयोगकर्ताओं में से 40 से 70 प्रतिशत तक इन्हें दो साल के अंदर ही त्याग देते हैं। दरअसल, प्रतिकूल असर के डर से प्रजनन उम्र की विवाहित महिलाओं में से एक–तिहाई में से एक–चौथाई तक महिलाएं किसी गर्भनिरोधक का उपयोग ही नहीं करतीं। जनसंख्या नियंत्रण के संदर्भ में भी ये आधुनिक 'जादुई' विधियां उतनी कारगर नहीं हैं। तब फिर अवरोध विधियां ही इतनी तिरस्कृत क्यों हैं?

अवरोध विधियों के खिलाफ़ पूर्वाग्रहों के कई कारण हैं। पहला, यह माना जाता है कि गरीब लोग, खासकर गैर–साक्षर अपने शरीर के प्रति इतने लजीले और अज्ञानी हैं कि वे इन विधियों का उपयोग करने का प्रयास तक नहीं करते। दूसरा, कि इन विधियों को

'असुविधाजनक', 'फूहड़' और 'व्यवधानजनक' बताया गया है। कई मामलों में इन्हें धोना, संभालना और ठिकाने लगाना मुश्किल होता है। तीसरा, कि इनके प्रयोग के लिए ज़रूरी है कि दोनों व्यक्ति इच्छुक हों और सहयोग करने लायक हों – डीपो प्रोवेरा की तरह कोई महिला अवरोध विधि को गुपचुप इस्तेमाल नहीं कर सकती। चौथा, कि जनसंख्या प्रतिष्ठान के कई लोग महसूस करते हैं कि इनके बारे में लोगों को शिक्षित करने और समुचित फ़ॉलोअप प्रदान करने में बहुत समय और संसाधन लगते हैं।

क्या इन दलीलों के आधार पर अवरोध विधियों के खिलाफ़ अंतिम फैसला सुनाया जा सकता है? इनमें से कई समस्याएं हल की जा सकती हैं बशर्ते कि ये विधियां संवेदनशील निर्देशों और फ़ॉलोअप के साथ पेश की जाएं और गर्भनिरोध के लिए महिला–पुरुष की साझा ज़िम्मेदारी पर ज़ोर दिया जाए। स्वच्छता, संभालना और ठिकाने लगाने की समस्या मुश्किल तो हैं पर असंभव नहीं। जहां तक महंगी शिक्षा और फ़ॉलोअप का सवाल है, क्या यह आवश्यक नहीं कि परिवार नियोजन कार्यक्रमों के तहत ये महत्वपूर्ण गतिविधियां हर गर्भनिरोधक के मामले में की जाएं?

तीसरी दुनिया में अवरोध विधियों को जितने सीमित दायरे में लागू किया गया है, उससे यह कोई अचरज की बात नहीं है कि ये तथाकथित आधुनिक विधियों की तुलना में कम कारगर रही हैं। जैसा कि ब्रूस और शीरर बताते हैं, अवरोध विधियों के खिलाफ़ पूर्वाग्रह खुद की पुष्टि करके चलते हैं –

> "गरीब महिलाओं की अकुशलता के बारे में नीति निर्माताओं की भविष्यवाणी अवरोध विधियों के उपयोग के बाद सच साबित हो जाती हैं क्योंकि ये विधियां उन महिलाओं की संस्कृति को समझे बिना और बगैर समुचित शिक्षा या फ़ॉलोअप के दी जाती हैं।"

अधिकांश समय अवरोध विधियां या तो उपलब्ध ही नहीं कराई जातीं या फिर गोली, आई.यू.डी. और नसबंदी की तुलना में इनको बहुत कम प्रोत्साहन दिया जाता है। 'पॉप्यूलेशन रिपोर्ट' में दर्ज़ किया गया है कि "बांटने वाले/वितरण करने वाले का नकारात्मक रुख" इनके उपयोग के मार्ग में बाधक है और यदि इनके फायदों को जोर देकर बताया जाए, तो इनका उपयोग बढ़ सकता है।

वास्तव में, तीसरी दुनिया की परिस्थिति में अवरोध विधियों के सफल प्रोत्साहन व उपयोग के कई उत्साहजनक उदाहरण हैं। मुंबई के एक क्लीनिक ने डायफ्राम के द्वारा 90 प्रतिशत कारगर स्तर हासिल किया। उपयोगकर्ता महिलाएं क्लीनिक से संपर्क बनाए रखती थीं। सफलता का संबंध आय स्तर, शिक्षा या नल–जल की उपलब्धि से नहीं जोड़ा

गया। झागवाली शुक्राणु नाशक गोली नीयोसेम्पून को कोई विशेष क्रियान्वयन ज़रूरी नहीं, यह गर्मी से अप्रभावित रहती है और व्यक्तिगत रूप से खरीदी जा सकती है। बांग्लादेश और मिस्र के अध्ययनों में यह कारगर और लोकप्रिय पाई गई।

थाइलैंड, जमैका, इंडोनेशिया, कोरिया, कोलम्बिया, श्रीलंका, भारत, बांग्लादेश आदि कई देशों में कंडोम को व्यापारिक व परिवार नियोजन कार्यक्रम के रास्ते बढ़ावा दिए जाने से इनके उपयोग में वृद्धि हुई है। गोली के विपरीत, कंडोम और शुक्राणु नाशक जन–वितरण योजना के लिए एकदम उचित हैं क्योंकि इनके लिए चिकित्सीय देखरेख नहीं चाहिए। यदि अवरोध विधियों की कारगरता और स्वीकार्यता मध्यम दर्जे की भी हों, तो भी ये उन महिलाओं के लिए महत्वपूर्ण विकल्प हैं जो बच्चों के जन्मों के बीच अंतर रखना चाहती हैं, जिन्हें कानूनी गर्भपात की सुविधा उपलब्ध है और जो गर्भनिरोध की अन्य विधियों से त्रस्त हो चुकी हैं। लोगों के पास इतना विकल्प तो कम–से–कम होना ही चाहिए।

अनुदान संस्थाओं ने विकल्पों को सीमित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अंतर्राष्ट्रीय विकास अनुदान (एड फॉर इंटरनेशनल डिवेल्पमेंट – 'एड') ने जहां सन् 1974 से प्रतिवर्ष औसतन 85 लाख महिलाओं को गर्भनिरोधक गोलियां प्रदान कीं, वहीं इसने सन् 1978 और 82 के बीच प्रतिवर्ष मात्र 25,000 डायफ्राम दिए। सन् 1978 में दरअसल, 'एड' ने एक भी डायफ्राम प्रदान नहीं किया।

'एड' का रिकॉर्ड, कंडोम (14 करोड़) और झागवाली गोलियों के मामले में बेहतर है, हालांकि इनका आंकड़ा भी गोलियों से बहुत पीछे है। इस पूर्वाग्रह का औचित्य यह है कि 'एड' तो तीसरी दुनिया के परिवार नियोजन कार्यक्रमों से आने वाली मांग को पूरा कर रहा है। यदि अवरोध विधियों की मांग ही नहीं है तो वे क्यों दिए जाएं?

परंतु जैसा कि हम देख चुके हैं कि, गर्भनिरोधक की मांग बहुत हद तक अनुदान संस्था पर ही निर्भर करती है। यदि अवरोध विधियों को गोली, आई.यू.डी., इंजेक्शन और नसबंदी जैसी दृढ़ता से बढ़ावा दिया जाता, तो कई लोगों के अनुभव वाकई कुछ और ही होते।

परिवार नियोजन कार्यक्रमों में अवरोध विधियों के खिलाफ़ पूर्वाग्रहों की बराबरी गर्भनिरोधक शोध में इनकी उपेक्षा से की जा सकती है। अवरोध अनुसंधान में सबसे ज्यादा सार्वजनिक निवेश दो अमरीकी संस्थाओं ने किया है – राष्ट्रीय बाल स्वास्थ्य और मानव विकास संस्थान की गर्भनिरोधक विकास शाखा और 'एड' सहायता प्राप्त अंतर्राष्ट्रीय उर्वरता शोध कार्यक्रम। परंतु दो सबसे प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय शोध कार्यक्रम, एक विश्व स्वास्थ्य संगठन का और एक जनसंख्या परिषद् का, अवरोध विधियों के अनुसंधान व

विकास पर एक भी पैसा खर्च नहीं कर रहे हैं। शोध कार्यक्रमों में से व्यवस्थित रूप से बाहर कर दिए जाने के कारण, तकनीकी रूप से अवरोध विधियों में ठहराव सा आ गया है। ब्रूस और शीरर के शब्दों में इनकी कई मौजूदा गड़बड़ियां दरअसल इनका 'अनावश्यक रूप से लोप' होने का प्रतीक है। परंतु अवरोध विधियों में छोटे–मोटे सुधार से भी स्वीकार्यता पर काफी प्रभाव पड़ता है। अमरीकी राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान के गर्भनिरोधक विकास विभाग के अध्यक्ष डॉ. गैब्रियन बिएली का कहना है कि, "हमें लगता है कि यदि हम तकनीकों को आसान बना दें, तो महिलाएं इन्हें ज़रूर अपनाएंगी।"

संसाधनों की कमी के बावजूद, कई उत्साहजनक विकास हुए हैं –

शुक्राणुनाशक शोध – इसमें ज्यादा प्रभावकारी शुक्राणु नाशक रसायन बनाने और इनके उपयोग को आसान बनाने का काम चालू है। सन् 1984 में 'एड' ने आर्थो कंपनी द्वारा बनाई गई एक नई झागजनक गोली 'कांसेप्शनल' को खरीदना शुरू किया है।

डायफ़्राम – के मुख्य क्षेत्र हैं – शुक्राणु नाशक युक्त डायफ्राम जो चौबीस घंटे तक कारगर रहता है और फेंकने योग्य है। एक ऐसा डायफ्राम जो हरेक को फिट हो सके और एक ऐसा डायफ्राम जिसका बाहरी छल्ला संकुचन योग्य हो जिससे महंगे शुक्राणु नाशक की ज़रूरत कम हो जाए। ये नए प्रकार के डायफ्राम अगले कुछ वर्षों में उपलब्ध हो सकेंगे।

स्पंज – सन् 1983 में, चौबीस घंटे तक कारगर शुक्राणु नाशक युक्त स्पंज को 'टुडे' केलिफोर्निया की एक छोटी कंपनी द्वारा बाज़ार में लाया गया। इसके नुकसान हैं – गर्भधारण के जोखिम की उच्च दर, इसके उपयोग से शरीर में झटके आने के मामले और शुक्राणु नाशक की ज्यादा मात्रा से कैंसर का जोखिम है। इसके बावजूद आज अमरीका में इसकी काफी बिक्री हो रही है, कंपनी के अनुमान से 4 गुना ज्यादा।

स्पंज अनुसंधान के लिए काफी धन 'एड' और राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान ने दिया था। परंतु सन् 1984 में 'एड' के गर्भनिरोधक शोध के अध्यक्ष जेम्स शेल्टन तीसरी दुनिया में इसके उपयोग को लेकर उत्साहित नहीं थे। ऐसा मात्र कारगरता और सुरक्षा की दृष्टि से नहीं बल्कि इसलिए भी कि 'यह बहुत महंगा और भारी है'। किंतु बड़े पैमाने पर उत्पादन से कीमत कम हो सकती है और जैसा कि एक भारतीय लेखिका पूछती है, "जब गोली और इंजेक्शनों की कीमतों में रियायत दी जा सकती है, तो फिर सुरक्षित और अविवादास्पद स्पंज को क्यों नहीं?"

स्पंज के साथ काफी उम्मीदें जुड़ी थीं, और हालांकि यह एक आदर्श चीज नहीं है परंतु इससे नई स्त्री अवरोध विधियों के लिए विशाल मांग का पता चलता है। यह विडम्बना ही है कि हजारों साल पुरानी एक विधि पर आधुनिक शोध के लिए हमें बीसवीं सदी के अंत तक इंतजार करना पड़ा।

ग्रीवा टोपी – यह गुश्ताना के आकार का एक यंत्र होता है जो चूषण के द्वारा अपनी जगह पर टिका रहता है। वर्षों तक शोध में इसकी अवहेलना की गई। 1920 और 1930 के दशक में यूरोप में 50 से ज्यादा प्रकार की टोपियां बेची जाती थीं। अब कुछेक प्रकार की टोपियां ही रह गई हैं। कुछ समय पहले तक अमरीका में टोपी का विस्तृत उपयोग स्वीकृत नहीं था। बल्कि इसे तो यूरोप से एक 'प्रायोगिक यंत्र' रूप में आयातित किया जाता था। जब मैंने और बारबारा सीमोन ने आर्थो कंपनी से संपर्क करके इसको फिर से शुरू करने की बात की तो उन्होंने कहा कि इसका तो सवाल ही पैदा नहीं होता क्योंकि 'यह कम मुनाफ़े की चीज है और इससे शुक्राणु नाशकों की बिक्री भी कम हो जाएगी।' वाकई स्पंज का एक लाभ यह है कि इसमें शुक्राणु नाशक की कम मात्रा लगती है और यह डायफ्राम के मुकाबले ज्यादा समय तक अपनी जगह पर रह सकती है।

अमरीका की महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के दबाव के कारण खाद्य एवं औषधी प्रशासन (एफडीए) ने ग्रीवा टोपी पर अध्ययन शुरू किया जिसमें महिलाओं के तीस क्लीनिक एवं स्वास्थ्य प्रोजेक्ट ने भाग लिया। 'कम्पलीट सर्वाइकल कैप गाइड' (ग्रीवा टोपी सम्पूर्ण मार्गदर्शिका) की लेखिका रेबेका चॉकर के अनुसार पिछले 9 वर्षों में 40,000 महिलाओं ने ग्रीवा टोपी का उपयोग किया। अध्ययनों से पता चलता है कि टोपी डायफ्राम के बराबर कारगर है और कई महिलाएं टोपी ज्यादा पसंद करती हैं। उम्मीद है कि सन् 1987 में खाद्य एवं औषधी प्रशासन (एफडीए) प्रेन्टिफ कैविटी रिम कैप को स्वीकृति दे देगा जिसके बाद यह प्लान्ड पेरेन्टहुड (नियोजित पालकत्व) क्लीनिक में उपलब्ध हो जानी चाहिए।

तीसरी दुनिया पर इसका प्रभाव स्पष्ट नहीं है क्योंकि अब तक दान देनेवाली संस्थाओं की गर्भनिरोधक सूची में ग्रीवा टोपी का नामोनिशान नहीं है। बहरहाल, ग्रीवा टोपी के मामले से लगता है कि नारीवादी और स्वास्थ्य कार्यकर्ता इसके लिए असर डाल सकते हैं और शोध प्रतिष्ठान के साथ सिर्फ बहस की ही नहीं बल्कि सहयोग की भी संभावना है।

कंडोम – कंडोम में सुधार को लेकर आज सार्वजनिक या निजी क्षेत्र में लगभग कोई शोध परियोजना नहीं है। जबकि यह बहुतायत से उपयोग किया जाता है और पुरुषों को उपलब्ध एकमात्र विधि है जिसके प्रभाव पलटे जा सकते हैं। यदि कंडोम की झिल्ली उपयोगकर्ता को बेहतर स्पर्श व ऊष्मा संवेदना दे सके तो इस टेक्नोलॉजी का बहुत

फायदा होगा परंतु, जो थोड़ा बहुत शोध किया जा रहा है वह मात्र दिखावे का है। अलबत्ता एशिया और यूरोप में इसके कई साइज़ और प्रकार उपलब्ध हैं।

यौन संक्रामक रोगों से बचाव की दृष्टि से भी अवरोध गर्भनिरोधकों में मुश्किल से कुछ अनुसंधान हुआ है। उदाहरण के लिए शुक्राणु नाशकों में कारगर बैक्टीरिया नाशक मिलाना। ऐसे उपायों से महिला–पुरुष दोनों के स्वास्थ्य को फायदा होगा। इसके अलावा अवरोध विधियों पर हो रहे अधिकांश अनुसंधान में औद्योगिक देशों में इनके उपयोग का ध्यान रखा जाता है। तीसरी दुनिया के संदर्भ में इन पर लगभग कोई काम नहीं हो रहा है जैसे इनकी ऊष्मा या नमी–रोधी क्षमता को बढ़ाना।

पिछले कुछ वर्षों में जन–दबाव और उपभोक्ता मांग के कारण अवरोध विधियों के लिए धन में थोड़ी बढ़ोत्तरी हुई है। जनसंख्या प्रतिष्ठान में भी रवैया धीरे–धीरे बदल रहा है। सन् 1981 के अपने एक लेख में माल्कोम पाट्स ने अपने नकारात्मक रुख को थोड़ा पलटते हुए अवरोध विधियों के उपयोग के 'सकारात्मक स्वास्थ्य प्रभावों' को मान्यता दी है, खासकर कानूनी गर्भपात की सुविधा के उपलब्ध होने पर। उन्होंने और उनके सह–लेखकों ने गर्भनिरोधक 'कारगरता' पर अत्यधिक जोर देने के लिए अनुसंधानकर्ताओं और परिवार नियोजन अधिकारियों की आलोचना की है और बताया है कि गोली व आई.यू.डी. की उच्च कारगरता के साथ–साथ गंभीर बुरे प्रभाव भी जुड़े हैं। अवरोध एवं परंपरागत विधियों के उपयोग को जारी रखने की उच्च दर से भी पता चलता है कि दूरगामी आधार पर देखने से ये गोली या आई.यू.डी. के समकक्ष प्रभावशाली हैं।

हालांकि ये आशाजनक लक्षण हैं परंतु यदि गर्भनिरोधक टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में हवा का रुख पलटकर अवरोध विधियों को अपना उचित स्थान दिलाना है, तो कहीं अधिक सकारात्मक कार्रवाई की ज़रूरत है।

प्राकृतिक राह – अवरोध विधियों की तरह ही प्राकृतिक परिवार नियोजन (प्रा.प.नि.) या दूसरे शब्दों में मियादी परहेज़ भी जन्म नियंत्रण के लिए, हार्मोन और चीरफाड़ विधियों का एक और विकल्प पेश करता है। प्राकृतिक नियोजन में महिला निम्नलिखित विधियों से अपने मासिक चक्र में उर्वर और अनुर्वर समयावधियों को पहचानती है : कैलेंडर या 'ताल' विधि, जिसमें मासिक चक्र के आधार पर अंडाजनन का समय नोट किया जाता है, तापक्रम विधि, जिसमें अंडाजनन को शरीर के तापक्रम में वृद्धि से पहचाना जाता है, धात या बिलिंग पद्धति, जिसमें योनि धात के प्रकार से अंडाजनन को पहचाना जाता है और सिम्पटोथर्मल तकनीक, जिसमें इन तीनों तकनीकों के तत्व शामिल किए जाते हैं। आखिरी तकनीक सबसे कारगर साबित हुई है। चूंकि इन सभी विधियों में उर्वर अवधि को पहचाना

जाता है, इसलिए गर्भ रोकने के समान ही गर्भधारण की संभावना को बढ़ाने के लिए प्रयुक्त की जा सकती है।

अनुमान है कि पूरी दुनिया में कोई एक–डेढ़ करोड़ युगल प्रा.प.नि. की किसी न किसी तकनीक का प्रयोग करते हैं। तीसरी दुनिया के मात्र छह देशों – हेटी, मॉरीशस, पेरू, फिलीपीन्स, दक्षिण कोरिया और श्रीलंका में प्रजनन आयु की पांच प्रतिशत से ज्यादा विवाहित महिलाएं इस विधि का उपयोग करती हैं। औद्योगिक देशों आयरलैंड और पोलैंड में इसके उपयोग की दर सबसे ज्यादा है।

प्रमुख रूप से कैथोलिक चर्च ने प्रा.प.नि. को बढ़ावा दिया है, जो इसे एकमात्र स्वीकार्य गर्भनिरोध विधि मानते हैं क्योंकि इसमें उर्वर अवधि के समय परहेज़ का नैतिक मूल्य जुड़ा है। 'इंटरनेशनल फ़ेडरेशन फ़ॉर फ़ैमिली लाइफ़' और 'दी वर्ल्ड ऑर्गेनाइज़ेशन ऑफ़ दी ओव्यूलेशन मैथड बिलिंग्स (वूम्ब)' इस पद्धति को सिखाने और बढ़ावा देने वाली दो प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं हैं। 'दी वर्ल्ड ऑर्गेनाइजेशन . . .' सिर्फ धात पद्धति के पक्ष में नहीं है।

गर्भधारण रोकने में प्रा.प.नि. की सफलता काफी हद तक प्रशिक्षण संकल्प और युगल के बीच सहयोग पर निर्भर है। कई अध्ययनों में असफलता की दर काफी ऊंची है – 30 प्रतिशत तक – जबकि कुछ अन्य अध्ययनों में यह दर अन्य कारगर गर्भनिरोधकों के बराबर है। भारत में एक प्रोजेक्ट में फ़ॉलोअप को उच्चतम प्राथमिकता दी गई थी और इसमें पहले साल में 813 महिलाओं में से मात्र 3 गर्भवती हुईं। इस विधि के फ़ायदे – यह सस्ती है, किसी चीज की सप्लाई की ज़रूरत नहीं, कोई ऐसा बुरा प्रभाव नहीं जिसमें डॉक्टरी देखभाल लगे और युगल के दोनों सदस्यों की सक्रिय भागीदारी को बढ़ावा देती है।

यदि किसी अन्य गर्भनिरोधक का उपयोग न किया जाए, तो प्रा.प.नि. की सबसे बड़ी खामी यह हो जाती है कि इसमें उर्वर अवधि में परहेज़ करना होता है। कई सारे गर्भ तो इसीलिए ठहर जाते हैं क्योंकि या तो युगल परहेज़ न करने का निर्णय लेता है या पति, पत्नी को संभोग के लिए बाध्य कर देता है। एल सेल्वेडॉर के एक प्रा.प.नि. प्रशिक्षण में उभरे 'यौन राजनीति' के कुछ पहलुओं का वर्णन आड्रे ब्रोन्स्टाइन ने यों किया है –

> "कई महिलाओं ने बताया कि परहेज़ नहीं चलता क्योंकि पति अक्सर नशे में धुत्त आता है और यदि संभोग से इंकार किया तो मारता है। उन्होंने यह भी बताया कि पत्नी बार–बार मना करें तो मर्द जाकर दूसरी महिला ढूंढ लेते हैं। सकारात्मक बात यह थी कि उन्हें लगा कि यदि थोड़ी भी समझदारी हो तो परहेज़ रखने से आदमी

अपनी पत्नी की ज्यादा इज्ज़त करने लगता है और दोनों के बीच संवाद बनने में भी मदद मिली है।"

कीन्या में यह पद्धति सिखाने वाली एक मिशनरी ने बताया कि, "महिलाएं तो सैंकड़ों की संख्या में आती हैं, परंतु मर्द, परिवार सीमित रखने की ज़रूरत समझने के बाद भी, नियम का पालन करने की थोड़ी–सी भी कोशिश नहीं करते।" परहेज़ की समस्या को एक हद तक उर्वर दिनों में अवरोध विधि का उपयोग करके हल किया जा सकता है। खासतौर पर कंडोम जो धात के लक्षणों में ज्यादा परिवर्तन नहीं करता परंतु प्रा.प.नि. के कई समर्थक धार्मिक कारणों से इन 'कृत्रिम विधियों' के खिलाफ़ हैं। ठीक इसी तरह जिस तरह वे विधि की असफलता की दशा में गर्भपात के खिलाफ़ हैं।

अवरोध विधियों के समान ही प्रा.प.नि. भी जनसंख्या एजेंसियों की उपेक्षा का शिकार रहा है। हालांकि कुछ प्रा.प.नि. संस्थाओं को अंतर्राष्ट्रीय विकास अनुदान (एड), राष्ट्र संघ परिवार नियोजन संघ, विश्व स्वास्थ्य संगठन और ब्रिटेन, कनाडा और पश्चिम जर्मनी की सरकारों से मदद मिली है। हाल ही में 'राइट टू लाइफ़' (जीने का अधिकार, अमरीका के एक समूह का नाम) के दबाव के कारण, 'एड' ने प्रा.प.नि. को मदद की राशि बढ़ा दी है। सन् 1985 में 'एड' ने प्रा.प.नि. पर सत्तर लाख डॉलर खर्च किए, जो सन् 1980 में मात्र 4 लाख थे।

प्रा.प.नि. के खिलाफ़ जनसंख्या एजेंसियों की प्रमुख तीन दलीलें हैं : कारगरता, सतर्क सलाह–मशविरे की ज़रूरत और लागत। 'जब परिवार नियोजन के लिए सरकारी डॉलरों के लिए तीव्र प्रतियोगिता और प्रजनन नियंत्रण को बढ़ावा देने की ज़रूरत के कारण लागत और समय का पूरा–पूरा मूल्य मिले इस बात का ध्यान रखना होता है।' 'तर्क विशेषज्ञ प्रा.प.नि. को अन्य ज्यादा कारगर विधियों की तुलना में कम प्रमुखता देते हैं।'

परंतु जैसा कि हम देख चुके हैं कि यदि ठीक से प्रयुक्त न किए जाएं, तो ज्यादा 'कारगर' गर्भनिरोधकों की भी उच्च असफलता दर है और इनमें उपयोग जारी रखने की दर भी कम है। प्रा.प.नि. की सफलता ज़रूर सावधानीपूर्वक दी गई सलाह पर निर्भर है परंतु यही बात अन्य गर्भनिरोधकों के कारगर और नैतिकतापूर्ण उपयोग के लिए भी सही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 'प्रा.प.नि. के लिए आवश्यक महीने में एक बार फ़ॉलोअप राष्ट्रीय परिवार नियोजन कार्यक्रमों द्वारा नहीं दिया जा सकता।' अन्य गर्भनिरोधकों की लागत बहुत ज्यादा है परंतु प्रा.प.नि. में एक तापमापी या चार्ट की कीमत छोड़कर सब मुफ़्त ही है।

यह तो पक्की बात है कि एक महिला को कई बार गोलियां या आई.यू.डी. देने अथवा नसबंदी करने और इनके बुरे प्रभावों का इलाज करने से कहीं ज्यादा सस्ता प्रा.प.नि. सिखाना है। मन में यह विचार आता है कि मुद्दा लागत का न होकर मुनाफ़े का है क्योंकि प्रा.प.नि. एक ऐसी विधि है जिसमें दवा कंपनियों और चिकित्सा जगत को कोई मुनाफ़ा मिलने की संभावना नहीं है।

प्रा.प.नि. का शोध धनाभाव का शिकार है। सन् 1980 से 1986 के बीच इसको पूरे गर्भनिरोधक शोध व विकास व्यय का मात्र 0.6 प्रतिशत मिला। फिर भी अंडाजनन की ज्यादा सटीक तकनीक ढूंढने की दिशा में शोध चालू है। इसके अंतर्गत बेहतर तापमापी, पेशाब, धात और थूक की जांच और हाथ के तापमान में अंतर से अंडाजनन पहचानने पर शोध चल रहा है। उर्वर अवधि पहचानने की किसी आसान और सुस्पष्ट पद्धति के विकास से प्रा.प.नि. की विश्वसनीयता और स्वीकार्यता दोनों काफी बढ़ जाएंगी।

प्रा.प.नि. के विस्तृत फैलाव में एकमात्र रोड़ा सिर्फ जनसंख्या प्रतिष्ठान का रुख ही नहीं बल्कि उसके हिमायती भी हैं। चूंकि प्रा.प.नि. के कई हिमायती जन्म नियंत्रण की अन्य विधियों का विरोध करते हैं इसलिए वे प्रा.प.नि. को परिवार नियोजन के समग्र कार्यक्रम में शामिल करवाने के खिलाफ़ हैं। 'वर्ल्ड ऑर्गेनाइजेशन . . .' से संबद्ध लोगों ने निम्न घोषणापत्र प्रकाशित किया है –

> "वर्ल्ड ऑर्गेनाइजेशन के दर्शन की बुनियादी अवधारणा है मियादी परहेज़ को स्वीकार करना एवं कृत्रिम गर्भनिरोध, गर्भपात और नसबंदी को अस्वीकार करना। संगठन के हर सदस्य का संकल्प है कि जन्म नियंत्रण जैसे तरीकों की न तो सलाह देना है और न ही उपलब्ध कराना है।"

सन् 1985 में 'राइट टू लाइफ़' के दबाव में अंतर्राष्ट्रीय विकास अनुदान (एड) ने अपनी नीति में बड़ा फेरबदल करते हुए इस मत का अनुमोदन किया। 'एड' ने घोषणा की कि वह अपनी 'जानकारी आधारित मंजूरी' की नीति को इस मामले में छोड़ने को तैयार है और प्रा.प.नि. के लिए ऐसे संगठनों को भी वित्तीय मदद देगा जो गर्भनिरोध के अन्य प्रकारों का विरोध करते हों। इन संगठनों के लिए यह बिल्कुल ज़रूरी नहीं होगा कि ये (लोगों को) अन्य विधियों के बारे में भी जानकारी दें, जो कि पूर्व में 'एड' की शर्त रही है। सौभाग्यवश संसद ने नई नीति पर आपत्ति की और 'एड' को पीछे हटना पड़ा।

प्रा.प.नि. के प्रति ऐसे रवैये से न सिर्फ विधि सीमित हो जाती है बल्कि महिलाओं के विकल्प भी सिकुड़ जाते हैं। उदाहरण के लिए, कई महिलाएं अवरोध विधियां या/और गर्भपात के सहारे के साथ प्रा.प.नि. का उपयोग करने को तैयार हैं परंतु इनकी

अनुपस्थिति में उच्च प्रजनन दर से घबरा जाती हैं। कुछ महिलाएं प्रा.प.नि. का उपयोग अपने प्रजनन आयु के कुछ ही सालों तक करना चाहती हैं जब वे दो बच्चों के जन्म के बीच अंतर रखना चाहती हैं और उम्मीद से थोड़ा पहले गर्भ हो जाने पर स्वीकार कर सकती हैं। अन्य समयों पर वे अन्य गर्भनिरोधक चाह सकती हैं।

यह सौभाग्य की बात है कि प्रा.प.नि. के परंपरागत पक्षधरों के अलावा अन्य महिलाओं का समर्थन बढ़ रहा है जो दूसरे गर्भनिरोधकों के बुरे प्रभावों से त्रस्त हैं और जन्म नियंत्रण को लेकर ज्यादा समग्र रवैया चाहती हैं जिसमें महिला का अपने शरीर का ज्ञान और पुरुष का सहयोग प्रमुख हो। इस प्रकार के विचारों से प्रा.प.नि. की धारा में बदलाव आएगा और यह भविष्य में ज्यादा स्वीकार्य व पहुंच के दायरे में होगी।

भविष्य के क्षितिज पर

हालांकि जन–दबाव के कारण इस दिशा में थोड़ा बदलाव आया है परंतु पिछले दशकों में हुए अनुसंधान, विकास और प्रोत्साहन को देखते हुए कम–से–कम कुछ समय तक तो यही रवैया जारी रहने की संभावना है। स्वास्थ्य जोखिम के बावजूद आज अधिकतम ज़ोर हार्मोन आधारित स्त्री गर्भनिरोधकों पर है। सबसे ताजा संस्करण है इंजेक्शन योग्य गर्भनिरोधक जिसमें हार्मोन की कम मात्रा थोड़ी–थोड़ी खुराक में विघटनशील कैप्सूल से मुक्त होती रहती है, इस्ट्रोजेन–प्रोजेस्ट्रोन हार्मोनों का मिश्रण, हार्मोन छोड़नेवाला योनि छल्ला और हार्मोन संतृप्त आई.यू.डी. और ऐसी रोपणी (चिप) जिसे निकालने के लिए चीरफाड़ नहीं करना पड़ती और जो एक साल तक असरदार रहते हैं।

अन्य मोर्चों पर गर्भनिरोधी टीका है जो एक–दो साल तक असरकारी रहेगा। इसमें महिला को गर्भ हार्मोन कोरिओनिक गोनेडोट्रॉफिन के प्रति प्रतिरोधी बना दिया जाता है जिससे भ्रूण के बच्चादानी में जुड़ने से पहले ही प्रजनन प्रक्रिया रुक जाती है। इस टीके का पहला मानव परीक्षण आस्ट्रेलिया में चालू भी हो चुका है। जनसंख्या संस्थाएं बड़े जोश में हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि इंजेक्शन के समान ही यह टीका भी तीसरी दुनिया के लिए 'उपयुक्त' है। नए अंडाजनन निषेधक पर भी काम चालू है। उदाहरण के लिए, मस्तिष्क हार्मोन एल.एच.आर.एच. से मिलते–जुलते हार्मोन, जो नाक से भी सुंघाए जा सकते हैं।

बेहतर और पलटे जा सकने वाली नसबंदी तकनीक की खोज जारी है, साथ ही रासायनिक बांझकारकों की खोज भी। मैथिल सायनोएक्रिलेट नामक रसायन की बिक्री ब्रिटेन और कनाडा में एक बांझकारक के रूप में चालू है जबकि एक बार के उपयोग में यह प्रभावी नहीं पाया गया है।

गर्भनिरोधक शोध के बारे में एक ताजा लेख के अनुसार रासायनिक बांझकारक की खोज के पीछे प्रेरणा यह है कि – 'कई विकासशील देशों के परिवार नियोजन कार्यक्रमों में इसकी ज़रूरत है।' यह अनुमान लगाने के लिए बहुत कल्पनाशीलता की आवश्यकता नहीं है कि इस टेक्नोलॉजी का दुरुपयोग कैसे होगा।

गर्भनिरोधक मंच पर एक ज्यादा विवादास्पद चीज आर.यू. 486 है। प्रोफेसर एटिस–एमिल बोलियो द्वारा अविष्कृत और एक फ्रांसीसी दवा कंपनी द्वारा निर्मित आर.यू. 486 एक स्टीरॉयड रसायन है जो प्रोजेस्ट्रोन की क्रिया को रोकता है। प्रोजेस्ट्रोन वह हार्मोन है जो गर्भ को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। इसका उपयोग प्रतिमाह गर्भनिरोधक के रूप में, मासिक चक्र नियमित करने के लिए या गर्भपात के लिए किया जा सकता है। कम–से–कम दस देशों में इसके चिकित्सीय परीक्षण चल रहे हैं। अब तक असफलता दर बहुत ज्यादा है और दूरगामी सुरक्षा प्रश्नों के दायरे में हैं। फिर भी इस दवाई को अखबारों में अच्छी प्रतिक्रिया मिल रही है, जिससे गोली के प्रारंभिक दिनों की याद आती है। आर.यू. 486 के उचित उपयोग के लिए पर्याप्त डॉक्टरी मदद चाहिए परंतु डर इस बात का है कि इसका उपयोग 'घर पर गर्भपात' के लिए किया जाएगा और गड़बड़ होने पर कोई चिकित्सा सहायता उपलब्ध नहीं होगी।

चूंकि अमरीकी सरकार गर्भपात करनेवाली औषधियों पर शोध को सहायता नहीं दे सकती, इसलिए आर.यू. 486 एवं अन्य ऐसी दवाओं के लिए धन की कमी रहेगी। दवा कंपनियां भी गर्भपात विरोधी ताकतों से भय खाती हैं। इसी तरह के भय के कारण जी.डी. सर्ल कंपनी ने जापानी प्रोस्टाग्लेंडिन दवा 'प्रीग्लेंडीन' की दरख्वास्त खाद्य एवं औषधी प्रशासन (एफडीए) से वापिस ले ली। इस दवा का उपयोग ग्रीवा फैलाने के लिए या दूसरी तिमाही में गर्भपात के लिए किया जा सकता है।

इस बीच पुरुष गर्भनिरोधक अनुसंधान पीछे छूट गया है हालांकि अब इस पर पहले से ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है। यह कोई अचरज की बात नहीं है कि पुरुष गर्भनिरोधकों के मामलों में सुरक्षा पर ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के एक प्राध्यापक ने बताया कि, "हम बहुत धीरे–धीरे आगे बढ़ना चाहते हैं। स्त्री गोली बहुत जल्दबाजी में प्रयुक्त की गई और बाद में इसमें काफी गंभीर गड़बड़ियां पाई गईं।" चिकित्सीय परीक्षण के मामले में भी महिलाओं की तुलना में पुरुषों में अनिच्छा ज्यादा दिखाई दी।

पुरुषों के लिए एक गोली की उम्मीद तब धराशायी हो गई जब चीन में एक चिकित्सीय परीक्षण के दौरान गंभीर बुरे प्रभाव जैसे अस्थाई लकवा और रक्त में पोटेशियम स्तर बढ़ने

से हृदय की परेशानी पाई गई। यह गोली बिनौले के तेल से बने एक पदार्थ गोसिपाल से निर्मित थी। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने गोसिपाल शोध के अनुदान पर रोक लगा दी है पर चीन की सरकार यह कार्यक्रम चला रही है। यदि पोटेशियम के बुरे प्रभाव को हल कर लिया गया, तो चीन में गोसिपाल का बड़े पैमाने पर उत्पादन शुरू हो जाएगा। इस तथ्य को गंभीर समस्या नहीं माना जा रहा है कि इससे स्थाई नपुंसकता पैदा हो सकती है क्योंकि यह सरकार की जनसंख्या वृद्धि कम करने के प्रयासों से मेल खाता है।

ज्यादा सकारात्मक पहलू यह है कि गर्भनिरोधक के रूप में उपयोगी पौधों और जड़ी–बूटियों के उपयोग पर शोध बढ़ रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने हांगकांग, दक्षिण कोरिया, श्रीलंका और अमरीका में पौधे चुनने और परीक्षण करने के लिए केंद्र स्थापित किए हैं। इनके माध्यम से अभी तक 111 देशों में उगने वाली ऐसी 400 प्रजातियां पहचानी जा चुकी हैं जिनका उपयोग स्थानीय लोग गर्भनिरोधक के लिए करते हैं। यह धारा उत्साहजनक है क्योंकि इससे इस बात को मान्यता मिलती है कि परंपरागत विधियां आधुनिक गर्भनिरोधकों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं और सिर्फ वैज्ञानिकों के पास ही सारे जबाव नहीं हैं।

जहां एक ओर ये सब हो रहा है वहीं दूसरी ओर प्रजनन व गर्भनिरोध अनुसंधान के लिए उपलब्ध धन में वास्तविक कमी आई है। उदाहरण के लिए, सन् 1983 का व्यय सन् 1979 के व्यय का 79 प्रतिशत था। 'फैमिली प्लानिंग परस्पेक्टिव्स' के अनुसार, "इस कमी का कारण सिर्फ विश्वस्तरीय आर्थिक मंदी नहीं बल्कि विकासशील देशों में उन जनसंख्या मुद्दों के प्रति सरोकार की कमी है जिनके कारण सन् 1970 के मध्य में गर्भनिरोधक शोध को बल मिला था।"

इसकी प्रतिक्रिया में जनसंख्या प्रतिष्ठान के अंदर के लोग, दानदाताओं (विश्व स्वास्थ्य संगठन, राष्ट्र संघ फैमिली प्लानिंग एसोसिएशन, विश्व बैंक, सरकारों, प्राइवेट प्रतिष्ठानों) का एक संघ बनाने पर ज़ोर दे रहे हैं, जो गर्भनिरोधक शोध को प्रोत्साहित व संयोजित करेगा। दुर्भाग्यवश इस प्रस्ताव के पीछे वही पुराने माल्थसवादी स्वार्थ हैं। प्रस्ताव के हिमायती कहते हैं कि, "संघ की ज़रूरत विकासशील देशों की जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप विश्वस्तरीय स्वास्थ्य, आर्थिक–सामाजिक परिणामों का सामना करने के लिए है।" जब तक गर्भनिरोधक टेक्नोलॉजी को सिर्फ़ जनसंख्या समस्या के लिए एक तकनीकी यंत्र के रूप में देखा जाएगा तब तक गर्भनिरोधक अनुसंधान दिशाविहीन व दुरुपयोगी ही रहेगा। गर्भनिरोधक शोध की बहुत ज़रूरत है। नई व बेहतर कई प्रकार की जन्म नियंत्रण विधियां, जिनमें अवरोध विधियां शामिल हों, अवश्य ही प्रजनन के विकल्पों का विस्तार

करती हैं परंतु सुरक्षा, विश्वसनीयता और स्वेच्छा से गर्भनिरोध की एक व्यक्ति की ज़रूरत पहले आती है।

अंत में, गर्भनिरोधक तक पहुंच और उनका उपयोग एक सामाजिक समस्या है, न कि तकनीकी। एक आदर्श गर्भनिरोधक बनाने में बहुत समय लग सकता है या शायद कभी न बने। इस दौरान मौजूदा विधियों की स्वीकार्यता बहुत बढ़ जाएगी यदि बेहतर स्वास्थ्य सुविधा, सलाह और देखरेख मिले एवं सबसे ऊपर यदि मूल्यों में बदलाव हो।

यहां यह सवाल ही नहीं उठता कि महिलाओं के स्वास्थ्य और सुरक्षा को गर्भनिरोधक क्षमता के लिए बलिदान किया जाए या उनकी विकल्प चुनने की आजादी को जनसंख्या नियंत्रण के लिए समर्पित कर दिया जाए, जबकि ज्यादा संवेदनशील और अकलमंदी के विकल्प मौजूद हैं।

यदि दूसरी गर्भनिरोधक क्रांति होनी ही है, तो इसकी शुरूआत मूल्यों में क्रांति से होना चाहिए।■

तराशना गर्भनिरोधक तकनीक को[28]

– प्रो. बेट्सी हार्टमान

तकनीकी नवाचार उदासीन (मूल्यविहीन) नहीं होते, बल्कि उनमें उनके रचियता के मूल्य निहित होते हैं। यह कोई संयोग नहीं है कि आज बीसवीं सदी के अंत में जहां परमाणु ऊर्जा और हथियारों पर हर वर्ष अरबों डॉलर खर्च किए जा रहे हैं, वहीं दूसरी ओर प्रदूषण रहित ऊर्जा स्रोतों, टिकाऊ (सस्टेनेबल) कृषि प्रणाली, बुनियादी स्वास्थ्य व सफाई सुविधा आदि की टेक्नोलॉजी, जो लोगों की ज़िंदगी को नाटकीय रूप से बेहतर बना सकती है, के लिए बहुत ही कम धन दिया जाता है। जिन लोगों के हाथ में सत्ता की लगाम है वे अपनी इस ताकत का इस्तेमाल तकनीकी विकल्पों के चयन में भी करते हैं।

गर्भनिरोध टेक्नोलॉजी भी कोई अपवाद नहीं है। इस सदी के उत्तरार्द्ध की गर्भनिरोधक क्रांति लोगों की ज़रूरत की अपेक्षा जनसंख्या नियंत्रण, प्रतिष्ठा और मुनाफ़े के लालच से ज्यादा प्रभावित रही है। स्वास्थ्य जोखिमों के बावजूद तकनीकी रूप से परिष्कृत गर्भनिरोधकों, जैसे – गोली और इंजेक्शन आदि के विकास, उत्पादन और बढ़ावा देने में अरबों डॉलर बहाए गए जबकि निरापद और आसान 'अवरोध विधियों' की लगभग उपेक्षा की गई।

गर्भनिरोधक टेक्नोलॉजी की दिशाहीनता की शुरूआत अनुसंधान के चरण में होती है और परिणिति जनसंख्या के खिलाफ़ जंग में एक जानलेवा हथियार के रूप में। मुख्यतया महिलाएं अपनी सेहत और जान देकर इसकी कीमत चुकाती हैं।

शोध की छानबीन

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में गर्भनिरोधकों के बारे में प्रतिकूल सामाजिक मान्यताओं के कारण चिकित्सा जगत और दवा उद्योग जन्म नियंत्रण की नई विधियों के शोध और विकास से कन्नी काटते रहे। सन् 1959 से पहले 'गर्भनिरोधक शब्द का तात्पर्य होता था पिछवाड़े की किसी दुकान से लाई गई रबर की कोई चीज, न कि किसी प्रमुख दवा कंपनी की गोली।' – यह टिप्पणी प्रमुख दवा निर्माता जी.डी. सर्ल एंड कंपनी के एक प्रतिनिधि की है।

---

[28]'रिप्रोडक्टिव राईट्स एंड रांग्स : . . .' (जनवरी 1987) से साभार। मूल अंग्रेजी से अनुवाद : डॉ. सुशील जोशी।

तब गर्भनिरोधक क्रांति को चिंगारी किसने दी? काफी हद तक इसका उत्प्रेरक जनसंख्या नियंत्रण का नया शक्तिशाली दर्शन था। बढ़ती जन्मदर की समस्या को हल करने के लिए जनसंख्या घराने के सदस्य नई गर्भनिरोध विधियों के विकास के लिए दबाव डालने लगे।

सन् 1950 में 88 वर्षीय मार्गरेट सेंगर ने चंदा–उगाही हेतु एक पत्र में लिखा था : 'मैं समझती हूं कि अगले पच्चीस सालों में दुनिया और हमारी पूरी सभ्यता एक निरापद, आसान और सस्ते गर्भनिरोधक पर निर्भर करेगी जिसका उपयोग गरीबी से ग्रसित झुग्गियों एवं जंगलों में और सर्वाधिक अज्ञानी लोगों के बीच करना होगा. . .।' उन्होंने मेसाचुसेट्स के एक प्रजनन वैज्ञानिक ग्रेगरी पिन्कस के लिए एक लाख पचास हजार डॉलर का चंदा उगाहा ताकि एक 'सार्वभौमिक' गर्भनिरोधक पर शोध किया जा सके। आगे चलकर पिन्कस जी. डी. सर्ल नामक कंपनी का सलाहकार बन गया और इस कंपनी ने सन् 1960 में पहली गर्भनिरोधक गोली बेचना शुरू किया। गर्भनिरोधक क्रांति का बिगुल बज चुका था।

जी. डी. सर्ल कंपनी का मुनाफा अन्य दवा कंपनियों को गर्भनिरोधक शोध की तरफ आकर्षित करने के लिए पर्याप्त था। साठ के दशक के काफी सालों तक गर्भनिरोधक शोध के क्षेत्र में प्राइवेट कंपनियां हावी रही हैं। इसी के साथ फ़ोर्ड फ़ाउंडेशन, राकफ़ेलर फ़ाउंडेशन और जनसंख्या परिषद् ने गर्भनिरोधक शोध के लिए अनुदान की राशि बढ़ा दी गई और अमरीकी सरकार से भी ऐसा ही करने का अनुरोध किया। इसके लिए शुरूआत में सबसे ज्यादा ज़ोर भारत ने दिया जहां पहला सरकार–प्रायोजित परिवार नियोजन कार्यक्रम फ़ोर्ड फ़ाउंडेशन के जबरदस्त समर्थन से चल रहा था। इस कार्यक्रम की असफलता के लिए अमरीकी अधिकारियों ने टेक्नोलॉजी की कमी को दोष दिया। यू.एस. ए.ई.डी.[29] के एक अधिकारी का तो यहां तक कहना था कि जन्म नियंत्रण टेक्नोलॉजी के विकास के लिए उसी तरह के कार्यक्रम की ज़रूरत है जैसा 'सघन और संयोजित अनुसंधान व विकास कार्यक्रम नियंत्रित नाभिकीय विस्फोट की समस्या हल करने के लिए चलाया गया था।'

साठ के दशक के अंत तक 'एड' (अंतर्राष्ट्रीय विकास अनुदान) और राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान के माध्यम से, अमरीका गर्भनिरोधक शोध का प्रमुख अनुदानदाता बन चुका था। अगले दशक में अमरीका ने पूंजी निवेश की दृष्टि से दवा कंपनियों को भी पीछे छोड़ दिया। सन् 1983 में बुनियादी प्रजनन शोध, गर्भनिरोधक शोध और विकास एवं मौजूदा

[29]अंतर्राष्ट्रीय विकास के लिए अमरीकी मदद।

गर्भनिरोधकों की दूरगामी सुरक्षा के मूल्यांकन पर पूरी दुनिया में 16 करोड़ डॉलर खर्च किए गए। अमरीका ने इसमें से 59 प्रतिशत प्रदान किए। उसके अलावा अमरीकी दवा उद्योगों ने 21 प्रतिशत और अमरीकी प्रतिष्ठानों ने 5 प्रतिशत, इस प्रकार से कुल अमरीकी योगदान 85 प्रतिशत रहा।

अमरीकी सरकार और प्रतिष्ठानों के गर्भनिरोधक शोध व विकास अनुदान अब निम्नलिखित छह संस्थानों के ज़रिए वितरित होते हैं –

1. यू.एस. नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ चाइल्ड हेल्थ एंड ह्यूमन डेवलपमेंट का सेंटर फॉर पॉप्यूलेशन रिसर्च (संयुक्त राज्य राष्ट्रीय बाल स्वास्थ्य एवं मानव विकास संस्थान के तहत जनसंख्या अनुसंधान केंद्र)।
2. नार्थ केरोलिना में स्थापित फ़ैमिली हेल्थ इंटरनेशनल का इंटरनेशनल फ़र्टिलिटी रिसर्च प्रोग्राम (अंतर्राष्ट्रीय उर्वरता अनुसंधान कार्यक्रम)।
3. नार्थ वेस्टर्न विश्वविद्यालय में प्रोग्राम फॉर एप्लाइड रिसर्च ऑन फ़र्टिलिटी रेग्यूलेशन (उर्वरता नियमन पर अमली शोध)।
4. जनसंख्या परिषद् की अंतर्राष्ट्रीय गर्भनिरोधक शोध समिति।
5. विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू एच ओ) का मानव विकास में शोध, विकास और प्रशिक्षण का विशेष कार्यक्रम
6. सीयेटल, वाशिंगटन में स्थित गर्भनिरोधक टेक्नोलॉजी की पेशकश और अनुकूलन (एडॉप्टेशन) के लिए कार्यक्रम।

गर्भनिरोधक शोध में आज सार्वजनिक संस्थाओं का योगदान प्राइवेट उद्योगों से ज्यादा होने के कई कारण हैं। नए गर्भनिरोधकों के विकास और परीक्षण की लागत बहुत ज्यादा होती है : महिलाओं के लिए बिल्कुल नया गर्भनिरोधक तैयार करने में अनुमानित 17 वर्ष और लगभग 5 करोड़ डॉलर का खर्च बैठता है।

कंपनियों की एक और भी चिंता है, उत्पादों की देनदारी (लाइबिलिटी) के भुगतान का जोखिम। देनदारी के डर से दो अमरीकी कंपनियां, अपज़ोन और जी.डी. सर्ल, अपने प्रजनन अनुसंधान कार्यक्रम पहले ही बंद की चुकी हैं और अब मात्र एक अमरीकी कंपनी, आर्थो फ़ार्मास्युटिकल्स ही इस क्षेत्र में विस्तृत शोध कर रही है।

सार्वजनिक क्षेत्र के गर्भनिरोधक शोधकर्ताओं को भी लाइबिलिटी का बीमा करवाने में दिक्कत हो रही है और इसलिए कई नए गर्भनिरोधक जैसे – शुक्राणु नाशक या हार्मोन रोपणी के परीक्षणों में विलंब हो रहा है। लाइबिलिटी की समस्या सिर्फ गर्भनिरोध शोध

तक ही सीमित नहीं है अपितु पूरे चिकित्सा प्रतिष्ठान पर मंडरा रही है। इसका हल इस बात पर निर्भर करता है कि लोगों को चिकित्सा की गड़बड़ियों, हानिकारक दवाओं और खतरनाक गर्भनिरोधकों जैसे – (डाल्कन शील्ड का आई.यू.डी.) से होने वाले नुकसान के खिलाफ़ न्याय पाने का सामर्थ्य देने के साथ–साथ लाइबिलिटी प्रणाली में आमूल परिवर्तन किए जाएं ताकि बीमे की किश्तों और भुगतान को व्यावहारिक सीमा में रखा जा सके।

इन सब रुकावटों के बावजूद तथ्य यह है कि गर्भनिरोधक बड़े मुनाफ़े की चीज है। अकेले अमरीका की खुदरा गर्भनिरोधक बिक्री एक अरब डॉलर आंकी गई है। विश्वव्यापी आंकड़ा इसके दुगुने से ज्यादा होगा। इसके अलावा खाने वाले और इंजेक्शन वाले गर्भनिरोधक सारी दवाइयों से ज्यादा मुनाफ़ा देते हैं।

गर्भनिरोधक शोध में सार्वजनिक क्षेत्र के हावी होने का सबसे बड़ा कारण यह है कि कंपनियों और जनसंख्या प्रतिष्ठान के परस्पर नज़दीकी संबंध हैं।

साझा स्वार्थ

कई अन्य वैज्ञानिक क्षेत्रों की तरह गर्भनिरोधक के क्षेत्र में भी सरकारी और निजी शोध में अंतर्विरोध नहीं है। अमरीका में कानूनन इस बात की अनुमति है कि सरकार–प्रायोजित गर्भनिरोधक शोध को निजी कंपनियां अपनी उत्पाद विकास गतिविधियों से जोड़ सकती हैं। इसके अलावा कुछ मामलों में निजी उद्योग द्वारा निर्मित दवा के परीक्षण के लिए सार्वजनिक एजेंसियां अनुदान भी देती हैं। इस प्रकार से सार्वजनिक शोध के खज़ाने से दवा कंपनियों को सीधा लाभ मिलता है और कई कंपनियां तो अमरीकी संसद की जनसंख्या लॉबी की प्रबल समर्थक हैं। दूसरी ओर सार्वजनिक शोध संस्थाओं को गर्भनिरोधकों के उत्पादन के लिए कंपनियों की आवश्यकता है क्योंकि उनकी अपनी तो कोई औद्योगिक क्षमता है ही नहीं।

कंपनियों और जनसंख्या प्रतिष्ठान के साझा स्वार्थ वैसे और भी बहुत गहरे हैं। स्वास्थ्य शोधकर्ता कैरी लाचीन (1985) बताते हैं कि दोनों की रुचि विश्व स्तर पर गर्भनिरोधकों का वितरण बढ़ाने और तीसरी दुनिया में नए उपभोक्ताओं एवं स्वीकारकर्ताओं तक पहुंचने में है।

जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम कई सारी कंपनियों के लिए महत्वपूर्ण बाज़ार के प्रतीक हैं। उदाहरण के लिए 'एड' ने सत्तर के दशक के मध्य के बाद से प्रतिवर्ष करीब डेढ़ करोड़ डॉलर जन्म नियंत्रण गोली पर खर्च किए हैं। सन् 1972 से 1979 के बीच यह सारा पैसा एक ही कंपनी को मिला – सिन्टेक्स कॉरपोरेशन। कई बार तो यह सिन्टेक्स द्वारा खाने

वाली गोली की कुल बिक्री का 25 से 30 प्रतिशत था। इसी प्रकार सन् 1982 से 1984 तक 'एड' ने सारे आई.यू.डी. (कीमत 67 लाख डॉलर) फ़िनिशिंग एंटरप्राइज़ेज से खरीदे। उद्योगों के एक प्रतिनिधि के अनुसार यदि 'एड' का ठेका न मिले, तो एंसेल इंडस्ट्रीज का धंधा ठप्प हो जाएगा।

यद्यपि सारी कंपनियां इतनी बुरी तरह 'एड' पर आश्रित नहीं हैं परंतु जनसंख्या कार्यक्रमों के माध्यम से उनके गर्भनिरोधक ऐसे अनछुए बाज़ारों तक पहुंचते हैं जहां ये कंपनियां फैलना चाहती हैं। दरअसल ये एजेंसियां तीसरी दुनिया में औद्योगिक उत्पादनों के विज्ञापन, प्रोत्साहन और वितरण के महत्वपूर्ण काम को पूरा करती हैं।

यह बात कांट्रासेप्टिव सोशल मार्केटिंग (सामुदायिक गर्भनिरोधक बिक्री) कार्यक्रमों के लिए खासतौर पर सही है। इन कार्यक्रमों में जन्म नियंत्रण गोली, कंडोम और कभी–कभी शुक्राणु नाशक रियायती दरों पर मौजूदा विपणन प्रणाली, आमतौर पर गांव की छोटी सी दुकान के माध्यम से बेचे जाते हैं। एक संगठन के अनुसार, "इनका ज़ोरदार विज्ञापन उन्हीं तकनीकों से किया जाता है जो साबुन, शीतल पेय और टूथपेस्ट बेचने के लिए दुनिया के हर कोने में आजमाई जा चुकी हैं।" 'एड' और इंटरनेशनल प्लांड पैरेंटहुड फेडरेशन (आईपीपीएफ) इन योजनाओं के प्रमुख समर्थक हैं। ये योजनाएं सन् 1980 से सत्ताईस से ज्यादा देशों में चल रही हैं।

कैरी लाचीन (1985) के अनुसार – सामुदायिक गर्भनिरोधक बिक्री (सा.ग.बि.) कार्यक्रमों ने जनसंख्या सहायता कार्यक्रमों और गर्भनिरोधक उद्योग के बीच की दूरी खत्म कर दी है – और अन्य जनसंख्या कार्यक्रमों की अपेक्षा उद्योगों की ज़रूरत ज्यादा पूर्णता से एवं प्रत्यक्ष रूप से पूरी की है। सामुदायिक गर्भनिरोधक बिक्री योजनाओं में दूरदराज के ग्रामीण इलाकों में बाज़ार अनुसंधान, विज्ञापन और वितरण की लागत सोख ली जाती है। इनके द्वारा गरीब लोगों को, रियायती दर पर ही सही, गर्भनिरोधक खरीदने का अभ्यस्त बनाया जाता है और आधुनिक गर्भनिरोधक विधियों के बारे में एक आम जागरूकता पैदा की जाती है। संक्षेप में, उद्योगों को तीसरी दुनिया के हजारों गावों के बाज़ार तक मुफ़्त में पहुंचने की सुविधा मिल जाती है।

अब 'एड' के अधिकारी सामुदायिक गर्भनिरोधक को एक कदम और आगे ले जाने की बात कर रहे हैं। वे चाहते हैं कि जनसंख्या संगठन इस बात पर शोध करें कि गर्भनिरोधक बिक्री के लिए गैर–रियायती बाज़ार कौन–से हो सकते हैं और यह जानकारी निजी उद्योगों को सौंप दें ताकि कंपनियां तीसरी दुनिया के फायदेमंद बाज़ार में खुद सेंध लगाएं।

जनसंख्या प्रतिष्ठान के साथ फायदेमंद सांठगांठ बनाए रखने के लिए उद्योग न सिर्फ (अमरीकी) संसद में लामबंदी (लॉबिंग) करते हैं बल्कि जनसंख्या नियंत्रण संस्थानों को अनुदान भी देते हैं। कैरी लाचीन (1985) के अनुसार सिन्टेक्स कॉरपोरेशन हर वर्ष जनसंख्या संकट समिति को हजारों डॉलर देता है और निदेशकों की मिलीभगत से यह सांठगांठ और भी मजबूत हो जाती है।

उदाहरण के लिए फ़ैमिली हेल्थ इंटरनेशनल को लें, जिसको जनसंख्या शोध के लिए 'एड' से भारी अनुदान मिलता है। डीपो प्रोवेरा की निर्माता अपजॉन कंपनी के अध्यक्ष डॉ. विलियम एन. ह्यूबर्ड फ़ैमिली हेल्थ इंटरनेशनल के निदेशक मंडल के सदस्य हैं। सन् 1983 में फ़ैमिली हेल्थ इंटरनेशनल के अध्यक्ष डॉ. माल्कोम पॉट्स ने अमरीकी बोर्ड ऑफ़ इंक्वायरीज़ के सामने डीपो प्रोवेरा के अनुमोदन के लिए गवाही दी।

अतः गर्भनिरोधक उद्योग और जनसंख्या प्रतिष्ठान के स्वार्थ कई तरह से मेल खाते हैं। कुछ लोगों का तर्क होगा कि यदि इससे नए और बेहतर गर्भनिरोधकों का विकास और विश्वव्यापी वितरण होता है तो ऐसे मिलन में अपने–आप में कुछ गड़बड़ नहीं है। इस तर्क को स्वीकार करने से पहले यह देखना ज़रूरी होगा कि इन संस्थानों ने किस तरह से गर्भनिरोधक टेक्नोलॉजी की दिशा को मोड़ने में मदद दी है।

गर्भनिरोधक के बारे में पूर्वाग्रह

वर्तमान गर्भनिरोधक शोध में तीन तरह के बुनियादी पूर्वाग्रह हैं। पहला, कि शोध का फ़ोकस ज्यादातर स्त्री प्रजनन तंत्र पर रहा है। उदाहरण के लिए, सन् 1978 में सार्वजनिक क्षेत्र के व्यय का 78 प्रतिशत महिलाओं के लिए गर्भनिरोधक के विकास में लगाया गया जबकि इसके विपरीत पुरुष गर्भनिरोधक पर मात्र 7 प्रतिशत।

जनसंख्या परिषद् के फ़ॉरेस्ट ग्रीनस्लेड का मत है कि, गर्भनिरोधक शोध का फ़ोकस स्त्री प्रजनन तंत्र सिर्फ इसलिए नहीं है कि महिलाएं जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रमों की मुख्य टारगेट (लक्ष्य) हैं अपितु ऐसा सामाजिक लिंगभेदवादी (जेंडर) नज़रिए के कारण भी है। गर्भनिरोधक शोध के क्षेत्र में ऊपर से नीचे तक पुरुष हावी हैं और इनमें से कई का मत है कि प्रजनन सिर्फ महिलाओं का सरोकार है। पुरुष प्रजनन शोध की पहल करने वाले आर.जे. एरिक्सन की शिकायत है कि –

> "पुरुष गर्भनिरोधक शोध का अतीत बहुत निराशाजनक है। जीव वैज्ञानिक शोध में यह लगभग एक नाज़ायज चीज है। अधिकांश समय, सर्वोत्तम शोधकर्ता इससे कतराते हैं और जो इस क्षेत्र में काम करते हैं उन्हें अजीब नज़रों से देखा जाता है।"

इसमें धीरे–धीरे परिवर्तन आ रहा है। उदाहरण के लिए सन् 1980 से 1983 की अवधि में गर्भनिरोधक शोध व विकास के कुल खर्च में से 12 प्रतिशत पुरुष विधियों के लिए खर्च किया गया। परंतु जनसंख्या परिषद् जैसे संगठन चाहे अब पुरुष प्रजनन शोध पर ज्यादा पैसा लगा रहे हैं पर इस क्षेत्र में काम कर रहे लोगों का कहना है कि पुरुष गर्भनिरोधकों के विकास के लिए आवश्यक ज्ञान का आधार खड़ा करने में ही कम से कम पंद्रह–बीस साल लग जाएंगे।

दूसरा पूर्वाग्रह रहा है जन्म नियंत्रण के तंत्रगत (सिस्टिमेटिक) और शल्य क्रियात्मक (चीरफाड़) तरीकों पर जोर का, जबकि सुरक्षित अवरोध विधियों की अवहेलना की गई। सन् 1978 में गर्भनिरोधक शोध व विकास के कुल खर्च का 70 प्रतिशत हिस्सा हार्मोन संबंधी, रोग प्रतिरोधक वैज्ञानिक और चीरफाड़ विधियों पर लगाया गया जबकि डायफ्राम और कंडोम जैसी अवरोध विधियों पर मात्र 2.2 प्रतिशत।

आज उपभोक्ता व नारीवादी दबाव के कारण निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में इनके लिए उपलब्ध संसाधनों में वृद्धि हो रही है। सन् 1980–83 की अवधि में इन पर गर्भनिरोधक शोध एवं विकास के खर्च का औसतन 5 प्रतिशत लगाया गया। इसमें ज्यादा जोर स्त्री अवरोध विधियों पर है, पुरुष कंडोम लगभग पूरी तरह उपेक्षित है।

स्त्री हार्मोन संबंधी विधियों पर खासतौर से अत्यधिक पैसा लगाया है – सन् 1980–83 की अवधि में यह कुल खर्च का लगभग 30 प्रतिशत बैठता है। जनसंख्या प्रतिष्ठान के कई सदस्य अभी भी इन विधियों पर आसक्त हैं और एक ऐसे चमत्कारिक गर्भनिरोधक की खोज कर रहे हैं, जिससे दुनिया की जनसंख्या समस्या हल हो सके। जैसाकि हम आगे देखेंगे, प्राथमिकता दीर्घावधि पद्धति की है जिसमें उपयोगकर्ता की पहल की ज़रूरत कम हो और प्रदानकर्ता और प्राप्तकर्ता के बीच संपर्क भी कम हो ताकि गर्भ ठहरे जाने का खतरा न रहे और सलाह–मशविरे व अन्य सुविधाओं की ज़रूरत ही न रहे।

दवा कंपनियों ने हार्मोन आधारित विधियों पर सिर्फ इसलिए ध्यान केंद्रित नहीं किया चूंकि ये ज्यादा मुनाफ़ेवाली हैं अपितु इसलिए भी कि सार्वजनिक धन का बहाव भी इसी दिशा में है। वे अपने नई चिकित्सा शोधकर्ता तंत्रगत विधियों की तरफ इसलिए आकृष्ट हुए हैं क्योंकि इन्हीं की मान्यता, प्रतिष्ठा और लाभदायक ठेके मिलने की संभावना ज्यादा है।

तीसरा पूर्वाग्रह, जो कि उपरोक्त दो से जुड़ा है, कि गर्भनिरोध की क्षमता के प्रति चिंता ज्यादा है बजाय सुरक्षा के।

सुरक्षा का सवाल : पहला या अंतिम?

सन् 1965 से अब तक प्रजनन अनुसंधान और गर्भनिरोधक विकास के कुल खर्चे में से 10 प्रतिशत से भी कम सुरक्षा की ओर लगाया गया है। सुरक्षा के प्रति यह उपेक्षा भाव ही गर्भनिरोधक दुरुपयोग के पीछे सबसे महत्वपूर्ण कारक है।

सुरक्षा व्यय औद्योगिक देशों में ही सिमटा रहता है। वहां वित्तीय संसाधन ज्यादा हैं, नए गर्भनिरोधकों का परीक्षण करने के लिए प्रशिक्षित लोग भी ज्यादा हैं और वहां संचार माध्यम एवं उपभोक्ता व महिला समूह पद्धति के नियमन के लिए दबाव बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। अमरीका में खाद्य व औषधि प्रशासन (एफडीए) दवा उद्योगों पर निगरानी के लिए सरकार की मुख्य संस्था है। चूंकि तीसरी दुनिया (व कुछ अन्य देशों) की सरकारें अपने दिशा–निर्देशक सिद्धांत बनाने के लिए खाद्य व औषधि प्रशासन के निर्णयों पर बुरी तरह निर्भर रहती हैं इसलिए इसका प्रभाव अमरीका के बाहर तक होता है।

गर्भनिरोधकों के दुरुपयोग के खिलाफ़ उपभोक्ताओं का बचाव करने में खाद्य व औषधि प्रशासन आखिर कितना कारगर है? नए गर्भनिरोधक को खाद्य व औषधि प्रशासन की स्वीकृति मिलने में आमतौर पर साढ़े आठ साल लगते हैं। गर्भनिरोधकों की जांच अन्य दवाओं की अपेक्षा ज्यादा कठोर होती हैं। इसका कारण यह है कि गर्भनिरोधकों का उपयोग स्वस्थ व्यक्ति तीस वर्ष तक की अवधि के लिए करेंगे। हार्मोन आधारित गर्भनिरोधकों के मामले में खाद्य व औषधि प्रशासन दवा कंपनियों से मांग करता है कि छोटी अवधि और दीर्घावधि पशु एवं मानव परीक्षण किए जाएं।

हालांकि ऊपर से ये नियम कठोर लगते हैं परंतु अनुभव से कई बार कुछ और साबित होता है। उद्योगों का दबाव कई बार खाद्य व औषधि प्रशासन की दृढ़ता को कमज़ोर कर देता है। खाद्य व औषधि प्रशासन के अधिकारी कई बार सरकारी नौकरियां छोड़कर निजी उद्योगों में शानदार नौकरियां ले लेते हैं जिससे खाद्य व औषधि प्रशासन में दवा कंपनियों के संपर्क बरकरार रहते हैं। सन् 1974 में खाद्य एवं औषधि प्रशासन के चौदह कार्यकर्ताओं ने संस्था पर अभियोग लगाया था कि उद्योगों के दबाव के कारण उन्हें अपनी जगह से हटाया गया, जहां वे दवाओं को दी जानेवाली स्वीकृति रोके हुए थे या फिर चेतावनी के लेबल तैयार कर रहे थे।

यदि खाद्य व औषधि प्रशासन उद्योगों के दबाव के आगे न भी झुके तो भी कंपनियां हमेशा नियमों के अनुसार नहीं चलतीं। उदाहरण के लिए, जी.डी. सर्ल पर हुई एक जांच

से पता चला कि इस कंपनी ने लगातार दवा सुरक्षा परीक्षण के झूठे परिणाम पेश किए। यह कंपनी इस हद तक गई कि गर्भनिरोधक गोली 'ओव्यूलेन' की जांच में एक परीक्षणवाले कुत्ते का ट्यूमर चुपचाप निकाल दिया। इस जांच के प्रकाश में खाद्य व औषधि प्रशासन आयुक्त ने कबूल किया कि इससे सारे दवा परीक्षणों की विश्वसनीयता पर संदेह पैदा होता है।

फिर भी, तीसरी दुनिया और यूरोप के कई देशों में ऐसी किसी प्रक्रिया के न होने की बनिस्बत खाद्य व औषधि प्रशासन संभावित खतरनाक गर्भनिरोधकों के खिलाफ़ बचाव का एक महत्वपूर्ण तरीका है। सैद्धांतिक रूप से यह बचाव विदेशों तक भी एक कानून के जरिए पहुंचाया गया है जिसके तहत जो दवाएं अमरीका में बिक्री के लिए स्वीकृत नहीं हैं उनके निर्यात पर भी प्रतिबंध है। दवा कंपनियों ने इस कानून से बचने का यह रास्ता निकाल लिया है कि वे अपनी किसी विदेशी सहयोगी कंपनी से उत्पादन करवाकर निर्यात करते हैं।

अमरीकी संसद पर इस बात के लिए काफी दबाव रहा है कि मौजूदा कानूनों में संशोधन करे ताकि अमरीकी कंपनियां नई दवाओं को बगैर खाद्य व औषधि प्रशासन स्वीकृति के भी निर्यात कर सकें बशर्ते कि ये दवाएं न्यूनतम सुरक्षा मापदंड पर खरी उतरें और आयात करने वाले देश के मापदंडों से मेल खाती हों। सन् 1986 के आखिर में संसद ने एक ऐसा कानून पारित कर दिया है जिसके तहत (अधिकांश पश्चिमी यूरोप के) 21 देशों को इस तरह से निर्यात करना संभव होगा। 'नियमन राहत' की अपनी नीति के तहत् रेगन प्रशासन खाद्य व औषधि प्रशासन की कुछ जटिल दवा स्वीकृति प्रक्रियाओं को आसान बनाने की बात कर रहा है।

गर्भनिरोधक निर्माताओं द्वारा अमरीकी नियमों को धता बताने (पीछे छोड़ने) की आतुरता के पीछे एक बुनियादी आर्थिक गणित है – जहां औद्योगिक देशों में जनसंख्या वृद्धि की शून्य दर के कारण गर्भनिरोधकों का बाज़ार पूरा हो गया है, वहीं दूसरी ओर तीसरी दुनिया एक बड़ा, फैलता हुआ बाज़ार है। कंपनियां अब अपने प्रारंभिक शोध को भी विदेशों में स्थानांतरित कर रही हैं जहां कायदे–कानून इतने कठोर नहीं हैं।

दरअसल, गर्भनिरोधक शोध के धंधे में तीसरी दुनिया लंबे समय से मानव–परीक्षण की एक महत्वपूर्ण प्रयोगशाला रही है। सन् 1980–83 के बीच गर्भनिरोधक शोध व विकास और सुरक्षा मूल्यांकन के 20 प्रतिशत प्रोजेक्ट तीसरी दुनिया में स्थापित किए गए हैं। इनमें भारत, चीन, चिली, मेक्सिको और ब्राजील प्रमुख स्थल हैं। दवा के परीक्षणों को तीसरी दुनिया में स्थानांतरित करके दवा कंपनियां और शोध संस्थाएं पश्चिमी नियमों से

बच निकलते हैं। इसके अलावा वैसे भी तीसरी दुनिया के नागरिक ही इन नए गर्भनिरोधकों का प्राथमिक लक्ष्य हैं।

पश्चिमी देशों में बढ़ते उपभोक्ता व महिला आंदोलनों के कारण गर्भनिरोधकों के प्रति आम लोगों का संदेह बढ़ा है और इसके साथ दायित्व–संबंधी[30] अदालती मामलों में कई बार कंपनियों को लाखों डॉलर चुकाने पड़े हैं। तीसरी दुनिया के अधिकांश प्रयोगात्मक नागरिकों के पास ऐसी जानकारी नहीं होती और न ही अदालत तक पहुंच। उनकी 'जानकारी–आधारित मंजूरी' – अर्थात् सारे संभावित खतरों को जानते हुए दवा का परीक्षण करवाने की मंजूरी – आसानी से एक नाटक बन जाती है क्योंकि गरीबी और स्वास्थ्य सेवा के अभाव के संदर्भ में स्वास्थ्य कार्यकर्ता का इतना उपकार कृतज्ञता से स्वीकारा जाता है।

इसके अलावा दवा परीक्षणों के कायदों में बहुत कमियां हैं। उदाहरण के लिए, जनसंख्या परिषद् की गर्भनिरोधक शोध शाखा द्वारा बनाए गए एक हार्मोन आच्छादित योनि छल्ले का परीक्षण डोमिकिन गणतंत्र और ब्राज़ील की गरीब आबादी पर किया गया। इस अध्ययन की पूर्व मान्यता यह थी –

> "गर्भनिरोधक योनि छल्ला उतना ही कारगर और सुरक्षित गर्भनिरोध विधि है जितनी कि गोली . . .इसका उपयोग स्वास्थ्य तंत्र में **बगैर प्रत्यक्ष चिकित्सा देखरेख के** किया जा सकता है *(बोल्ड हमने किया है)*।"

अध्ययन के दौरान उपयोगकर्ताओं को संभावित हानि के बारे में नहीं बताया गया क्योंकि इससे 'मूल परिकल्पना' नाकाम हो जाएगी। यह इसके बावजूद है कि इन छल्लों के अतिरिक्त योनि स्त्राव समेत कई चिंताजनक दुष्प्रभाव हुए हैं। योनि और ग्रीवा पर इनके दीर्घावधि प्रभाव अभी अज्ञात हैं।

जो गर्भनिरोधक पश्चिम में अस्वीकृत हैं, उन्हें भी तीसरी दुनिया में बहुत ढीले–ढाले मानकों के आधार पर बेचा जाता है। हर दवा के साथ दी जाने वाली बुरे प्रभावों व सावधानियों की सूची अमरीका में कहीं ज्यादा विस्तृत होती है बजाय लातिनी अमरीका के।

जी.डी. सर्ल के ओरल (मुंह से लिए जाने वाले) गर्भनिरोधक 'ओव्यूलेन' का ही मामला लें। संयुक्त राज्य अमरीका में चेतावनी की सूची में 'खून का थक्का जमना, यकृत (लीवर) पर

[30]किसी उत्पाद से होने वाली नुकसान–संबंधी जवाबदेही।

प्रभाव, असामान्य योनि रक्तस्राव, मिर्गी, सिरदर्द (माइग्रेन), दमा और हृदय की दिक्कतें होने' को शामिल किया गया था। ब्राजील और अर्जेंटीना में सिर्फ खून का थक्का जमना बताया गया था। अमरीका में प्रतिकूल प्रतिक्रिया के अंतर्गत "मितली, बाल झड़ना, बेचैनी, पीलिया, उच्च रक्त दबाव, वजन में परिवर्तन, सिरदर्द" प्रकाशित किए गए थे जबकि ब्राज़ील और अर्जेंटीना में कुछ नहीं।

तीसरी दुनिया में स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को गर्भनिरोधक बगैर बुरे प्रभाव की सूचना के दे दिए जाते हैं। जिम्बावे में एक डॉक्टर ने बताया कि महिलाओं को मिलने वाली गोली के पैकेट पर अवयवों (मिश्रित पदार्थों) की सूची तक नहीं होती।

बॉक्स 5

भारत में जानकारी–आधारित मंजूरी

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् (आई.सी.एम.आर.), जो तीसरी दुनिया का सबसे बड़ा गर्भनिरोधक शोध कार्यक्रम चलाती है, फिलहाल गरीब महिलाओं पर इंजेक्शन–योग्य गर्भनिरोधक नेट–एन के प्रभाव का राष्ट्रव्यापी अध्ययन प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों के माध्यम से कर रही है। ब्रिटिश चिकित्सा पत्रिका 'दी लेन्सेट' ने रिपोर्ट दी है कि हैदराबाद के पास पटनचेरू में महिलाओं को इस दवाई के संभावित हानिकारक प्रभावों के बारे में जानकारी नहीं दी गई। 'बताया जाता है कि पटनचेरू में परीक्षण के लिए स्वीकारकर्ताओं की भर्ती करने के लिए नियुक्त पैरामेडिकल कार्यकर्ताओं का कहना है कि यदि वे महिलाओं को बता दें कि यह एक शोध कार्यक्रम का हिस्सा है तो कोई नहीं आएगी। जो महिलाएं शिविर' में आईं उन्हें बस इतना कहा गया था, 'यदि तुम यह इंजेक्शन लोगी, तो गर्भ नहीं ठहरेगा।'

बताया जाता है कि 'कुछ सरकारी डॉक्टरों ने इस परीक्षण की नैतिकता पर सवाल खड़े किए हैं पर वे भी जनसंख्या नियंत्रण का टारगेट पूरा करने के दबाव में खुलकर नहीं बोले।'

सौभाग्य से 'स्त्री शक्ति संगठना' नामक एक स्थानीय महिला समूह ने इस परीक्षण में जानकारी–आधारित मंजूरी के अभाव को चुनौती दी। उन्होंने तख्तियों वगैरह से इस दवाई के खतरों की जानकारी देते हुए स्थानीय प्रशासक से इस परीक्षण को बंद करने की मांग की। वह मान गया कि यह समूह परीक्षण में भाग ले रही महिलाओं के सामने अपने मत रखें। 30 ग्रामीण महिलाएं मीटिंग में आईं और शोधकर्ताओं व महिला समूह के सदस्यों की बातें सुनने के बाद 25 शिविर छोड़कर चली गईं। परेशान होकर सरकारी प्रशासक ने 'स्त्री शक्ति संगठना' की महिलाओं से कहा कि यदि वे नेट–एन पर आपत्ति उठा रही हैं, तो उन्हें सरकारी नसबंदी समर्थन अभियान का समर्थन करना चाहिए।

ऐसे और तरीकों के मूल में दोहरे मापदंड हैं – पश्चिमी दुनिया के लिए सुरक्षा नियम हैं पर तीसरी दुनिया के लिए नहीं। जनसंख्या प्रतिष्ठान के कई सदस्य इन दोहरे मापदंडों को यह कहकर उचित बताते हैं कि यह तो तुलनात्मक जोखिम का सवाल है। वे गर्भनिरोधक से संभावित मृत्यु के खतरे की तुलना गर्भावस्था में मृत्यु के खतरे से करते हैं। तीसरी दुनिया में मातृत्व संबंधी मृत्यु दर 500 प्रति एक लाख जीवित जन्म[31] है वहां गर्भनिरोधक का जोखिम बहुत कम प्रतीत होता है। यदि इसकी तुलना अमरीका या ब्रिटेन से करें जहां मातृत्व से जुड़ी मृत्यु दर मात्र 10 प्रति एक लाख जीवित जन्म है।

इस तर्क के आधार पर 'पॉप्यूलेशन रिपोर्ट' नामक पत्रिका का दावा है कि 'विकासशील देशों में किसी भी विधि से परिवार नियोजन, गर्भधारण की तुलना में ज्यादा निरापद है।' दरअसल, तीसरी दुनिया में गर्भनिरोधक के अंधाधुंध उपयोग के आलोचकों के खिलाफ़ यह सबसे आम दलील है। परंतु मातृत्व संबंधी मृत्यु और गर्भनिरोधक जोखिम के बीच की इस तुलना की वैधता क्या है?

तर्कों को ध्यान से देखने पर निम्नांकित गड़बड़ियां साफ नज़र आती हैं –

- गर्भनिरोधक के जोखिम को उचित ठहराने के लिए मातृत्व संबंधी मृत्यु की ऊंची दर का बहाना करने का अर्थ है कि गरीबों को उनकी गरीबी के लिए दंडित करना। ऊंची मातृत्व संबंधी मृत्यु दर के कारण हैं – अपर्याप्त पोषण, बेकार स्वास्थ्य सुविधाएं और गरीबी से जुड़ी अन्य बातें। पहले इन समस्याओं को हल करने पर न केवल खतरे का समीकरण बदल जाएगा बल्कि एक बेहतर परिवार नियोजन कार्यक्रम के लिए बुनियाद भी तैयार होगी।
- कई गर्भनिरोधकों, जैसे गोली के दूरगामी खतरे कम–से–कम अगले दो दशकों तक अज्ञात रहेंगे। ऐसे में जोखिम को ठीक–ठीक परिभाषित कैसे किया जा सकता है? इसके अलावा, यदि किसी गर्भनिरोधक से कैंसर का खतरा बढ़ता है तो उस महिला की ज़िंदगी छोटी हो जाएगी पर मृत्यु का कारण गर्भनिरोधक को नहीं माना जाएगा।
- गर्भनिरोधक जोखिम का मापन अक्सर औद्योगिक देशों के आंकड़ों पर आधारित होता है। तीसरी दुनिया की महिलाएं कम शारीरिक वजन, स्वच्छता की कमी, खराब स्वास्थ्य सुविधा आदि के कारण वास्तव में ज्यादा खतरे का सामना करती

[31]एक लाख जीवित जन्म देने वाली गर्भवती महिलाओं में से मरने वाली महिलाओं की संख्या।

हैं। इसके अलावा गर्भनिरोधक उपयोग से पहले और बाद में समुचित जांच की भी कोई व्यवस्था नहीं होती।

- जोखिम का मापन सिर्फ महिलाओं पर ही क्यों केंद्रित रहे, जबकि पुरुष गर्भनिरोधक जैसे – कंडोम या पुरुष नसबंदी उपलब्ध हैं? जनसंख्या परिषद् की ज्यूडिथ ब्रूस और एस. ब्रूस शीरर बताती हैं, "इस बात पर ध्यान देने की कोई कोशिश नहीं की गई है कि जहां एक ओर गर्भधारण का खतरा लिंग विशेष से संबंधित है वहीं दूसरी ओर गर्भनिरोध के खतरे दोनों में से किसी एक के द्वारा उठाए जा सकते हैं।"
- कई गर्भनिरोधकों के मौत के अलावा भी अन्य हानिकारक प्रभाव होते हैं जिनसे महिला की ज़िंदगी पर गहरा प्रभाव पड़ सकता है। उदाहरण के लिए, आई.यू.डी. का एक खतरा यह है कि महिला अपनी प्रजनन क्षमता खो सकती है। यह महिलाओं को पूरी तरह अस्वीकार्य होगा, भले ही अनचाहे गर्भ का कितना भी खतरा क्यों न हो।
- जचकी के दौरान मौत और गर्भनिरोधक से मौत के खतरे एक ही श्रेणी में नहीं रखे जा सकते। एक महिला जचकी के फ़ौरी खतरों को उठाने के लिए तैयार भी हो सकती है पर गर्भनिरोधकों के दीर्घावधि खतरों के प्रति अलग ढंग से सोचेगी। इसकी बजाय, एक गर्भनिरोधक के खतरे की तुलना किसी अन्य गर्भनिरोधक के खतरे से करना चाहिए, न कि सिर्फ जचकी के खतरे से।
- उदाहरण के लिए, अवरोध विधियां, हार्मोन आधारित विधियों की तुलना में ज्यादा सुरक्षापूर्ण हैं हालांकि गर्भ रोकने में शायद कम कारगर हों (जो कि विवादास्पद है)। कई महिलाएं गर्भनिरोधक का उपयोग दो बच्चों के जन्म के बीच अंतर बढ़ाने के लिए करती हैं न कि पूरी तरह से रोकने के लिए। अवरोध विधि के उपयोग के कारण ठहरा अनचाहा गर्भ शायद उन्हें गोली से जोखिम में डालने की अपेक्षा ज्यादा अनुकूल लगे।

गर्भनिरोधक खतरों की स्वीकार्यता व्यक्तिगत निर्णय का उतना ही अहम् सवाल है जितना कि वैज्ञानिक। कई महिलाएं गर्भ रोकने के लिए स्वास्थ्य का खतरा उठाने को तैयार हैं परंतु हर महिला को ये सारे खतरे जानने का हक है ताकि वह निर्णय कर सके। परंतु आज लाखों महिलाओं के लिए यह निर्णय गर्भनिरोधक निर्माताओं और जनसंख्या कार्यक्रमों द्वारा लिया जा रहा है।

जनसंख्या प्रतिष्ठान के कुछ सदस्य मातृत्व मृत्युदर और गर्भनिरोधक जोखिम की तुलना को चुनौती देने लगे हैं। जनसंख्या परिषद् के अध्यक्ष जार्ज जाइडेन्सटाइन ने चिन्ता व्यक्त की है कि "गर्भनिरोधकों की सुरक्षा और स्वास्थ्य की चर्चा करते हुए अधिकारीगण ऐसे बात करते हैं जैसे कि एकमात्र महत्वपूर्ण मुद्दा उस गर्भनिरोधक के खतरे और गर्भावस्था के खतरे की तुलना का हो।" और ज्यूडिथ ब्रूस और एस.ब्रूस शीरर बताते हैं कि अमरीका जैसे औद्योगिक देशों में गर्भनिरोधकों के खतरों ने एक नई जनस्वास्थ्य समस्या पैदा कर दी है –

> "अमरीका में यद्यपि सन् 1955 और 1975 के बीच मातृत्व मृत्युदर लगभग 75 प्रतिशत कम हो गई है पर आज आधी मौतें नई गर्भनिरोधक टेक्नोलॉजी के प्रतिकूल प्रभावों के कारण होती हैं। 1955 में यह कारक नहीं था।"

परंतु फिर भी अन्य लोग दलील देते हैं कि जन्मदर को कम करने के लिए तीसरी दुनिया के लोगों को और भी ज्यादा खतरे उठाना चाहिए। जन्म नियंत्रक गोली के एक 'जनक' और लंबे समय तक सिन्टेक्स कॉरपोरेशन के सलाहकार रहे डॉ. कार्ल जेरासी ने सन् 1983 में आह्वान किया कि आनेवाले सालों में तीसरी दुनिया के लिए गर्भनिरोधकों के विकास हेतु 'साहसिक कदम' उठाए जाएं ताकि तेज जनसंख्या वृद्धि के आर्थिक और राजनीतिक प्रभावों को कम किया जा सके। इन कदमों में मुख्य थे – इंसानों पर औषधि अनुसंधान की गति बढ़ाना और गर्भनिरोधक शोध को अनुमति देने हेतु एक नई अंतर्राष्ट्रीय एजेंसी स्थापित करना ताकि पश्चिमी देशों की मौजूदा नियमन एजेंसियों को बायपास किया जा सके, जो जोखिम उठाने को तैयार नहीं हैं। सुरक्षा मानकों में कमी की मांग करने के उपरांत जेरासी कहते हैं, "मैं यह मानकर चलता हूं कि जानकारी–आधारित मंजूरी की प्रक्रिया कठोरता से और व्यवहारिकता से लागू की जाएगी – और हर देश अपनी प्रक्रिया स्थापित करेगा।"

आज जो ताकतें – जनसंख्या प्रतिष्ठान, दवा कंपनियां, और वैज्ञानिक समुदाय – गर्भनिरोधक टेक्नोलॉजी गढ़ रही हैं वे उन महिला–पुरुषों से बहुत दूर हैं जो इसका उपयोग करते हैं।

परिणामस्वरूप, टेक्नोलॉजी उन व्यक्तियों की ज़रूरत के अनुरूप नहीं बल्कि इसके निर्माताओं के पूर्वाग्रहों के अनुरूप होती हैं। पुरुष गर्भनिरोधक की अपेक्षा महिला गर्भनिरोधकों को कहीं ज्यादा प्राथमिकता दी जाती है, अवरोध और प्राकृतिक विधियों की बजाय तंत्रगत एवं चीरफाड़ की विधियों को प्राथमिकता दी जाती है और सुरक्षा एक गौण सरोकार है।■

भारत की ग्रामीण महिलाओं में लैंगिक बीमारियों की ऊंची दर[32]

– डॉ. रानी बंग, अभय बंग, एम. बैतुले,
वाय. चौधरी, एस. सर्मुकदम व ओ. ताले

सार

भारत के दो गांवों (जिला गढ़चिरोली, महाराष्ट्र) की महिलाओं में स्त्री रोग व लैंगिक रोगों का एक जनसंख्या आधारित एवं विविध वर्गीय अध्ययन किया गया। 650 महिलाओं में से 55 प्रतिशत को स्त्री रोग की शिकायत थी जबकि 45 प्रतिशत में रोगों के लक्षण नहीं दिखे। 92 प्रतिशत महिलाओं में एक या उससे ज्यादा स्त्री रोग या लैंगिक रोग पाए गए। प्रति महिला औसत 3.6 रोग पाए गए। इनमें से आधे रोग जनन नलिका से संबंधित थे। मात्र 8 प्रतिशत महिलाओं ने ही इससे पहले स्त्री रोग जांच या इलाज करवाया था। स्त्री रोग होने और स्त्री गर्भनिरोधक के उपयोग के बीच संबंध पाया गया किंतु इससे रोगों के एक छोटे से हिस्से की ही व्याख्या की जा सकती है। विकासशील देशों के ग्रामीण इलाकों में स्त्री रोग व लैंगिक स्वास्थ्य व्यवस्था, प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधा का अंग होना चाहिए।

प्रस्तावना

मां और बाल स्वास्थ्य सुविधा अल्मा अता (संदर्भ क्र. 1) के घोषणापत्र में प्राथमिक स्वास्थ्य व्यवस्था (संदर्भ क्र. 2) के आठ बुनियादी अंगों में से एक है। कुछ अन्य कार्यक्रमों में इसके प्रति एक ज्यादा केंद्रित रवैये की वकालत की जाती है और बढ़ावा दिया जाता है – इसको चुनिंदा प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधा या बाल जीवन क्रांति (संदर्भ क्र. 3) कहा गया है। गर्भ और जचकी के समय महिला के स्वास्थ्य को लेकर नए सिरे से एक चिंता उभरी है (संदर्भ क्र. 4) और मातृत्व संबंधी मृत्युदर को कम करना एक प्राथमिकता मानी गई है (संदर्भ क्र. 5)। इसके विपरीत गैर–गर्भवती महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। तीसरी दुनिया के देशों में ऐसी महिलाओं का स्वास्थ्य सुविधाओं से तभी सामना होता है जब वे परिवार नियोजन कार्यक्रम की टारगेट (लक्ष्य) बनती हैं (संदर्भ क्र. 6)।

---

[32]दी लेन्सेट, लंदन, 14 जनवरी 1989 से साभार। मूल अंग्रेजी से अनुवाद : डॉ. सुशील जोशी।

इस परचे में स्त्री रोग शब्द का प्रयोग असामान्य गर्भावस्था, जचकी या सूतिकावस्था को छोड़कर स्त्री–जननांगों से संबंधित शेष गड़बड़ियों के लिए किया गया है। स्त्री रोग सुविधा की अवहेलना का एक कारण यह है कि ग्रामीण इलाकों में इसकी ज़रूरत का ठीक मूल्यांकन नहीं हुआ है। अधिकांश आंकड़े अस्पतालों और क्लीनिक के होते हैं और बहुत चुनिंदा होते हैं – इनसे पूरी आबादी के विषय में कुछ पता नहीं चलता (संदर्भ क्र. 7–8)। कुछ जनसंख्या आधारित अध्ययन विशिष्ट रोगों को लेकर हुए हैं – जैसे ग्रीवा का कैंसर (संदर्भ क्र. 9–16) (अध्ययन के लिए इसका चुनाव अस्पताल के अनुभव के आधार पर किया गया), योनि स्राव (संदर्भ क्र. 17) या जननांग गड़बड़ियां (संदर्भ क्र. 18, परिवार नियोजन क्लीनिक के आंकड़ों के आधार पर)। हमें विकासशील देशों में ऐसे किसी अध्ययन की जानकारी नहीं है जो जनसंख्या आधारित हों और जिनमें सारे स्त्री रोगों को शामिल किया गया हो। विकासशील देशों के ग्रामीण इलाकों में महिला डॉक्टरों की अत्यधिक कमी भी जानकारी के अभाव का एक कारण है। पारंपरिक रूप से इन इलाकों की महिलाएं स्त्री रोग या लैंगिक गड़बड़ियों के बारे में पुरुष डॉक्टरों से बात करने या जांच करवाने को लेकर संकोची हैं। नर्स और पैरामेडिकल कार्यकर्ताओं को स्त्री रोगों के बारे में कोई ट्रेनिंग नहीं मिलती। परिणाम होता है सुविधाओं का पूर्ण अभाव।

इस अध्ययन में हम निम्नलिखित बातें जानना चाहते थे –

- ग्रामीण महिलाओं में स्त्री रोगों की दर, प्रकार और वितरण,
- स्त्री रोग एवं लैंगिक गड़बड़ियों के बारे में महिलाओं की जागरूकता व अहसास एवं
- कितनी महिलाओं को स्त्री रोग स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध हैं?

अध्ययन क्षेत्र और आबादी का नमूना

ग्रामीण इलाकों में स्त्री रोग संबंधी पूछताछ एवं जांच एक नाजुक मसला है। आप यह नहीं कर सकते कि एक बड़ी आबादी में से कुछ महिलाओं को बेतरतीबी से चुन लें और अध्ययन के लिए तैयार हो जाएं। अतः यह तय किया गया कि गांव को अध्ययन की इकाई बनाया जाए।

यह अध्ययन महाराष्ट्र के एक पिछड़े जिले गढ़चिरोली में किया गया। निम्नलिखित मापदंडों के आधार पर दो गांवों का चयन किया गया, सामाजिक–आर्थिक हालत एक औसत गांव जैसे हों, ऐसे लोगों की मौजूदगी जो गांव की महिलाओं को अध्ययन के बारे

में समझाकर भाग लेने के लिए प्रोत्साहित कर सकें और स्त्री रोग की दर को लेकर असामान्य परिस्थिति न हो।

गांव 'क' की जनसंख्या 1400 और गांव 'ख' की 2,200 है। ये दोनों गांव एक–दूसरे से और जिला मुख्यालय से 20 किलोमीटर की दूरी पर स्थित हैं। गांव 'क' में दो पुरुष डॉक्टरों वाला एक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र है और गांव 'ख' में नर्सों द्वारा संचालित एक मिशन अस्पताल है। इस प्रकार से दोनों ही गांवों को प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र उपलब्ध है, हालांकि निकटतम स्त्री रोग विशेषज्ञ ज़िला मुख्यालय में है।

महिला सामाजिक कार्यकर्ता, गांव के अगुआ और स्वैच्छिक कार्यकर्ताओं ने उन सभी महिलाओं को अध्ययन में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जो 13 साल या उससे ऊपर की थीं या रजस्वला (माहवारी) हो चुकी थीं। इस बात की चिंता नहीं की गई कि उनमें रोगों के लक्षण दिखते हैं या नहीं।

गांव में शिविर लगाए गए – पहले 'क' और फिर 'ख' में। इन शिविरों में अकेले में बातचीत, योनि की आंतरिक जांच, विषविज्ञान प्रयोगशाला और एक ऑपरेशन कक्ष की सुविधाएं थीं। एक अन्य विषविज्ञान प्रयोगशाला और बैक्टीरिया परीक्षण प्रयोगशाला 20 कि.मी. दूर परियोजना स्थल पर बनाई गई। अध्ययन दल में दस वर्ष के अनुभव वाली एक स्त्री रोग विशेषज्ञ, एक फिजीशियन, एक विषवैज्ञानिक कार्यकर्ता थे। जिन महिलाओं में बीमारी पाई गई उन्हें इलाज मुहैया करवाया गया।

जांच का ब्यौरा

सबसे पहले व्यक्तिगत जानकारी, सामाजिक–आर्थिक स्थिति, स्त्री रोग संबंधी लक्षणों को लेकर अहसास व रिवाज़, देखरेख का पूर्ण अनुभव और शिशु जन्म, स्त्री रोग या यौनिकता के इतिहास की जानकारी ली गई। इसके बाद महिलाओं की सामान्य शारीरिक जांच की गई जिसमें निरीक्षण यंत्र और श्रोणि प्रदेश (Pelvis) (नाभि से नीचे तथा मूत्रेंद्रिय से ऊपर) की दोनों हाथ से जांच शामिल है। कुंवारी लड़कियां जिनकी योनि झिल्ली फटी नहीं थी उनकी योनि की बजाय गुदा जांच की गई। निम्नलिखित प्रयोगशाला परीक्षण किए गए – मल और पेशाब की जांच, हीमोग्लोबिन (साइन मीट हीमोग्लोबिन विधि से), परजीवी की उपस्थिति और एनीमिया का प्रकार पता लगाने के लिए परिधि लेपन, रति रोग परीक्षण, 2 प्रतिशत सोडियम मेटाबाईसल्फाइट द्वारा सिक्लिंग परीक्षण, ज़रूरत होने पर पेशाब की जांच और जीवाणुरोधी के प्रति संवेदनशीलता, योनि लेपन, सूक्ष्मदर्शिकी और ग्रामरंजन, पेपेनीकोलू रंजक ह्यूज़ेत और डाड्स की विधि (संदर्भ क्र. 19) द्वारा योनि

व ग्रीवा की कोशिकाओं की जांच, योनि पर लगे फोहे का संवर्धन व जीवाणुरोधी के प्रति संवेदनशीलता परीक्षण। यह परियोजना प्रयोगशाला में किया गया (संदर्भ क्र. 20)। निदान के लिए इंटरनेशनल क्लासिफिकेशन ऑफ डिसिज़ेस (बीमारियों का अंतर्राष्ट्रीय वर्गीकरण) 9वां संस्करण (संदर्भ क्र. 21) को आधार माना। योनि की सूजन (वेजीनायटिस) का निदान तब किया गया जब योनि की दीवार पर सूजन दिख रही हो। जब सूक्ष्मदर्शी की ग्रामरंजन या संवर्धन जांच में कोई रोगजनक जीव नहीं पाया गया तो इसे अज्ञात मूल की योनि की सूजन (वेजीनायटिस) कहा गया। सिफिलिस तब माना गया जब रति रोग परीक्षण में 1:8 तनुता पर परीक्षण सकारात्मक आया (संदर्भ क्र. 22)।

तालिका क्र. 6

आम स्त्री रोग एवं शिकायतें
(कुल महिलाएं – 650)

शिकायत	महिलाओं की संख्या	प्रतिशत
योनि स्राव	38	5.9
पेशाब में जलन	60	9.2
बच्चे न होना	36	5.6
मासिक स्राव की कमी	82	12.6
अनियमित मासिक स्राव	45	6.9
मासिक स्राव की अधिकता	32	4.9
मासिक स्राव का रुक जाना	132	20.3
मासिक स्राव में दर्द	98	15.1
संभोग में दर्द	43	6.6
अन्य	84	12.9

श्रोणि (Pelvic) की सूजन को तब रोग माना गया जब योनि की जांच के समय आसपास के अंग स्पर्श के प्रति संवेदनशील पाए गए, बच्चेदानी की गतिशीलता में रुकावट के साथ या वैसे ही। शेष स्त्री रोग संबंधी हालातों के बारे में जेफ़कोएट के मापदंडों को आधार बनाया गया (संदर्भ क्र. 23)।

महिलाओं के खून में 11.5 ग्राम प्रति 100 मिली हीमोग्लोबिन को एनीमिया कहा गया (संदर्भ क्र. 24)। लौह (आयरन) की कमी की पहचान के लिए हीमोग्लोबिन की कमी या

उनके छोटे आकार को आधार बनाया गया। विटामिन 'ए' की कमी की पहचान के लिए आंखों की श्लेष्मा झिल्ली की शुष्कता या धब्बों को आधार बनाया गया। हंसियाकार कोशिका रोग का निदान सिक्लिंग परीक्षण से किया गया (किंतु होमोज़ायगस बीमारी की पहचान इलेक्ट्रोफोरेसिस सुविधा के अभाव में नहीं हो सकी)।

सर्वेक्षण की नाजुक प्रकृति और पारंपरिक समाज की रूढ़ियों को ध्यान में रखते हुए हमारा अनुमान था कि सर्वेक्षण के लिए कुल चयनित महिलाओं में से 50 प्रतिशत तो आ ही जाएंगी। जबकि वास्तव में 1,104 महिलाओं में 654 (59 प्रतिशत) आ गईं और 4 को छोड़कर बाकी सभी के परीक्षण पूरे हो गए। हालांकि लक्षणधारी और लक्षणविहीन दोनों प्रकार की महिलाओं को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया गया था पर हो सकता है कि कुछ चुनाव हुआ हो। इसलिए हमने गैर–भागीदार महिलाओं के 25 प्रतिशत बेतरतीब नमूनों से घरों पर मुलाकात की और उनके व्यक्तिगत, शिशु जन्म और गर्भनिरोध के अनुभव दर्ज़ किए और पता लगाया कि उनमें स्त्री रोग के लक्षण हैं या नहीं (योनि स्राव और मासिक स्राव की गड़बड़ी) और भाग न लेने के कारण भी पूछे गए। आंकड़ों का विश्लेषण कम्प्यूटर से किया गया।

परिणाम

650 महिलाओं की औसत आयु 32.11 वर्ष थी। इनमें से 92 महिलाएं (14 प्रतिशत) अविवाहित, 462 (71 प्रतिशत) विवाहित एवं पति के साथ रह रही थीं, 28 (4 प्रतिशत) पति से अलग रह रही थीं और 68 (11 प्रतिशत) विधवा थीं। इस तरह से 558 महिलाएं अध्ययन के समय शादीशुदा थीं या पहले रही थीं। इनमें से 28 (44 प्रतिशत) किसान, 149 (23 प्रतिशत) भूमिहीन मजदूर, 93 (14 प्रतिशत) गृहणियां, 21 (3 प्रतिशत) नियमित नौकरियों में, 46 (7 प्रतिशत) छात्राएं और 55 (9 प्रतिशत) अन्य व्यवसायों में थीं। 436 (68 प्रतिशत) गैर–साक्षर, 84 (13 प्रतिशत) चौथी तक, 52 (8 प्रतिशत) सातवीं तक, 65 (10 प्रतिशत) दसवीं तक और 8 (1 प्रतिशत) कॉलेज तक पढ़ी थीं।

299 (46 प्रतिशत) मध्यम जातियों की, 123 (18.9 प्रतिशत) नीची या छोटी माने जाने वाली जातियों की, 138 (21.3 प्रतिशत) आदिवासी मूल की और 28 (4.3 प्रतिशत) खानाबदोश जातियों की थीं। 62 (9.5 प्रतिशत) अन्य जातियों की या गैर–हिंदू थीं।

650 महिलाओं में से 28 (4 प्रतिशत) तब तक रजस्वला नहीं हुई थीं, 468 (72 प्रतिशत) का मासिक स्राव शुरू था और 154 (24 प्रतिशत) रजोनिवृत्ति पर पहुंच गई थीं। गर्भधारण

की औसत संख्या 3.99 और जीवित शिशु जन्म औसत संख्या 3.75 थी। 48 महिलाएं अध्ययन के समय गर्भवती थीं। अपने पति के साथ रह रहीं 462 शादीशुदा महिलाओं में से 254 (55 प्रतिशत) निम्नलिखित में से किसी एक गर्भनिरोधक तरीके का उपयोग कर रही थीं : कंडोम 5, कॉपर टी 7, संभोग के समय वीर्य योनि से बाहर गिरा़ना 2, सुरक्षित अवधि 2, गोली 5, नसबंदी 24, लेप्रोस्कोपी 58 और पुरुष नसबंदी 15। इस प्रकार अध्ययन के समय गर्भनिरोध की स्त्री विधि का उपयोग 94 महिलाएं कर रही थीं जबकि 29 अतीत में इनका उपयोग कर चुकी थीं, कुल 123 महिलाएं।

स्त्री रोग एवं लैंगिक बीमारियां तालिका क्र. 7 में दी गई हैं। **650 महिलाओं में कुल मिलाकर 2,344 स्त्री रोग** पाए गए – अर्थात् प्रति महिला 3.6 रोग।

तालिका क्र. 7

स्त्री रोग एवं लैंगिक बीमारियां

क्र.	रोग	संख्या	प्रतिशत
1.	यौवन के आरंभ में मासिक धर्म न आना (प्राइमरी अमीनोरिया)	07	1.1
2.	किसी कारण से मासिक धर्म का रुक जाना (सेकेंडरी अमीनोरिया)	22	3.4
3.	बच्चेदानी में खून स्राव (फंक्शनल यूटेराइन हेमरेज़)	06	1.3*
4.	मासिक धर्म के समय कम खून जाना या ज्यादा खून जाना (ओलिगोमीनोरिया / हायपोमीनोरिया)	105	22.4*
5.	असामान्य रूप से बार–बार स्राव (पोलीमीनोरिया)	04	0.9*
6.	मासिक धर्म से जुड़े तनाव व अन्य दिक्कतें (मीनोरेज़िया)	71	15.2*
7.	मासिक स्राव के साथ दर्द (डिसमीनोरिया)	269	57.5*
8.	अनियमित मासिक धर्म	60	12.8*
9.	प्राथमिक बांझपन (गर्भधारण कभी नहीं)	20	4.3*
10.	द्वितीयक बांझपन (1–2 बच्चे होने के बाद)	24	3.7
11.	यौन उदासीनता (फ़्रीजिडिटी)	57	12.3**
12.	पीड़ादायक संभोग (डिन्सपेर्यूनिया)	43	9.3**
13.	योनि में पीड़ादायक संकुचन (वेज़ायनिस्मस)	47	10.2**
14.	अधिक उम्र में योनि की सूजन (सीनाइल वेज़ीनायटिस)	20	11.0#

जारी. . .

क्र.	रोग	संख्या	प्रतिशत
15.	ट्रायकोमोनास परजीवी द्वारा योनि की सूजन	78	14.0[ϒ]
16.	केंडिडा नामक फफूंद से होने वाली योनि की सूजन	190	34.0[ϒ]
17.	बैक्टीरियाजनित योनि की सूजन	347	62.2[ϒ]
18.	अज्ञात मूल की योनि की सूजन	23	4.1[ϒ]
19.	ग्रीवा का क्षरण (सर्वायकल ईरोज़न)	255	45.7[ϒ]
20.	ग्रीवा की सूजन (सर्विसायटिस)	272	48.7[ϒ]
21.	ग्रीवा की आंतरिक सूजन (एण्डोसर्विसायटिस)	67	12.0[ϒ]
22.	श्रोणि प्रदेश (Pelvis) की सूजन (पी.आय.डी.)	157	24.1
23.	अंडाशय की पुटी (ओवेरियन सिस्ट)	06	0.9
24.	पुटीग्रस्त अंडाशय (सिस्टिक ओवरी)	15	2.3
25.	ग्रीवा कोशिकाओं की विकृति (सर्वायकल डिसप्लेसिया)	07	1.1
26.	ग्रीवा में असामान्य कोशिकाओं का विकास (सर्वायकल मेटाप्लेसिया)	08	1.2
27.	ग्रीवा में मसा (सर्वायकल पालिस)	10	1.5
28.	सिफलिस	68	10.5
29.	श्वेत प्रदर (ल्यूकोरिया)	22	3.4
30.	योनि पर सफेद धब्बे (ल्यूकोप्लेकिया)	04	0.6
31.	गनोरिया	02	0.3
32.	सिस्टोसिस	03	0.5
33.	योनि की सूजन (वल्वायटिस)	02	0.3
34.	तंतुमय बच्चादानी (फायब्रिड यूटेरस)	01	0.1
35.	ग्रीवा का कैंसर (कार्सिनोमा)	0	0.0
36.	अन्य	52	8.0

[*]सिर्फ उन **468 महिलाओं का प्रतिशत** जिनका मासिक चक्र शुरू हो चुका था।

[**]सिर्फ उन **462 महिलाओं का प्रतिशत** जो पति के साथ रह रही थीं।

[#]40 वर्ष से ऊपर की **182 महिलाओं का प्रतिशत**।

[ϒ]**558 शादीशुदा महिलाओं** में से।

अविवाहित महिलाओं में शादी पूर्व यौन संबंधों की पहचान या तो कौमार्य झिल्ली के फटी होने या योनि में दो उंगलियां आसानी से जा सकने के आधार पर की गई (इस इलाके में महिलाएं टेम्पून्स का उपयोग नहीं करतीं)।

सबसे आम गैर–स्त्री रोग संबंधी दिक्कतें निम्नलिखित पाई गईं –

तालिका क्र. 8

गैर–स्त्री रोग संबंधी दिक्कतें

क्र.	महिलाओं की सामान्य स्वास्थ्य संबंधित दिक्कतें	प्रतिशत में
1.	एनीमिया या खून की कमी	91
2.	लौह (आयरन) की कमी वाला एनीमिया	83
3.	सिकल सेल बीमारी	07
4.	विटामिन 'ए' की कमी	58
5.	हाथीपांव	12
6.	फेफड़ों की टीबी	02
7.	कोढ़	10
8.	मूत्रनली संक्रमण	04

यदि पूर्व में स्त्री रोग संबंधी जांच हुई हो, तो उसे स्त्री रोग विशेषज्ञ सुविधा उपलब्ध होने का द्योतक माना गया। 650 में .से मात्र 51 महिलाओं (7.8 प्रतिशत) की इस तरह की जांच हुई थी।

तालिका क्र. 9

चुनिंदा स्त्री रोगों और
पूर्व या वर्तमान गर्भनिरोधक के उपयोग का संबंध

(कुल महिलाएं 558)

रोग समूह	गर्भनिरोधक का उपयोग किया है 123 संख्या (प्रतिशत)	गर्भनिरोधक का उपयोग नहीं किया 435 संख्या (प्रतिशत)	χ^2 p*
मासिक स्राव बीमारियां	92 (74.8)	202 (46.4)	29.81 < 0.001
यौनिक समस्याएं	16 (13.0)	28 (6.4)	4.83 < 0.05
योनि संक्रमण	120 (97.6)	352 (80.9)	19.11 < 0.001
ग्रीवा के रोग	102 (82.9)	292 (67.1)	10.70 < 0.01
श्रोणि प्रदेश में सूजन	59 (48.0)	100 (23.0)	28.15 < 0.001

***नोट** : गर्भनिरोधक का उपयोग करने पर, उपयोग न करनेवाली महिलाओं की तुलना में स्त्री रोगों की बढ़ी हुई दरों का सांख्यिकीय महत्व बतानेवाले 'काई स्क्वेयर' परीक्षण के परिणाम।

उपरोक्त तालिका क्र. 9 से पता चलता है कि गर्भनिरोधक का उपयोग करने वाली महिलाओं में स्त्री रोग ज्यादा होते हैं।

चर्चा

इस अध्ययन में स्त्री रोग या लैंगिक बीमारियों का प्रकोप औसत 3.6 रोग प्रति महिला बहुत ज्यादा है। इसमें से लगभग आधी दिक्कतें संक्रामक रोगों के कारण थीं – योनि की सूजन, ग्रीवा की सूजन, श्रोणि सूजन रोग (पी.आय.डी.) और यदि हम ज्यादा अच्छे परीक्षणों का उपयोग करते तो शायद दरें ज्यादा होतीं। मासिक स्राव की गड़बड़ियां एक और बड़ा समूह है और इसमें जननांगों पर रोग संक्रमण एक कारण हो सकता है।

सूत्रण रोग (फायब्रोसिस) से ग्रस्त बच्चादानी बहुत कम पाई गई और ग्रीवा के कैंसर (कार्सिनोमा) का एक भी मामला नहीं था (देखें तालिका क्र. 7)। लौह (आयरन) की कमी वाले एनीमिया के मामले 83 प्रतिशत और विटामिन 'ए' की कमी 58 प्रतिशत का कारण सामान्य तौर पर इस इलाके की और खासकर महिलाओं की खराब आर्थिक स्थिति है। इस इलाके में हाथीपांव और कोढ़ का बहुत प्रकोप है (देखें तालिका क्र. 8) ।

एक उल्लेखनीय निष्कर्ष यह है कि जिन महिलाओं में किसी रोग के लक्षण दिखाई नहीं दिए उनमें प्रजनन मार्ग संबंधी बीमारियों के होने की संभावना है। इसीलिए बीमारियों की ऊंची दर के माहौल में मात्र लक्षण एक संवेदी औज़ार नहीं है। महिलाओं ने अपने आप स्त्री रोग संबंधी गड़बड़ियां (खासकर योनि स्राव और मासिक चक्र की गड़बड़ियां) बहुत कम करके बताईं। इसका कारण यह है कि वे इसे सामान्य बात मानती हैं। मात्र 98 महिलाओं ने मासिक स्त्राव के समय अत्यधिक दर्द की बात कही परंतु जब गहराई से पूछताछ की गई तो पता चला कि 468 महिलाओं में से 269 महिलाएं (57.5) मासिक स्त्राव के साथ दर्द (डिसमीनोरिया) से ग्रस्त हैं (देखिए तालिका क्र. 7)।

महिलाओं की इस बात में कुछ सच्चाई है कि गर्भनिरोध से स्त्री रोग संबंधी तकलीफें होती हैं – कुछ स्त्री रोगों और मौजूदा या पूर्व के गर्भनिरोध की स्त्री विधि के उपयोग में सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण संबंध देखा गया। परंतु इससे रोगों के थोड़े–से अनुपात को ही समझा जा सकता है क्योंकि 558 शादीशुदा महिलाओं में से 435 (78 प्रतिशत) ने कभी ऐसे किसी गर्भनिरोधक का उपयोग नहीं किया था और फिर भी उनमें बीमारियों का काफी प्रकोप था।

जिन बीमारियों से जान का खतरा नहीं है, उन पर दुर्भाग्यवश ध्यान नहीं दिया जाता। एप्लास्टिक[33] स्त्री रोग इसी श्रेणी में आते हैं परंतु इनसे निम्नलिखित तकलीफें हो सकती हैं : दीर्घावधि पीठ दर्द (30.3 प्रतिशत महिलाओं में पाया गया) जिससे घर व बाहर के काम में अड़चन हो सकती है, गर्भपात और मृतजन्म के कारण भ्रूण का बेकार जाना, जनन मार्ग के संक्रमण (इंफेक्शन) के कारण जन्म के तुरंत बाद होने वाले संक्रमण, मासिक धर्म से जुड़े तनाव, अन्य दिक्कतों (मीनोरेज़िया) के कारण एनीमिया, बांझपन और पीड़ादायक संभोग (डिसपूर्यूनिया) के कारण वैवाहिक संबंधों में दिक्कतें, चिंता व तनाव और पहले से मौजूद बीमारियों के बढ़ जाने के कारण परिवार नियोजन की विधियों की साख में गिरावट। शायद इसी कारण से आई.यू.डी. का उपयोग बहुत कम होता है हालांकि राज्य सरकार इसे बहुत बढ़ावा दे रही है।

इस अनपेक्षित खोज से इस बात की ज़रूरत दिखती है कि किशोर लड़कियों को गांवों में यौनिक स्वास्थ्य व देखरेख उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

इस इलाके से 'एड्स' की कोई खबर नहीं है। परंतु जब इसके विषाणु पहुचेंगे, तब योनि की सूजन (वेजिनाइटिस) और ग्रीवा का क्षरण (सर्वायकल ईरोज़न) का इस बीमारी के फैलने पर क्या असर होगा? क्या इन घावों से वायरस को योनि मार्ग में जाने में सहूलियत होगी? इस पहलू पर विचार की ज़रूरत है।

हालांकि 55 प्रतिशत महिलाएं जानती थीं कि उन्हें स्त्री रोग संबंधी दिक्कतें हैं किंतु मात्र 7.8 प्रतिशत महिलाओं ने ही पूर्व में जांच कराई थी। स्पष्ट है कि ज़रूरत और सुविधा के बीच भयंकर खाई है। इसी तरह के व्यापक रोग वैज्ञानिक सर्वेक्षणों की अन्य इलाकों में भी ज़रूरत है। इनमें ज्यादा ध्यान रोग के कारणों और महिलाओं के अहसास को देना चाहिए। और आखिर में, महिलाओं के लिए प्रजनन स्वास्थ्य सुविधा को मात्र मां की देखरेख और परिवार नियोजन के दायरे से ज्यादा विस्तृत करने की ज़रूरत है।■

---

[33]किसी अंग का विकास न होने के कारण या उस अंग के कार्य में गड़बड़ी होने के कारण जो रोग होते हैं उन्हें एप्लास्टिक रोग कहते हैं।

संदर्भ

1. विश्व स्वास्थ्य संगठन व यूनिसेफ़, प्रायमरी हेल्थ केयर : रिपोर्ट ऑफ़ दी इंटरनेशनल कॉन्फ्रेंस ऑन प्रायमरी हेल्थ केयर (प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधा : प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधा पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन की रपट), अल्मा अता, सितंबर 1978, जिनेवा : डब्ल्यू.एच.ओ., 1978.
2. वाल्श, जे. ए. एवं वारेन, के. एस., सेलेक्टिव प्रायमरी हेल्थ केयर : एन इंटरिम स्ट्रेटेजी फॉर डिसीज़ कंट्रोल इन डेवलपिंग कंट्रीज़ (चुनिंदा प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधा : विकासशील देशों में रोग नियंत्रण की अंतरिम रणनीति), नार्थ इंग्लैंड जर्नल ऑफ़ मेडिसिन, 1979, 301, 976–74.
3. ग्रांट, जे. पी., दी स्टेट ऑफ़ वर्ल्ड चिल्ड्रेन (दुनिया में बच्चों की स्थिति) 1984, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 1984.
4. कानबेल, बी.बी., सेफ़ मदर हुड (सुरक्षित मातृत्व), डब्ल्यू.एच.ओ. फ़ोरम, 1987, 8, 155–60.
5. साई, एफ़.टी., सेफ़ मदर हुड इनिशिएटिव : ए कॉल फ़ॉर एक्शन (सुरक्षित मातृत्व की पहल : कार्रवाई का आह्वान), आई.पी.पी.एफ़. बुलेटिन, 1987, 21, क्र. 3.
6. बंग, आर. ए., काउंसलिंग एंड च्वाइस इन फ़ैमिली प्लानिंग (परिवार नियोजन में मशवरा एवं विकल्प), परिवार नियोजन के जरिए महिलाओं व बच्चों को बेहतर स्वास्थ्य के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, नेरोबी (अक्टूबर 5–9, 1987) में प्रस्तुत पर्चा.
7. लिलिएन फ़ेल्ड, ए. एम. एवं लिलिएन फ़ेल्ड, डी.ई., फ़ाउंडेशंस ऑफ़ इपिडिमियोलॉजी (व्यापक रोग विज्ञान के आधार), न्यूयार्क : ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1980, 133–36.
8. मेकमोहन, बी. एवं प्यूह, टी.एफ़., इपिडिमियोलॉजी : प्रिंसिपल्स एंड मैथड्स (व्यापक रोग विज्ञान : सिद्धांत एवं तरीके), बोस्टन : लिटिल ब्राउन, 1970, 90.
9. वाही, पी.एन., लूथ्रा यू.के., माली, एस. एवं शिमकिन, एम.बी., प्रीवेलेंस एंड डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ़ कैंसर ऑफ़ यूटेराइन सर्विक्स इन आगरा डिस्ट्रिक्ट इन इंडिया (भारत के आगरा जिले में ग्रीवा के कैंसर का प्रकोप व वितरण), कैंसर, 1972, 30, 720–25.
10. गरुड़, एम.ए., सरैया, यू.बी., लुल्ला, एम., खान, एस., पारस्कर, एम. व दफ्तरी, डी., सायटोलॉजी स्क्रीनिंग प्रोग्राम इन एन अर्बन रूरल कम्युनिटी इन इंडिया (भारत के एक शहरी व देहाती समुदाय में कोशिका वैज्ञानिक जांच), एक्टा सायटोलॉजी, 1983, 27, 4.
11. अलेल्य, जे.ए., गायनेकोलॉजिकल सायटोलॉजी इन फ़ैमिली प्लानिंग सर्विसेज़ इन नाइजीरिया (नाइजीरिया की परिवार नियोजन सुविधाओं में स्त्री रोग कोशिका विज्ञान), साउथ अफ्रीका मेडिकल जर्नल, 1975, 50, 611–15.
12. वाक्यू, डब्ल्यू. व मूलर, सी.जे., कैंसर स्क्रीनिंग एंड कैंसर एजूकेशन इन रूरल वैस्टर्न केप (ग्रामीण पश्चिमी केप में कैंसर की जांच व कैंसर शिक्षा), साउथ अफ्रीका मेडिकल जर्नल, 1977, 51, 82.
13. याजिमा, ए., हिसाश्वाई, एच. सातो, ए. व अन्य, मास पेपानिकोलाड स्क्रीनिंग फ़ॉर सर्वायकल कैंसर इन नियासी प्रीफ़ैक्चर (नियासी प्रीफ़ैक्चर में ग्रीवा कैंसर हेतु व्यापक पेपानिकोलाउ जांच), गायनेकोलॉजिकल आन्कोलॉजी, 1979, 8, 131–40.

14. माली, एस., वाही, पी. एन. व लूथ्रा, यू. के., कैंसर ऑफ़ यूटेराइन सर्विक्स (ग्रीवा का कैंसर), इंडियन जर्नल ऑफ़ कैंसर, 1968, 5, 269–73.

15. लूथ्रा, यू. के., इपिडिमियोलाूजी ऑफ़ सर्वायकल कैंसर इन इंडिया (भारत में ग्रीवा कैंसर का व्यापक रोग वैज्ञानिक अध्ययन), हिरायामा, टी. द्वारा संपादित पुस्तक, कैंसर इन एशिया, बाल्टीमोर, यूनिवर्सिटी पार्क प्रेस, 1976.

16. ग्रेक, इ.एस., ओ दाउद, एम.जे. व अन्य, सर्वायकल सायटोलॉजी इन जाम्बिया (जाम्बिया में ग्रीवा कोशिका विज्ञान), मेडिकल जर्नल ऑफ़ जाम्बिया, 1977, 11, 112–17.

17. बाली, पी. व भुजवाला आर.ए., ए पायलट स्टडी ऑफ़ क्लीनिको इपिडिमियोलॉजिक इन्वेस्टीगेशन ऑफ़ वैजाइनल डिस्चार्जेज़ इन रूरल वीमेन (ग्रामीण महिलाओं के योनि स्राव का अस्पताल–आधारित एवं व्यापक रोग वैज्ञानिक अध्ययन), इंडियन जर्नल ऑफ़ मेडिकल रिसर्च, 1969, 5, 7–12.

18. हापक्राफ्ट, एम., वेरहागे, ए.आर., गिरी, एस.एन. व हागा, ए.सी.ए., जैनाइटल इंफ़ेक्शन्स इन डेवलपिंग कंट्रीज़ : एक्सपीरियेंस इन फ़ैमिली प्लानिंग क्लीनिक्स (विकासशील देशों में जननांग संक्रमण : परिवार नियोजन दवाखानों के अनुभव), डब्ल्यू.एच.ओ. बुलेटिन, 1973, 48, 581–86.

19. ह्यूजेस, एच. इ. व डाड्स, टी.सी., हैंडबुक ऑफ़ डायग्नोस्टिक सायटोलॉजी (नैदानिक कोशिका विज्ञान की संदर्भ पुस्तक), एडिनबरा, लिविंगस्टन, 1978.

20. हेनरी, जे.बी., संपादक, सेनफ़ोर्ड और डेविडसन की क्लीनिकल डायग्नोसिस एंड मैनेजमेंट बाय लेबोरेट्री मेथड्स (प्रयोगशाला विधियों द्वारा निदान एवं व्यवस्था), 17वां संस्करण, फ़िलडेल्फ़िया, डब्ल्यू.बी.सोंडर्स, 1986.

21. विश्व स्वास्थ्य संगठन, इंटरनेशनल क्लासिफ़िकेशन ऑफ़ डिसिसेज़ (बीमारियों का अंतर्राष्ट्रीय वर्गीकरण), 9वां संस्करण, विश्व स्वास्थ्य संगठन, जिनेवा, 1975.

22. होम्स, के.के. व ल्यकहार्ट एस.ए., सिफ़लिस – ब्राउनवाउल्ड, ई. व अन्य द्वारा संपादित हैरिसन्स प्रिंसिपल्स ऑफ इंटरनल मेडिसिन (अंदरूनी औषधि के हैरिसन्स के सिद्धांत), 11वां संस्करण, न्यूयार्क : मेकग्रा हिल्स, 1987, 646.

23. टिण्डाल, डब्ल्यु. आर., संपादित, जेफ़कोएट्स प्रिंसिपल्स ऑफ़ गायनेकोलॉजी (स्त्री रोग विज्ञान के जेफ़कोएट्स के सिद्धांत), 5वां संस्करण, लंदन : बटरवर्थ 1987.

24. पेनिंग्टन, डी. रशबी. व गेस्टाल्डी, पी. (सं.), दी ग्रुशीस क्लीनिकल हीमेटोलॉजी इन मेडिकल प्रेक्टिसेज़ (चिकित्सा वैज्ञानिक क्रियाकलाप में ग्रुशीस का रक्तविज्ञान), 4था संस्करण, ऑक्सफ़ोर्ड, ब्लैकवेल सायंटिफिक, 1978 : 45.

———

इंसान! यह तुमने कैसे समझा
कि तुमको पैदा करती हूँ, और तुम्हारे सामने शरमाकर
सच कहने से घबराऊँगी-जो हम दोनों के दरमियां
यह मोहब्बत-नफरत-इज्जत-हिकारत का
रिश्ता है
तुम मुझसे इंसान का दर्जा छीनते हो ?
मैं तुम्हें जन्म देने से इंकार करती हूँ
क्या मेरे जिस्म का मसरफ यही है
कि पेट में बच्चा पलता रहे
तुम्हारे लिए
अंधे, बहरे, गूंगे गुलामों की फौज तैयार होती रहे

सैयदा गज़दर

खंड – तीन

प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम : नए रास्तों की तलाश

(सन् 1987 से 1989 तक)

किशोर भारती द्वारा संचालित
एवं मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा समर्थित

कार्यक्रम संयोजक –	डॉ. मीरा सद्‌गोपाल
शैक्षिक सलाहकार –	डॉ. साधना सक्सेना
कार्यकर्ता टीम –	शशि मौर्य, पार्वती मेहर व बेबी रायलीन
ग्राम पलिया पिपरिया –	प्यारीबाई, दीपा गढ़वाल व सुमन कोटवार
ग्राम तिंदवाड़ा –	कारोबाई
पिपरिया –	कुसुम कौशिक, ऊषा राय व मानकुंअर

सहयोगी

लक्ष्मी मूर्ति (दिल्ली), डॉ. कैरन हैडॉक (चंडीगढ़)
अंजली नरोन्हा (एकलव्य, हरदा)
अनु गुप्ता (एकलव्य, देवास), मेरियट कोरिया
डॉ. सतीश टिब्रावाला (मुंबई)
डॉ. सुशील जोशी व सुरोजित सरकार (किशोर भारती)

उर्वरता, प्रजनन और यौन इच्छा से संबंधित प्रचलित विश्वासों की स्थानीय खोजबीन रपट[34]

– डॉ. मीरा सद्‌गोपाल, सीमा वाजपेई एवं अश्विनी जोग[35]

1.0 खोजबीन के बारे में

2.0 प्राप्त जानकारी

2.1 बच्चों की पैदाइश (सामान्य)

2.2 स्तनपान

2.3 माहवारी (मासिक चक्र)

2.4 योनि स्राव

2.5 यौन संबंध

2.6 गर्भनिरोध और नसबंदी

2.7 गर्भपात और शिशु हत्या

2.8 स्त्री रोग संबंधी समस्याएं

3.0 जांच के प्रति लोगों का रवैया

4.0 निष्कर्ष (सुझावों के साथ)

---

[34]मूल अंग्रेजी से अनुवाद : श्री नीलाभ।

[35]सीमा एवं अश्विनी इस जांच में टाटा समाज विज्ञान संस्थान, देवनार (मुंबई) से मास्टर ऑफ़ सोशल वेलफ़ेयर की उपाधि के लिए 'ज़मीनी काम' (फ़ील्ड वर्क) पूरा करने के उद्देश्य से सम्मिलित हुईं थीं।

1.0 खोजबीन के बारे में

यह रपट उस खोजबीन का ब्यौरा है, जो हमने अप्रैल 1988 में 'किशोर भारती' के निकट के दो गांवों पलिया पिपरिया एवं तिंदवाड़ा (बनखेड़ी प्रखंड, जिला होशंगाबाद, म. प्र.) में की थी ताकि उर्वरता के बारे में स्थानीय लोगों के विचारों और प्रथाओं की पड़ताल कर सकें। इरादा था कि यह खोजबीन 'प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम' के लिए सांस्कृतिक आधार निर्मित करने की दिशा में पहला कदम होगी, जिसके लिए 'किशोर भारती' को मानव संसाधन विकास मंत्रालय[36] से कार्यक्रम विकास अनुदान मिला।

खोजबीन के उद्देश्य

1. उर्वरता, प्रजनन और यौनेच्छा से संबंधित मौजूदा स्थानीय विश्वासों और प्रथाओं को पहचान कर उनकी जांच करना।
2. इन विश्वासों को व्यक्त करने वाले और इन प्रथाओं का विवरण देने वाले स्थानीय शब्दों और मुहावरों की जानकारी हासिल करना।
3. इन विषयों की चर्चा करने के संबंध में लोगों की इच्छा और अनिच्छा का पता लगाना और
4. इनसे संबंधित समस्याओं का पता लगाना (खासतौर पर महिलाओं के संबंध में)। इनमें यौन संबंधी शिकायतें और महिला–पुरुषों के आपसी संबंध शामिल हैं (जो दोनों ही आर्थिक वर्गों के अनुसार भिन्न–भिन्न हो सकते हैं)।

इस पूरे प्रयास का उद्देश्य था कि इस चरण में लोगों को सिखाने की बजाय उनसे सीखा जाए। हालांकि, लोगों की तरफ से ज्यादातर मामलों में इस उद्देश्य को लेकर भ्रम भी रहा और समय–समय पर हमें बार–बार यह बात अलग–अलग तरीकों से बतानी और समझानी पड़ी।

अपेक्षाकृत कम परिचित गांव तिंदवाड़ा में एक अतिरिक्त उद्देश्य परस्पर संपर्क साधने और घनिष्ठता स्थापित करने का भी था, जबकि पलिया पिपरिया गांव में वर्षों से चले आ रहे संपर्क, घनिष्ठता और सक्रिय महिला संगठन से जांच को स्वाभाविक रूप से लाभ पहुंचा।

चूंकि इस चरण में खोजबीन का लक्ष्य संख्या–परक न होकर पहचान करना था इसलिए जिन लोगों का सर्वेक्षण किया जा रहा था, उनका बहुत बड़ा नमूना शामिल नहीं किया

[36]स्त्री एवं शिशु विकास विभाग के माध्यम से 'स्त्रियों पर अत्याचार रोकने के लिए शिक्षा कार्य' की योजना के अंतर्गत।

गया। यह भी ज़रूरी नहीं था कि यह नमूना सारे प्रचलित विश्वासों का प्रतिनिधित्व करे। विभिन्न व्यक्तियों और आर्थिक, जातिगत अथवा धार्मिक समूहों के बीच कभी–कभी व्यापक भिन्नता भी पाई गई। ऐसी महिलाओं को खोजना जिन्हें ज्यादा जानकारी थी और जो बेहतर तौरपर इस जानकारी को व्यक्त भी कर सकती थीं, अक्सर संयोग की बात रही।

2.0 प्राप्त जानकारी

2.1 बच्चों की पैदाइश (सामान्य)

महिलाओं के साथ बातचीत के दौरान हमने सबसे पहले यह पूछना शुरू किया कि लोग बच्चों की ज़रूरत के बारे में और बच्चे पैदा करने या न करने के बारे में क्या सोचते हैं। इसके जवाब में उन्होंने बताया कि बच्चों का होना या न होना 'भगवान की इच्छा' पर निर्भर करता है। भगवान (वे आकाश की ओर संकेत करके कहतीं) ही के हाथ में फ़ैसला करने का अधिकार है, जबकि मनुष्य तो इस फ़ैसले को लागू करने वाले साधन या औज़ार मात्र हैं। उन्होंने इस बात से सहमति प्रकट की कि कभी–कभी महिला या पुरुष में कोई दोष हो सकता है जो इलाज से ठीक किया जा सकता है लेकिन इस इलाज के बाद भी बच्चे होंगे या नहीं इसका फ़ैसला ईश्वर ही करता है। इसलिए कभी–कभी भगवान को कुछ भेंट चढ़ाने पर लोगों के यहां बच्चे और अगर कामना हो तो बेटे भी पैदा हो सकते हैं। महिलाओं के भीतर की गड़बड़ी जो ठीक की जा सकती है जैसे – बच्चेदानी का टेढ़ा होना या बच्चेदानी का मुंह बंद होना है। चर्चा में भाग लेने वाली महिलाएं स्पष्ट रूप से पुरुषों की उन गड़बड़ियों के बारे में नहीं बता पाईं जो इलाज से ठीक की जा सकती हैं।

उन सभी का मत था कि बच्चे होने चाहिए क्योंकि 'वे बुढ़ापे में हमें सहारा देते हैं, वंश का नाम जीवित रखते हैं।' मरने के बाद बच्चों के रूप में उसकी निशानी रह जाती है। इसके अलावा बच्चों का होना अपने आप में बहुत सुखदायक है। बच्चे खुद ही दौलत होते हैं, सबसे पहले कोई यह नहीं पूछता कि कितनी धन–दौलत आपके पास है, बल्कि सबसे पहले यही पूछा जाता है कि आपके बच्चे कितने हैं। अगर किसी के पास ढेरों पैसा और दौलत हो तो भी बच्चों के बिना वह किसी काम की नहीं।

बच्चों की संख्या और बेटे–बेटी के बारे में फिर एक बार लगभग सभी महिलाओं ने एकमत होकर बताया कि दो बेटे और एक बेटी होनी चाहिए। बेटे इसलिए ज़रूरी हैं क्योंकि वे ज़िंदगी भर साथ रहते हैं। ऐसा विश्वास है कि मरते समय अगर बेटा मुंह में

पानी डाले तो मरनेवाले की आत्मा को शांति मिलती है। दो बेटे इसलिए होने चाहिए ताकि अगर एक बेटे को कुछ हो जाए तो दूसरा उसकी जगह ले ले। एक बेटी आवश्यक है क्योंकि वह परिवार की तस्वीर को पूरा करती है। बेटों के लिए एक बहन भी होनी चाहिए जो उन्हें राखी बांधे और उनमें यह अहसास पैदा करे कि ज़रूरत पड़ने पर वे उनकी रक्षा करेंगे। कन्यादान को पुण्य का काम माना जाता है इसलिए भी बेटी का होना ज़रूरी है। लेकिन यह बात सभी जातिगत और धार्मिक समूहों में बार–बार उभरकर सामने आई कि बेटियां पैदा करने की तुलना में बेटे पैदा करना ज्यादा महत्वपूर्ण है। अगर कोई महिला बेटा नहीं पैदा करती तो उसका पति दोबारा शादी कर लेता है, लेकिन महिला बेटी न भी पैदा करे तो ऐसा नहीं होता। ऐसा भी विश्वास है कि कुछ महिलाएं सौत (पति की दूसरी पत्नी) का मुंह देखने के बाद ही बच्चे पैदा करती हैं। यह तर्क पति के दोबारा शादी करने को उचित ठहराने का उपाय ही कहा जा सकता है। नपुंसकता के सिलसिले में पुरुषों के भीतर क्या गड़बड़ी होती है इसकी स्पष्ट जानकारी न होने की बात भी इस विश्वास का संकेत है कि आमतौर पर दोष महिला में ही होता है, पुरुष में नहीं।

तीन बच्चों वाला छोटा परिवार मुख्य रूप से आर्थिक कारणों से अच्छा माना गया। बच्चों को पालना–पोसना, बड़ा करना और उनकी शादियां करना इन दिनों लगातार महंगा होता जा रहा है। तो भी, ज्यादा बच्चों की तुलना में छोटे परिवार का विचार हाल के वर्षों की उपज है और ऐसा लगता है कि 'छोटे परिवार के रिवाज़' ने गांव के लोगों के आचार–विचार पर अच्छा खासा असर डाला है।

गर्भ में बच्चे के आने और बढ़ने के बारे में काफी जीवंत चर्चा हुई। आमतौर पर उन्होंने सामान्य विश्वासों को व्यक्त किया। समझा जाता है कि पुरुष का वीर्य या पानी उस बीज का स्रोत है जो महिला के शरीर में – जिसकी तुलना धरती या खेत से की गई – बोया जाता है। वहां यह बीज बढ़ता है और इस तरह बच्चे का निर्माण होता है। लेकिन यह भी समझा जाता है कि बच्चे की रचना उस रक्त से भी होती है जो दस महीने तक माहवारी के बंद होने से इकट्ठा होता है। बीज को अंकुरित होने के लिए शुरू में गीली मिट्टी की ज़रूरत पड़ती है – इसी विश्वास के आधार पर यौन उत्तेजना और संभोग के दौरान योनि के गीलेपन को (योनि से चिकने पानी के निकलने की प्रक्रिया को) समझाया गया। एक महिला ने बताया कि भ्रूण शुरू–शुरू में अंडे के रूप में विकसित होता है –वैसे ही जैसे चिड़िया का अंडा। फिर धीरे–धीरे जैसे–जैसे हाथ और पैर हिलना शुरू होते हैं, अंडा फूटता है और महिला बच्चे की हरकत महसूस कर सकती है।

प्रतीकात्मक रूप में 'बे–माता' के नाम से पुकारी जाने वाली एक देवी को मिट्टी से बच्चा गढ़ने और उसका लिंग निर्धारित करने के लिए जिम्मेदार माना जाता है। ऐसे अवसर पर 'बे–माता' दो रूपों वाली देवी बन जाती है तथा एक ही समय पर सास और बहू की भूमिका ग्रहण कर लेती हैं। दोनों मिलकर लिंग निर्धारण की मुहिम पर निकलती हैं। आम तौर पर बहू इस काम को पसंद करती है और दक्षता के साथ थोड़ी–सी मिट्टी अपनी उंगलियों में गूंथकर भ्रूण पर लगा देती है जो इस प्रकार बेटा बन जाता है। लेकिन हो सकता है सास जल्दी में हो और अक्सर वह समय नष्ट करने के लिए अपनी बहू से नाराज़ हो जाती है। तब वह अपने हाथ में पकड़ी कुदाल या कुल्हाड़ी से भ्रूण पर चोट करती है और इस प्रकार जल्दी में एक छेद या चीरा बन जाता है जिसके परिणामस्वरूप भ्रूण लड़की का रूप ले लेता है। यहां भी स्पष्ट है कि पहले पुरुष का ही रूप बनता है, मानो वही पसंद की बात काम कर रही हो। स्त्री का लिंग निर्धारण मानो उतनी दक्षता का काम नहीं है और जल्दी से उसे पूरा किया जा सकता है।

महिला के पेट और छाती पर चमड़ी खिंचने से जो धारियां पड़ जाती हैं उनके बारे में एक कहानी है जो इन धारियों के पीछे भी बेमाता का हाथ बताती हैं। ऐसा माना जाता है कि जचकी (बच्चे का जन्म लेना) के बाद महिला को बहुत गहरी नींद नहीं सोना चाहिए क्योंकि संभव है बच्चे की निगरानी में कमी रह जाए। लेकिन थकान की वजह से ज्यादातर महिलाएं गहरी नींद सो जाती हैं। बेमाता उन्हें जगाने आती हैं और अपने नाखूनों से महिला की छाती, जांघों और पेट पर खरोंचती है। खरोंच के ये निशान ज़िंदगी भर महिला के शरीर पर रहते हैं। हमें यह भी बताया गया कि बेमाता लड़कियों को उनकी पहली माहवारी के समय भी खरोंच देती हैं जिससे उनकी छाती और बाहों या जाघों पर समानांतर धारियां पड़ जाती हैं। चूंकि ये दोनों घटनाएं (जचकी और पहली माहवारी) महिला की ज़िंदगी के महत्वपूर्ण मोड़ हैं इसलिए ये निशान बेमाता की ओर से महिला को सतर्क रहने के लिए दी गई चेतावनी का काम करते हैं। हालांकि हम इन निशानों को महज इस रूप में देखते हैं कि वे वय–संधि और गर्भावस्था के दौरान शरीर के तेजी से बढ़ने का नतीजा हैं और उनसे कोई सांस्कृतिक या लोक–मान्यता पर आधारित सबक हासिल नहीं किया जा सकता।

बताया जाता है कि 'मायली' कही जाने वाली सात देवियां महिलाओं की माहवारी के संतुलन/असंतुलन और सामान्य/असामान्य होने, उसकी प्रजनन प्रक्रिया और उसके बच्चों की बीमारियों के लिए जिम्मेदार होती हैं। सही माहवारी, स्वस्थ्य गर्भ और स्वस्थ बच्चों के पीछे एक अच्छी 'मायली' का हाथ बताया जाता है। यह 'मायली' बड़ी चंचल

और अस्थिर होती है। अगर किसी कारणवश नाराज़ हो जाए तो वह किन्हीं खास किस्म की बीमारियों द्वारा बच्चों की जान भी ले लेती है। इनमें एक 'मायली' महिला के स्तनों से सही दूध आने के लिए भी जिम्मेदार होती है।

कुछ हाल के प्रचलित लोक–विश्वास लोगों में ऐसे कुछ आधुनिक तकनीकी आविष्कारों के विरोध में विकसित हो गए हैं जो सरकार की परिवार नियोजन नीति के अंतर्गत जबरदस्ती लागू किए जाते हैं। जैसे एक लोक–विश्वास है कि बेमाता है जो सड़क पर चलते मुसाफिरों से कहती है कि वे आकर उसे एक भारी पत्थर उठाने में मदद करें। पत्थर उठाने पर मुसाफिर यह देखकर दहशत से भर जाते हैं कि उसके नीचे सैंकड़ों छोटे–छोटे जीव फंसे हुए हैं जिन्हें नसबंदी के सरकारी परिवार नियोजन अभियान ने जन्म लेने से रोक रखा है।

चर्चा के दौरान इन लोक–विश्वासों में कुछ खास किस्म के पितृसत्तात्मक मूल्यों की अभिव्यक्ति ने हमारा ध्यान आकर्षित किया। पहली बात तो यही है कि बच्चा पैदा होगा या नहीं, यह फ़ैसला 'भगवान' या 'खुदा' के हाथ में रहता है जो मूल रूप से पुरुष वाचक है। उसके फ़ैसले को लागू करने का काम यानी लिंग निर्धारण, रूप और आकार, बच्चों के रोग–कष्ट आदि तकनीकी ब्यौरों की देखरेख देवियों के हाथों में रहती है जो स्त्री वाचक होती है। कभी–कभी इन देवियों की एक नितांत स्वाधीन सत्ता भी प्रतीत होती है मानो वे किसी भिन्न काल के – संभवतः प्राचीन मातृसत्तात्मक समाज के अवशेष हों।

ऐसी भी मान्यता है कि कुछ दुष्ट प्रकृति वाली महिलाएं भी होती हैं और यदि वे बच्चों को छुएं या उठाएं तो उन्हें नुकसान पहुंचा सकती हैं। इसे 'धक्का मारना' कहा जाता है। यह सिर्फ महिलाओं के सिलसिले में ही होता है, पुरुषों के सिलसिले में कभी नहीं। पुरुष जादू कर सकते हैं, लेकिन वह एक अलग बात होती है।

2.2 स्तनपान

हमारे सवालों में जोर इस बात पर था कि मां का दूध पिलाने का व्यवहारिक और सांस्कृतिक महत्व क्या है और स्वयं महिला की उर्वरता से उसका क्या संभावित संबंध है।

ऐसी मान्यता थी कि जब तक कि इसका उलट सिद्ध न हो, मां का दूध ही बच्चे के लिए सबसे अच्छा होता है। कुछ बच्चे मां का दूध पीते समय फल–फूल नहीं पाते या फिर उनका वजन घटने लगता है। ऐसे बच्चों को प्रायः गाय, भैंस या बकरी का दूध पिलाया जाता है। नवजात शिशुओं के वजन घटने का एक आम कारण 'गाढ़ा दूध' माना जाता

है। मां का दूध जितना पतला होगा बच्चा उतना ही हष्ट–पुष्ट होगा ऐसी मान्यता है। अगर किसी महिला को एक बार गाढ़ा दूध आता है तो संभावना यही है कि हर जचकी के बाद उसे गाढ़ा दूध ही आएगा।

बच्चे को पहली बार दूध पिलाना शुरू करने के बारे में महिलाओं ने एक दिलचस्प बात बताई। बच्चे को पहले दिन से दूध पिलाना शुरू करने का आम रिवाज़ है, लेकिन हमें बताया गया कि कुछ बच्चे पहले कुछ दिनों तक मां का दूध पीने के लिए राजी ही नहीं होते। ऐसे बच्चे को 'अचोपी बच्चा' कहा जाता है और ऐसी मान्यता है कि उसे गंदगी से बेहद परहेज़ होता है। वह तब तक दूध पीने के लिए राजी नहीं होता/होती जब तक कि जचकी के लगभग पांच दिन बाद सौरी को विधिवत साफ करके पवित्र नहीं कर लिया जाता जिस कर्मकाण्ड को 'सूतक उठाना' कहा जाता है। ऐसे मामलों में बच्चे/बच्ची को थोड़ा–सा शहद या बाहरी दूध या पानी दिया जा सकता है। यह माना जाता है कि ऐसा बच्चा इतने दिन बिना कुछ खाए–पिए जिंदा रह सकता है यदि उसकी 'जुबदिया' (बचने की क्षमता) मजबूत है। ज्यादातर महिलाओं ने कहा कि उन्हें विश्वास है ऐसा बच्चा गर्मी के मौसम में भी आमतौर पर बच जाता है। जचकी के बाद मां को गुड़, घी, सोंठ, पोस्तादाना और दूसरी पौष्टिक चीजों से बना 'हरीरा' पिलाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि हरीरा पीने से महिला का दूध बढ़ता है, उसकी ताकत लौटने में मदद मिलती है और दूध–दलिया खाने से भी अधिक दूध उतरता है। जब तक 'सूतक उठना' नहीं होता कोशिश यही रहती है कि मां को केवल हरीरा ही दिया जाए। इसके बाद वह ठोस आहार लेना शुरू करती है। विश्वास है कि अगर मां का पहला भोजन अच्छा और भरपेट होगा तो उसके बाद बच्चे को उसका दूध पचाने में कोई दिक्कत नहीं होती भले ही स्तनपान की बाकी अवधि में मां चाहे जो कुछ खाए।

स्तनपान में एक कठिनाई गाढ़े दूध से संबंधित है जो छाती और चूची (निप्पल) से निकल नहीं पाता। उसे एक खास ढंग से मालिश करके निकाला जाता है। चूची से दूध सहज रूप से निकलता रहे इसके लिए बच्चे को पहली बार दूध पिलाने से पहले आटे की लोई बनाकर चूची पर और उसके इर्द–गिर्द मला जाता है। इससे वह सारा सूखा हुआ तत्व साफ हो जाता है जिसने चूची के छेदों को बंद कर रखा होता है और दूध बिना किसी रुकावट के निकल सकता है। कहा जाता है कि हर चूची से सात छेद बाहर को खुलते हैं, लिहाज़ा 'सात सौकों का दूध' वाला मुहावरा खासतौर पर मां के दूध की तरफ इशारा करता है।

एक पौधे का कंद, जिसे 'नरबोध' कहते हैं (सं. सतावर), दूध और दलिए के साथ पकाकर दूध बढ़ाने के लिए महिलाओं को दिया जा सकता है। कुछ ने कहा कि भारी मुसीबत की हालत में एक केंचुए को पीसकर मां को दूध के साथ पिलाया जा सकता है और यह दूध बढ़ाने का शर्तिया तरीका है, लेकिन इस पर दूसरी महिलाओं ने परेशानी ज़ाहिर करते हुए जोर देकर कहा कि कोई महिला इसके लिए तैयार नहीं होगी।

प्रकट रूप से इन चर्चाओं के दौरान यह जानकारी नहीं मिली कि स्तनपान की अवधि और अगले गर्भ के विलंब के पीछे कोई स्पष्ट संबंध है या नहीं। दूध पिलाती महिला की माहवारी जचकी के बाद तीन महीने से लेकर तीन साल तक के बीच किसी भी समय फिर से शुरू हो सकती है। यह ज़रूर देखा गया कि शिशु की मृत्यु के बाद स्तनपान बंद होते ही अगला गर्भ ठहर जाता है।

स्तनपान की अवधि आमतौर पर अगले बच्चे के जन्म तक की होती है। जब अगला गर्भ ठहरे तीन–चार महीने हो जाते हैं, तब वह महिला पिछले बच्चे को दूध पिलाना बंद कर देती है। आखिरी बच्चे को आमतौर पर सबसे अधिक समय – पांच वर्ष या उससे ज्यादा तक – मां का दूध पिलाया जाता है। जब तक बच्चे को स्तनपान कराया जा रहा हो, उसे सामान्यतः पानी नहीं दिया जाता। आमतौर पर बच्चे को पानी पिलाना तब शुरू करते हैं, जब वह ठोस आहार लेने लगता है और इसके लिए उम्र का कोई निश्चित बंधन नहीं है। सामान्य रूप से होता यह है कि साल भर का होने पर बच्चा अपने बड़ों की थाली से खाना झपटने लगता है और फिर जो वह चाहता है, उसे खाने दिया जाता है।

कुछ महिलाओं का विश्वास था कि मां के दूध से किसी 'मायली' का संबंध नहीं होता, जबकि कुछ महिलाओं के अनुसार 'कोख मायली' (जो नियमित और स्वस्थ माहवारी के लिए जिम्मेदार होती है) स्तनपान की भी देखरेख करती है। हमने महिलाओं से पूछा कि क्या वे महसूस करती हैं कि स्तनपान कराते समय लड़के या लड़की में कोई भेदभाव बरता जाता है? उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि कोई मां अपनी इच्छा से ऐसा भेदभाव नहीं बरतेगी।

हमें महसूस हुआ कि अगर हमें और समय मिलता तो हम स्तनपान के बारे में और अधिक विश्वासों और प्रथाओं को खोज निकालते। अपने भावी उद्देश्यों के लिए हमें जचकी के बाद उर्वरता की वापसी से संबंधित स्तनपान के व्यावहारिक पक्षों की जांच–पड़ताल करनी चाहिए। साथ ही महिला और बच्चे के आहार के उन पहलुओं पर भी नज़र डालनी

चाहिए जो परस्पर संबंधित हैं और यह भी देखना चाहिए कि स्तनपान कितनी बार कराया जाता है खासतौर पर उन महिलाओं के सिलसिले में जो घर से बाहर काम करती हैं।

2.3 माहवारी (मासिक चक्र)

'बच्चों की पैदाइश' और 'मां का दूध' जैसे निरापद विषयों से आगे बढ़कर अब हमने और नाजुक विषयों पर चर्चा शुरू की।

लड़कियों की माहवारी चौदह साल की उम्र में शुरू होनी चाहिए हालांकि महिलाओं ने यह भी कहा कि आजकल लड़कियों को कम उम्र में, लगभग बारह वर्ष के आसपास माहवारी शुरू हो जाती है। यह बात बड़ी उपेक्षा के साथ कही गई क्योंकि माहवारी से उन्हें यह संकेत मिलता है कि लड़की संभोग के लिए तैयार है। महिलाओं ने टिप्पणी की कि आजकल की लड़कियां 'हर बात में जल्दी करती हैं'। दूसरी ओर, अगर लड़की चौदह साल की उम्र पार कर जाए और उसे माहवारी शुरू न हुई तो यह भारी चिंता का कारण होता है कि उसके भीतर कुछ गड़बड़ है।

माहवारी की आदर्श अवधि पांच दिन की मानी जाती है। बिरले मामलों में वह सात या आठ दिन तक जारी रह सकती है। ऐसा विश्वास है कि अगर कोई लड़की अपनी माहवारी के समय दीवार पर अपनी माहवारी के रक्त (या गोबर) से तीन बिंदियां बना दे और आखिरी वाली बिंदी को बीच से काट दे (00θ) तब वह आगे की अपनी सब माहवारियां ढाई दिन में पूरी कर सकती है। लेकिन यह घर की बड़ी—बूढ़ियों की सतर्कता पर निर्भर करता है जो उसे इस बात की शिक्षा दे सकें। वैसे, यह एक नियमित रिवाज़ नहीं जान पड़ता।

मासिक चक्र आमतौर पर 28 से 30 दिन की अवधि का बताया गया। लेकिन मासिक चक्रों की 'नियमितता' के बारे में हम ज्यादा पता नहीं लगा सके क्योंकि लड़कियों की शादी कभी—कभी पहली माहवारी से पहले या उसके बाद जल्द ही कर दी जाती है और छोटी उम्र में ही उसे गर्भ ठहर जाता है। इसके बाद गर्भधारण भी लगातार एक के बाद एक होते रहते हैं और जचकी तथा गर्भ ठहरने के बीच गिनी—चुनी माहवारियां होती हैं। यह बात महिलाओं को अच्छी तरह मालूम थी कि महिला को – पिछली जचकी के बाद फिर से माहवारी होने के पहले भी – दोबारा गर्भ ठहर सकता है, लेकिन यह उनके लिए बड़े रहस्य की बात थी। ऐसा बच्चा, जो मां को एक बार भी माहवारी होने से पहले गर्भ में आया हो, 'लाम का बच्चा' कहलाता है और ऐसा विश्वास है कि आंधी—तूफान के

दौरान उससे आकर्षित होकर बिजली उस पर गिरती है। बचाव के लिए ऐसे बच्चों को पंचधातु का कड़ा पहनाया जाता है ताकि इस खतरे को टाला जा सके।

माहवारी के दौरान दर्द और तकलीफ़ की शिकायत बहुत आम जान पड़ती है। कभी–कभी तबियत बहुत खराब भी हो सकती है और 'बुखार' भी आ सकता है। ऐसी हालत में राहत पहुंचाने के लिए कोई इलाज नहीं बताया गया। महिलाएं आमतौर पर खामोशी से तकलीफ़ सहती हैं। उन्हें यही सलाह दी जाती है कि वे आराम न करें बल्कि दर्द भुलाने के लिए लगातार काम–धाम में लगी रहें। रक्त के बहाव को रोकने के लिए आमतौर पर पुराने कपड़े के टुकड़े इस्तेमाल किए जाते हैं, खासतौर पर बच्चों के फटे पुराने फेंकने लायक कपड़े या दूसरे चिथड़े। इस बात का पूरा ख्याल रखा जाता है कि उनकी साड़ी में दाग–धब्बे नज़र न आएं। जिस महिला के दाग–धब्बे दिखाई दे जाते हैं उसे लापरवाह समझा जाता है और नीची निगाह से देखा जाता है।

माहवारी के दौरान अलग–थलग रहना और छुआछूत बरतना आम है। माना जाता है ऐसे समय में महिलाओं को रसोई में नहीं जाना चाहिए, न ही मिट्टी और कांसे के बर्तन और पानी से भरे बर्तनों को हाथ लगाना चाहिए। वे पीतल के बर्तन छू सकती हैं। माहवारी के दौरान महिला के दूध पीने वाले बच्चे को नंगा करके या नायलोन के कपड़े पहनाकर मां के पास भेजते हैं। छुआछूत पर बड़ी कड़ाई से अमल किया जाता है। ऐसा विश्वास है कि माहवारी के दौरान यदि महिला पुरुष को या किसी और को छू ले तो ज़रूर कोई मुसीबत आएगी, आमतौर पर बीमारी का अंदेशा होता है। किसी महिला को माहवारी हो रही है, इसके लिए एक सांकेतिक शब्द है – 'ऊंचा चौका'। माहवारी के पांचवे दिन मिट्टी से बाल धोने के बाद ही महिला रसोई का काम शुरू कर सकती है। पांचवे दिन से पहले बाल धोने से ऐसा माना जाता है कि नियमित माहवारी नहीं होगी।

आमतौर पर माहवारी को गंदा और शर्मनाक समझा जाता है। खून के बारे में खयाल है कि यह महिला के शरीर का गंदा खून है जो समय–समय पर सफाई के लिए बहता है। शादी के बाद इस खून में नष्ट हुआ वीर्य भी रहता है, वह वीर्य जो बच्चेदानी में गया हो, पर जिससे गर्भ न ठहरा हो, वह बाहर निकलता है। जब यह पूछा गया कि क्या मर्दों को भी सफाई की ऐसी पद्धति की ज़रूरत नहीं पड़ती, तो महिलाओं ने कहा कि वीर्यपात के माध्यम से मर्दों की लगभग रोज़ाना सफाई हो जाती है। लेकिन माहवारी का खून गंदा होता है, जबकि वीर्य गंदा नहीं होता क्योंकि वीर्य अपेक्षाकृत अधिक सरलता से धोया जा

सकता है और इसके अलावा माहवारी के खून के विपरीत जो कई दिनों तक बहता है वीर्य थोड़ी ही देर के लिए निकलता है, भले ही बार–बार निकले।

यदि माहवारी के खून या उसके दाग को कोई और देख ले तो दोष उस महिला का माना जाता है और उसे दंड भी दिया जा सकता है या उसकी भर्त्सना भी की जा सकती है। इस प्रकार लगता है मानो रजोस्राव के साथ अशुभ और अमंगल की भावना भी जुड़ी हुई है।

माहवारी के बारे में जानकारी आमतौर पर बड़ी महिलाओं की आपसी बातचीत से मिलती है, या उन सहेलियों से जिन्हें माहवारी शुरू हो गई है या फिर कभी–कभी दूसरी महिलाओं के साथ खेतों में नित्यकर्म के लिए जाते समय अचानक नज़र पड़ जाने से इसका पता चलता है। ज्यादातर महिलाओं को माहवारी शुरू होने से पहले उसके बारे में कुछ नहीं मालूम था। उनकी तात्कालिक प्रतिक्रिया भय की, यहां तक कि दहशत की थी। इसके बाद ही संभव था कि बड़ी–बूढ़ियां उन्हें इसके बारे में कुछ बताए। लड़कियों से इस तरह के विषयों पर कोई पहले से बात भी नहीं करता। लेकिन महिलाओं का कहना था कि आजकल लड़कियों को सब कुछ पहले से ही पता होता है और वे कहीं अधिक चतुर होती हैं (इसमें एक नापसंदगी का आशय भी छिपा हुआ था)। यह पूछने पर कि 'वे किस तरह और क्यों चतुर हैं?' चट से उत्तर दिया गया कि अब कलयुग है इसलिए ऐसी बातें तो होंगी ही।

यहां भी एक दिलचस्प बात देखी गई कि किस तरह बहुत सी महिलाओं ने माहवारी के बारे में अपने विचार व्यक्त करने के लिए प्राकृतिक उपमाओं का सहारा लिया। उन्होंने माहवारी को एक 'फूल' की उपमा दी है जो पूरी तरह विकसित होने के बाद अपनी लाल पंखुड़ियां गिरा देता है। 'जब तक फूल न हो, फल भी नहीं हो सकता,' इसी तरह जब तक लड़की को माहवारी न हो वह बच्चे पैदा नहीं कर पाएगी और यों माहवारी का प्रतीकात्मक अर्थ फूल के झड़ने के रूप में लिया गया। (कभी–कभी 'फूल' शब्द का इस्तेमाल बच्चेदानी के अर्थ में किया जाता है), खासतौर पर जब किसी महिला की बच्चेदानी लटककर बाहर आ जाती है और दिखाई देने लगती है। यह एक परिचित गड़बड़ी है जिसके बारे में आमतौर पर कहा जाता है कि 'उसका फूल बाहर आ गया है'।

बातचीत के दौरान योनि के अत्यंत संवेदनशील अंग भग–शिश्न या भगशेफ (क्लाइटोरिस) को भी 'फूल' कहकर बताया। माहवारी के लिए 'फूल' के बिम्ब का इस्तेमाल करने के पीछे दिलचस्प बात यह है कि वह प्रकट रूप से गंदगी और शर्म के उस रवैये से मुक्त

हैं, जो पहले के प्रचलित विश्वासों और प्रथाओं में नज़र आता है। शायद यह एक पूर्ववर्ती गैर–पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था का अवशेष है और इसलिए प्रचलित रहा है क्योंकि ये लोग अब भी जंगलों से 'सेमल', 'आम' और 'महुआ' जैसे उन भव्य फलदायी वृक्षों से जुड़े हुए हैं जहां प्राकृतिक प्रजनन के गौरवपूर्ण चक्र में फूलों का एक अच्छा खासा हिस्सा विकसित होकर फल बन जाता है।

2.4 योनि स्राव

रक्त के अलावा योनि से होने वाले अन्य सभी प्रकार के स्राव सामान्य रूप से 'धात' कहकर जाने जाते हैं। धात विभिन्न प्रकार की हो सकती है, जैसे–

रंग – सफेद, पीला या हरापन लिए हुए

मात्रा – व्यापक रूप से भिन्न

गाढ़ापन – गाढ़ा ('नैनो घांई' या मलाई जैसा), पनीला (चूनापानी), चिकना ('लरोंदा घांई' या लार जैसा), दूधिया ('मही घांई' या छाछ जैसा), मवाद जैसा।

अंतिम दो प्रकार के स्रावों में कई बार संभव है कि साथ में जलन और दर्द भी हो। ऐसा विश्वास है कि पहले के प्रकार 'कमज़ोरी' पैदा करते हैं, खासतौर पर 'चूने के पानी' जैसा स्राव जिसका कारण हड्डियों से (कैल्शियम का?) रिसाव है। हड्डियां छन जाती हैं।

सामान्य रूप से कमज़ोरी के साथ धात इस हद तक जुड़ी हुई थी कि दोनों का अर्थ लगभग एक–सा था। बिना किसी अपवाद के महिलाओं ने कहा कि धात कमज़ोरी पैदा करती है। सभी महिलाओं में यह पाई जाती है इसलिए, सभी महिलाएं कमज़ोर होती हैं।

हमें यह जानने में खास दिलचस्पी थी कि क्या किसी महिला ने धात के नमूने में होने वाले नियमित परिवर्तनों को पहचाना होगा या नहीं। लगभग सभी महिलाओं ने कहा कि विशेष रूप से कोई परिवर्तन नहीं दिखाई दिया था लेकिन कुछ और छानबीन करने पर दो महिलाओं – हमारी गाइड प्यारीबाई और तिंदवाड़ा गांव की कारोबाई ने बताया कि उन्होंने माहवारी के बाद और माहवारी से एक–दो दिन पहले भी गीला, लार जैसा साफ और कभी–कभी तार की तरह खिंचनेवाला स्राव देखा था। जिसे वे 'पानी' कहना बेहतर समझती थीं। प्यारी (जिसकी रजोनिवृत्ति हुए तीन साल हो गए) ने याद करके बताया कि यह पानी सिर से नहाने (माहवारी के बाद) के कुछ दिन बाद आता था जबकि कारोबाई का कहना था कि उसके सिलसिले में यह माहवारी खत्म होने के लगभग दस दिन बाद

आता था जिसके बाद सूखापन शुरू होता था या दूसरी तरह की धात शुरू होती थी जो दो हफ्ते बाद नियमित रूप से आने वाली उसकी माहवारी से ठीक पहले तक आती रहती थी। कारोबाई ने कहा कि पहले उसने इसके बारे में ज्यादा नहीं सोचा था, लेकिन चूंकि वह और उसका पति जन्म नियंत्रण के लिए एक प्रकार की 'रिदम' इस्तेमाल करते हैं जिसमें सिर के नहाने के 5 दिन बाद तक (यानी उसके सामान्य रूप से 30 दिन के मासिक चक्र के पहले 20 दिन तक) संयम या वीर्य को बाहर गिराने की पद्धति अपनाई जाती है। इसलिए उसने अक्सर बड़ी उत्सुकता से देखा था कि लार जैसा पानी इसी अवधि में आता था और फिर बंद हो जाता था। कारोबाई और उसके पति ने इस प्रकार केवल दो बेटे पैदा किए थे। इसके पीछे काफी हद तक कारोबाई के नियमित मासिक चक्रों का भी योगदान था।

संभोग की आशा में यौन उत्तेजना के समय 'नीचे' एक और किस्म के साफ, चिकने और कुछ–कुछ लार की तरह के पानी का अनुभव भी व्यापक रूप से महिलाओं ने स्वीकार किया। प्यारीबाई, कारोबाई और द्रोपदी (जो पहले ही अपनी चिकनी धात के नियमित क्रम को पहचानना सीख गई थीं) ने इस तात्कालिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप होने वाले योनि स्राव और आमतौर पर कुछ दिनों तक जारी रहने वाले अपेक्षाकृत निरंतर रिसाव के बीच के अंतर को पहचाना। लेकिन ज्यादातर महिलाएं इस चर्चा के दौरान उलझन में पड़ी रहीं।

आमतौर पर धात का गिरना शादी के बाद और विशेष रूप से बच्चे की पैदाइश के बाद देखा जाता है। ख्याल यही था कि पहली माहवारी से पहले या बाद में सामान्य तौरपर लड़कियों को धात नहीं गिरती। लेकिन चूंकि माहवारी के शुरू होने के समय तक बहुत कम लड़कियां कुंवारी रहती हैं इसलिए यह बहुत साफ नहीं हो पाया कि क्या शादी के पहले ऐसी लड़की को धात का अनुभव होता है या नहीं, जिसकी माहवारी शुरू हो चुकी हो। द्रोपदी ने, जिसकी लड़की की शादी कुछ साल तक टलने के बाद हुई थी, ज़ोर देकर कहा कि माहवारी शुरू होने के बाद लड़कियों को भी धात गिरती है।

प्यारीबाई ने बताया कि 'पकाव' कहा जाने वाला एक स्राव सामान्य रूप से सभी गर्भवती महिलाओं में पाया जाता है। यह जानकारी प्यारीबाई का व्यक्तिगत योगदान था लेकिन उन्होंने ज़ोर दिया कि 'पकाव' धात नहीं है बल्कि एक ऐसा रिसाव है जो गर्भ में बच्चे के (फल की तरह) 'पकने' के कारण होता है।

इन ग्रामीण महिलाओं में धात का डॉक्टरी इलाज विरले ही किया जाता है। उन मामलों में जब अधिक मात्रा में धात के गिरने के साथ भारी तकलीफ़ या दर्द या अंग सुन्न पड़ जाए, सिर्फ उसी हालत में इसके उपचार का प्रयास किया जाता है।

यहां एक बार फिर हमें पितृसत्तात्मक समाज की पाबंदियां, महिलाओं की एक सामान्य विशेषता के प्रति उनके रवैये को प्रभावित करती नज़र आती है। जिसमें एकमत होकर स्वीकार किया जाता है कि सभी महिलाएं कमज़ोर होती हैं और ज्यादा आसानी से बीमार पड़ सकती हैं। उसके अनुसार महिलाएं कमज़ोर क्यों होती हैं इस सवाल का एक ही जवाब है – धात की वजह से।

2.5 यौन संबंध

इस संबंध में बात करने के सिलसिले में जितनी हिचकिचाहट की आशंका हमें थी, उससे बहुत कम नज़र आई। यह ठीक है कि जब मर्द और बच्चे आसपास रहते थे तो महिलाएं बात नहीं करती थीं, लेकिन एक निरापद और उचित स्थान का प्रबंध रहने पर काफी खुले ढंग से चर्चा होती थी। यह भी महसूस किया गया कि महिलाएं इस संबंध में अपने अनुभवों को एक–दूसरे से बांटना पसंद करती हैं। इस चर्चा के दौरान अश्लीलता की कोई प्रवृत्ति हमें महसूस नहीं हुई। इसके विपरीत चिंता और लगाव दिखाई दिया। हमने युवा नवविवाहित जोड़ों के अनुभवों के बारे में चर्चा से बातचीत की शुरूआत की। अधिकांश महिलाओं ने खुद अपने या अपने बच्चों के अनुभवों के आधार पर जवाब दिए। खासतौर पर उनके अपने मामलों में शादी अक्सर पहली माहवारी से पहले ही हो गई थी।

जब लड़की की माहवारी शुरू होने के बाद ज्यादातर संभावना इस बात की होती है कि सास यह तय करती है कि कब लड़की अपने पति के साथ सोना शुरू करे। अगर लड़की माहवारी शुरू होने के बाद भी बहुत कच्ची जान पड़े तो पहले यौन संबंध के लिए तब तक नहीं उकसाया जाता, जब तक लड़की परिवार में अच्छी तरह रच–बस न जाए या जब तक कि स्वयं उसमें इस ओर आकर्षित होने के चिन्ह नज़र न आएं, इच्छा न दिखाई दे (उसका मन डोलने लगता है)। चूंकि शादी छोटी उम्र में कर दी जाती है इसलिए आरंभिक महीनों में लड़की को बार–बार मायके भेजा जाता है ताकि उपयुक्त समय तक संबंधों को टाला जा सके।

यौन संबंधों में हमेशा पुरुष से ही पहल करने की अपेक्षा की जाती है। सभी महिलाओं का कहना था कि पहला यौन संबंधित अनुभव पीड़ादायक और अटपटा था। लेकिन

महीने–दो महीने में वे शारीरिक संबंधों की अभ्यस्त हो गईं और उन्हें पसंद भी करने लगीं। संबंधों की बारम्बारता का निर्धारण पुरुष द्वारा किया जाता है जिसके सामने महिला को अपना शरीर समर्पित करना ही चाहिए, भले ही वह ऐसा न भी करना चाहे। अगर वह इंकार करे तो उसे पीटना भी उचित है। संभोग की बारम्बारता, बच्चे की पैदाइश और उम्र के साथ घटती चली जाती है। शुरू–शुरू में वह एक रात में दो या तीन बार तक हो सकता है और माहवारी को छोड़कर लगभग हर रात भी हो सकता है। दो या तीन बच्चों के बाद वह घटकर हफ्ते या दस दिन में एक बार तक ही रह जाता है। ऐसा इसलिए क्योंकि जचकी के बाद महिला कमज़ोर या उदासीन हो जाती है या थकान, कमज़ोरी और माहवारी के फिर से शुरू होने पर गर्भ ठहरने की आशंका में संभोग से डरने लगती है। घर के बाहर के कामकाज के साथ बच्चों को पालना–पोसना और गृहस्थी संभालना महिला के लिए 'दोहरा बोझ' साबित होते हैं। इसके अलावा बच्चों के बड़े होने के साथ–साथ एकांत भी घटता चला जाता है जिसकी वजह से संभोग की बारम्बारता भी कम हो जाती है। तो भी, संभव है आदमी की इच्छा अधिक प्रबल सिद्ध हो और अगर महिला 'ना' भी कहे तब भी उसे कोई अंतर न पड़े। पुरुष की इच्छा को ठुकराने पर पीटे जाने की बजाय महिला समर्पण करना ही बेहतर समझती है।

लेकिन माहवारी के दौरान संभोग की सख्त मनाही है। इस नियम को न मानने पर विश्वास है कि औरत–मर्द दोनों को गंभीर किस्म की बीमारी हो सकती है। 'नवदुर्गा', 'ऋषि पंचमी', 'तीज', 'शिवरात्रि', 'मुहर्रम' और 'रमजान' जैसे पवित्र दिनों में संयम की सलाह दी जाती है। हालांकि इस सलाह पर कड़ाई से अमल नहीं किया जाता। गर्भवती होने पर भी जब बच्चा हिलना–डुलना शुरू कर दे तब संभोग से परहेज करने की सलाह दी जाती है। ऐसा किसी स्वास्थ्य संबंधी कारण से नहीं, बल्कि इसलिए कि संभव है कि भ्रूण लड़की हो और अगर पुरुष का वीर्य उसके संपर्क में आ जाए तो इससे आदमी को पाप लगेगा। हालांकि इस बात पर भी बहुत ध्यान नहीं दिया जाता।

प्यारीबाई और एक बुज़ुर्ग कहार महिला तिजिया – दोनों ने कहा कि अनेक अवसरों पर महिला अपने पति के साथ संभोग करने के लिए सक्रिय रूप से पहल कर सकती है, लेकिन किसी अन्य पुरुष की तरफ यौन संबंधों के लिए आकर्षित होने का ख्याल भी मन में लाना पाप है।

पहले संभोग के अवसर पर (योनिच्छद से) खून निकलने के बारे में सभी महिलाओं ने कहा कि यदि महिला ने पहले कभी यौन संबंध नहीं रखे हैं तो ऐसा होना ही चाहिए। अगर नहीं होता तो लड़की के चरित्र में कुछ गड़बड़ी अवश्य है। एक मुस्लिम महिला

खातून बी ने लड़की के कौमार्य के बारे में शहरी मुसलमानों की अपेक्षाओं की विस्तृत चर्चा करते हुए उनमें प्रचलित एक परंपरा के बारे में बताया। खातून बी अब भोपाल में रहती हैं और अपने 'पीहर' में आई हुई थीं। उन्होंने बताया कि वधु के साथ एक पलंग और एक सफेद चादर भेजी जाती है जो शादी की रात इस्तेमाल होती है। अगर लड़की कुंवारी है तो उसका खून अवश्य बहना चाहिए जिससे चादर पर दाग लग जाएगा। अगले दिन ये धब्बे लड़की के माता–पिता और अन्य रिश्तेदारों को दिखाए जाते हैं और उसके बाद ही सब मिलकर खाना खाते हैं। खातून ने आगे कहा कि आजकल खासतौर पर यह रिवाज़ बहुत महत्वपूर्ण हो गया है क्योंकि लड़कियां 'बिगड़ती' जा रही हैं।

हमारे एक प्रश्न के उत्तर में जो कहा गया उसने हमें काफी विचलित किया। हमने पूछा था कि जब कभी किसी महिला को उसकी इच्छा न होने के बावजूद संभोग के लिए मजबूर किया जाए (जो हमारे ख्याल में बलात्कार के बराबर है) तो वह महिला क्या महसूस करती है? इसके जवाब में महिलाएं हंसीं और कुछ देर तक एक–दूसरे की तरफ देखती रहीं। फिर उन्होंने कहा कि शुरू में गुस्सा आता है, 'लेकिन संबंध बन जाने के बाद अच्छा लगता है' और सभी शिकायतें दूर हो जाती हैं।

चर्चा के दौरान बहुत कम महिलाओं ने संभोग पूर्व यौन–क्रीड़ा की बात स्वीकार की और यह भी कि संभोग के दौरान महिला को भी चरम उत्तेजना होती है। जब हमने पूछा कि क्या महिला अपनी शारीरिक ज़रूरत अपने पति को बता सकती है तो एक महिला ने कहा 'सिर्फ तभी जब वह उसके बारे में पूछे'। इस उत्तर में यह महत्वपूर्ण अभिप्राय छिपा हुआ था कि ऐसे पति भी होते हैं जो इतने संवेदनशील और चिंतित हों कि पूछने की ज़रूरत महसूस करें। ज्यादातर महिलाओं का ख्याल था कि महिला को यौन संबंधों में पहल नहीं करनी चाहिए क्योंकि यह पति के मन में उसके चरित्र के प्रति शक पैदा कर सकता है। इतनी जागरूकता और मुखरता के बावजूद महिलाओं ने इस बात से पूरी तरह इंकार किया कि उन्हें हस्तमैथुन की कोई जानकारी है। समलैंगिक संबंधों की जानकारी से भी अनभिज्ञता प्रकट की गई।

यह आम विश्वास है कि माहवारी के बाद के पहले दो–तीन दिन गर्भधारण के लिए सर्वश्रेष्ठ होते हैं। ऐसा इसलिए कि फूल (इस संदर्भ में बच्चादानी या गर्भ) 'खराब खून' के बाहर निकल जाने से साफ हो जाता है और आदमी के बीज को ग्रहण करने के लिए तैयार होता है। एक मान्यता यह भी बताई गई कि यदि कोई आदमी घर पर है और तब भी इन दिनों के दौरान अपनी पत्नी से संभोग नहीं करता तो वह अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर रहा है ऐसा माना जाता है।

2.6 गर्भनिरोध और नसबंदी

महिलाओं को गर्भनिरोध के जिन साधनों के बारे में जानकारी थी, वे थे लूप और कंडोम ('निरोध' या 'फुग्गा')। निरोध का इस्तेमाल पुरुषों द्वारा अटपटा समझा जाता है और महिलाएं उसे भरोसे के काबिल नहीं समझती थीं। सामान्य रूप से यह उपलब्ध भी नहीं होता और उसके इस्तेमाल पर महिलाओं का कोई नियंत्रण नहीं रहता। जिन थोड़ी–बहुत महिलाओं ने लूप लगवाया था उन्हें दर्द और खून बहने की तकलीफ़ के कारण जल्द ही निकलवाना पड़ा। ऐसा विश्वास है कि आदिवासी रझर और गौंड महिलाएं गर्भधारण से बचने के लिए महुए की शराब पीती हैं। माना जाता है कि अल्कोहल शरीर में इतनी गर्मी पैदा कर देता है कि गर्भ गिर जाता है।

आदिवासियों में (रझर और गौंड) गर्भपात करवाना पाप समझा जाता है जिसके दंड स्वरूप उस परिवार को बिरादरी को 'रोटी' देनी (बिरादरी को खाना खिलाना) पड़ती है, बिरादरी उसे नीची निगाह से देखती है। परंतु अपने आप हुए गर्भपात पर कोई नियम नहीं है। इस कारण जो महिला किसी भी कारण से और बच्चे नहीं चाहती वह घरेलू इलाज करके चुपचाप गर्भ गिराने का प्रयास करती है जिसमें कई बार महिलाओं की जान भी चली जाती है। महिला यदि गर्भ गिराने में सफल हो गई व किसी को शक हुआ कि गर्भ गिराया गया है तो इस स्थिति में उनके देवता जिस व्यक्ति के शरीर में आते हैं उससे 'बैठक' करवाकर पूछा जाता है। यदि देवता कह देते हैं कि अमुक चीज को लांघने से या अमुक महिला को छूने से या देवताओं की उपेक्षा करने के फलस्वरूप मिली फटकार से या समय पर देवी–देवताओं की यथेष्ट रूप से पूजा न करने के कारण या भूत–चुड़ैल के प्रभाव के कारण गर्भ गिरा है तो उस परिवार को बिरादरी के दंड से छुटकारा मिल जाता है। इस तरह इन बिरादरियों में देवी–देवताओं की अहम् निर्णायक भूमिका है।

नसबंदी के संबंध में पता चला कि पुरुषों की तुलना में महिलाओं की नसबंदी ज्यादा होती हैं। इसके अनेक कारण बताए गए जैसे अगर आदमी की नसबंदी नाकाम हो जाती है (जो असंभव नहीं है और कई उदाहरण भी दिए गए) तब महिला को किसी दूसरे आदमी के साथ अनैतिक संबंध रखने का संदेह भुगतना पड़ता है। यह भी माना जाता है कि 'ऑपरेशन' से पुरुषों में कमज़ोरी आ जाती है। महिलाओं का कहना है चूंकि 'महिलाओं की तुलना में पुरुष ज्यादा मेहनत का काम करते हैं' अतः बेहतर यही है कि महिला ऑपरेशन कराए। (जिन पुरुषों की नसबंदी हो चुकी थी, उनमें से अधिकांश का ऑपरेशन

इमरजेंसी के दौरान किया गया था।) यह भी बताया गया कि नसबंदी के बाद वीर्य पतला हो जाता है इसका कारण यह बताया गया कि वीर्य ('पानी') छन जाता है।

महिला नसबंदी के जो ऑपरेशन इन दिनों किए जा रहे हैं वे हफ़्ते में एक बार सार्वजनिक स्वास्थ्य केंद्र में होशंगाबाद के एक प्रशिक्षित दल द्वारा लैप्रोस्कोप से किए जाते हैं। बहुत सी महिलाएं ऑपरेशन कराने के दबाव का विरोध कर रही हैं। वे महसूस करती हैं कि ऑपरेशन कराने वाली अधिकांश महिलाओं को बाद में कमज़ोरी की शिकायत रहती है जिससे वे अपने रोज़मर्रा के कामों को ठीक से नहीं कर पातीं या फिर उन्हें कोई गंभीर बीमारी हो जाती है।

वीर्य को योनि के बाहर गिराने ('पानी बाहर गिराने') की बात व्यक्तिगत रूप से एक महिला ने बताई। दूसरी महिलाओं ने कहा कि यह केवल उसी के संदर्भ में संभव है क्योंकि उसका पति नर्म स्वभाव वाला है और उसकी बात मानता है जो कि अन्य पति नहीं करते। यह महिला और उसका पति (जो किसान था) आमतौर पर एक किस्म की रिद्म का भी पालन करते थे और माहवारी समाप्त होने (पांचवे दिन) के बाद पंद्रह दिन तक संभोग से परहेज़ करते थे। वे जन्म नियंत्रण में भी सफल रहे और उनके सिर्फ दो बेटे हैं जो अब जवान हो चुके हैं।

2.7 गर्भपात और शिशु हत्या

जिन वर्षों के दौरान महिलाएं बच्चे पैदा करने के काबिल रहती हैं, उनमें अधिकांश महिलाओं को अपने आप गर्भ गिर जाने का अनुभव भी होता है। किसी भी तरह के सक्रिय हस्तक्षेप द्वारा गर्भपात आम नहीं है। यह इसलिए कि लगभग सभी मामलों में पुरुष की रजामंदी हासिल नहीं की जा सकती। अगर पति को गर्भ ठहरने की बात मालूम न हो तो संभव है कि महिला अपने बल पर गर्भपात कराने के लिए प्रयास कर सकती है।

आमतौर पर दो जचकियों के बीच महिलाओं को ज्यादा वक्त नहीं मिलता और इस अवधि में (स्तनपानजनित रजो–अवरोध के कारण) संभव है माहवारी बिल्कुल बंद रहे या अनियमित हो जाए। इसलिए यदि महिला को गर्भ ठहरने पर उल्टियों की शिकायत न होती हो, तो हो सकता है उसे गर्भ ठहरने का तब तक पता न चले जब तक भ्रूण हिलना–डुलना न शुरू कर दे और ऐसा गर्भ के चौथे–पांचवे महीने में जाकर होता है। चूंकि गर्भपात आमतौर पर हमल ठहरने के तीसरे महीने तक ही उपयुक्त बताया जाता है इसलिए यह विकल्प अकसर रहता ही नहीं। तब भी सभी महिलाओं ने बताया कि उन्हें बाज़ार में उपलब्ध पैकटों में मिलने वाली गोलियों के इस्तेमाल की जानकारी है जिन्हें

खाने से गर्भ गिराया जा सकता है। इन गोलियों में भारी मात्रा में एस्ट्रोजन–प्रोजेस्ट्रोन होती है। आमतौर पर महिलाएं इस विश्वास के साथ इन्हें खाती हैं कि इससे गर्भ के भीतर जो कुछ है, उसे साफ करके रुकी हुई माहवारी शुरू हो जाएगी। लेकिन यह एक गलतफ़हमी है क्योंकि इन गोलियों से हमल नहीं गिरता। चिंता की बात यह है कि ये गोलियां जन्म लेने वाले बच्चे में गड़बड़ियां पैदा कर सकती हैं। एक महिला ने बनखेड़ी के किसी प्राइवेट डॉक्टर से गर्भपात के लिए एक इंजेक्शन लेने की भी सूचना दी। इंजेक्शन का नाम उसे मालूम नहीं था। इस इंजेक्शन से गर्भपात तो फ़ौरन हो गया था लेकिन उसके बाद तुरंत और काफी देर तक चलने वाली अनेक गड़बड़ियां भी पैदा हो गई थीं, जैसे कमर और सिर में दर्द, कमज़ोरी आदि।

गर्भपात के लिए एक देसी दवाई यह बताई गई कि 'भटकटैया' (कंटकारी) नामक पौधे की जड़ को लौंग के साथ पीसकर बिना दूध की गुड़ वाली चाय के साथ पांच दिन तक लेना चाहिए। (भटकटैया में स्टेरॉइड हार्मोनों की अच्छी खासी मात्रा होती है)। इस दवाई को लेने पर गर्भ फ़ौरन नहीं गिरता, बल्कि उसे नियमित माहवारी होने लगती है और इसी खून के साथ भ्रूण बाहर चला जाता है। ऐसा माना जाता है कि इस दवा से हमल 'घुल' जाता है। गर्भपात होने के बाद महिला को गुड़ के साथ छाछ (गोरस) पीना चाहिए क्योंकि उसकी तासीर ठंडी होती है।

पति के बिना ('अवैध') गर्भ से पैदा बच्चों के बारे में बहुतों का विश्वास है कि भगवान ही नाराज़ होकर उन्हें मार देता है लेकिन एक महिला ने कहा कि यदि भगवान ऐसा नहीं करता तो लोग ही ऐसा कर देंगे। शिशु हत्या की बात पति के बिना बच्चे के सिलसिले में सुनाई दी।

लिंगभेद पर आधारित स्त्री शिशुओं की हत्या से इंकार किया गया। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि ऐसी कोई जघन्य प्रथा हमारे इलाके में प्रचलित नहीं है और नवजात शिशुओं के साथ उनकी मांएं कोई भेदभाव नहीं बरततीं।

2.8 स्त्री रोग संबंधी समस्याएं

सामान्यतः माहवारी की गड़बड़ियां जिनमें बहुत ज्यादा और निरंतर रक्त बहता हो, 'पैर की बीमारी' कही जाती है। मान्यता है कि यदि महिलाएं माहवारी के दौरान छुआछूत के नियमों का ठीक से पालन न करें या माहवारी खत्म होने से पहले सिर से नहा लें तो इससे भी यह बीमारी हो सकती है। कभी–कभी यह किसी महिला के टोने–टोटके की वजह से भी हो सकती है।

पेशाब में जलन और पेडू में दर्द यानी उन महिलाओं का एक और आम कष्टदायक रोग है। इसके अलावा उपदंश और सुज़ाक जैसे यौन संसर्गजनित रोगों के बारे में साफ–साफ पता नहीं चल पाया। धात में पीप हो सकती है और उसके साथ दर्द और छाले भी हो सकते हैं। हम पहले ही विस्तार से बता चुके हैं कि 'धात' को बीमारी का कारण और लक्षण, दोनों ही माना जाता है (देखिए उपखंड 2.4) और महिला होने का ऐसा अभिन्न पहलू समझा जाता है कि उस पर तब तक ध्यान नहीं दिया जाता, जब तक कि तकलीफ़ असहनीय न हो जाए।

3.0 जांच के प्रति लोगों का रवैय्या

जैसा कि हमने बताया तिंदवाड़ा और पलिया पिपरिया दोनों गांवों के बीच महिलाओं का रवैय्या लगभग पूरी तरह भिन्न था और ऐसा सिर्फ परिचय की भिन्नता के कारण था। पलिया पिपरिया की महिलाओं को हम वर्षों से व्यक्तिगत रूप से जानते थे। इसलिए तिंदवाड़ा में जब हमने संपर्क शुरू किया तो महिलाएं और लड़कियां महज हमें देखने, हमारी बातें सुनने और कभी–कभी उकसाने या शरारत करने के लिए इकट्ठा होती थीं।

अगला रवैय्या हमारे प्रश्नों के उत्तर देने में हिचकिचाहट का था। सबसे पहले तो उन्हें यह बात ही समझ में नहीं आई जिसे हम बार–बार दोहराते भी रहे कि हम सचमुच उनके विश्वासों, प्रथाओं और अनुभवों के बारे में उनसे सीखने के इच्छुक हैं। चूंकि यही वास्तविकता थी इसलिए वे अचरज प्रकट करती थीं कि महिला होने के नाते हम इन चीजों के बारे में पहले से क्यों नहीं जानते? हमारे कुछ सवाल वास्तव में महत्वपूर्ण जान पड़ते थे इसलिए शुरू में वे ऐसे (उनके अनुसार) सरल प्रश्नों को सुनकर भौंचक्की रह जाती थीं जैसे 'सिर्फ महिलाओं को ही माहवारी क्यों होती है?' और 'माहवारी के दौरान निकलने वाला खून कहां से आता है?' फिर इसके अलावा यह अपेक्षा भी थी, भले ही केवल तिंदवाड़ा में, कि हम जैसे शिक्षित लोगों को उन जैसे गैर–साक्षर ग्रामवासियों से सीखने की बजाय उन्हें सिखाना चाहिए।

संदेह की भावना के अनेक स्तर थे। महिलाओं के जवाबों में अक्सर सतर्कता झलकती थी। वे लगातार इस बात का अंदाज़ा लगाने की कोशिश करती थीं कि हमारी दिलचस्पी कितनी सच्ची है और वे हमसे व्यक्तिगत प्रश्न भी पूछतीं – यह जानने के लिए कि क्या हम भी 'सामान्य' जीवन जीते हैं। विशेष रूप से हमारे जाने के बाद मर्दों के उकसावे पर संदेह का दायरा बढ़कर इस जिज्ञासा को भी शामिल कर लेता कि हम जो ब्यौरे दर्ज़ कर रहे थे उनका हम क्या करने वाले थे। इस जिज्ञासा का संदर्भ यह था कि जब हम

में से एक सवाल पूछ रही होती तो दूसरी अक्सर वाक्यों, शब्दों और ब्यौरों को दर्ज़ कर रही होती थी ताकि उन्हें हम भूल न जाएं।

एक बुज़ुर्ग महिला जो बहुत ऊंचा सुनती थीं, वे यह नहीं समझ पा रही थीं कि हम (माहवारी के बारे में) ये 'गंदे' सवाल बार–बार क्यों पूछ रहे थे। उन्हें यह जानकर निराशा हुई कि हम दवा–दारू या डॉक्टरी इलाज या सहायता देने नहीं आए हैं और वह ज़ोर–ज़ोर से बड़बड़ाते और गुस्से में हमें गालियां देते हुए बाहर चली गईं। लेकिन तब तक अन्य महिलाओं ने हमें इस घटना को नज़रअंदाज करने के लिए कहा।

इस दौरान हमें अपनी गतिविधि के प्रति एक विरोध के भाव का अहसास बराबर होता रहा। विरोध का यह भाव बुनियादी तौरपर ऊंची जाति के अपेक्षाकृत खुशहाल किसान परिवारों के कुछ पुरुषों में नज़र आया जिन्हें केवल इसी बात से खतरा महसूस हुआ कि हम उनके घर जाकर उनकी महिलाओं से बात कर रहे हैं। कुछ आधी–अधूरी बातें या 'ऑपरेशन' जैसे शब्द भी उनके कानों में पड़े जिससे उन्हें लगा कि हम परिवार नियोजन की किसी मुहिम पर निकले हैं और संभव है कि हम सरकार के लिए काम कर रहे हैं। एक बार तो बातचीत के दौरान एक आदमी बीच में टपक पड़ा और उसने ज़ोर से विरोध किया कि यदि हम महिलाओं की नसबंदी कराने में दिलचस्पी रखते हैं तो फिर बूढ़ी महिलाओं के साथ बात करके समय क्यों नष्ट कर रहे हैं? एक बार गांव के कोटवार ने हमें बताया कि गांव के दो–एक पुरुषों ने उनसे शिकायत की है। जब हमने अपना उद्देश्य उसे बताया तो वह हमारी बात समझ गया और उसने कहा कि वह पुरुषों की गलतफ़हमी दूर करेगा। व्यक्तिगत रूप से दो महिलाओं को, जो शुरू में बड़ी ललक के साथ हमें जानकारी देती रही थीं, उनके पतियों और बेटों ने उन्हें धमकाया जिसकी वजह से बाद में वे चुप हो गईं।

हमने इन भटकाने वाले रवैय्यों से निपटने के लिए कई उपाय किए और आंशिक रूप से उन्हें दूर भी किया। लेकिन इस प्रारंभिक जांच के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए सबसे अच्छा समाधान हमें यही नज़र आया कि हम वहां से हटकर पलिया पिपरिया गांव की परिचित महिलाओं के साथ बातचीत करें, जिनमें इस तरह की घबराहट या उदासीनता की समस्या नहीं थी। इसके बावजूद बेहद नाजुक सवालों पर, खासतौर पर यौन व्यवहार के बारे में, हमने बहुत गिनी–चुनी महिलाओं के साथ बात की। कभी–कभी तो व्यक्तिगत रूप से एक–एक महिला के साथ मिलकर चर्चा की गई।

लेकिन इन सभी नकारात्मक और भटकाने वाले रवैय्यों का ब्यौरा देने के बाद भी हम पर जो सबसे बड़ा प्रभाव पड़ा, वह यही कि जब चर्चा के लिए अनुकूल वातावरण मिलता है

तो महिलाएं खुलेपन से बात करती हैं। कुछ ऐसे विषयों के बारे में भी वे बातचीत करने को अत्यंत उत्सुक दिखाई दीं जिन्हें लेकर खुद हमारे मन में संकोच था। महिलाओं में हमें एकाग्रता और गंभीरता की अच्छी खासी क्षमता नज़र आई, साथ ही हंसी–मज़ाक और प्रसन्नचित्त व्यावहारिकता भी दिखाई दी। आमतौर पर इस समूह में शायद माहवारी के दौरान महिला की हालत को छोड़कर विवाहेतर संबंधों, गर्भपात या शिशु हत्या जैसे विषयों से शरमाने या उनसे इंकार करने की बहुत कम प्रवृत्ति नज़र आई। इससे हमें अहसास हुआ कि यदि हम एक सही तरीका विकसित कर सकें तो अधिकांश महिलाएं प्रजनन जागरूकता की शिक्षा का स्वागत करेंगी, उसे समझेंगी और उपयोग में भी लाएंगी।

4.0 निष्कर्ष (सुझावों के साथ)

बावजूद इसके हमारे बहुत से प्रश्न आंशिक रूप से या पूरी तरह अनुत्तरित रह गए हैं। हमारा अनुमान है कि धीरे–धीरे हम और भी बहुत से विश्वासों और प्रथाओं को खोजकर सामने ला सकेंगे जो अनेक कारणों से अभिव्यक्त नहीं हो पाई हैं। इसलिए पहला फ़ैसला हमें यही करना है कि जैसे–जैसे यह कार्यक्रम आगे बढ़ता है हम विधिवत और सुचारू रूप से जानकारी को रिकॉर्ड करने की आदत कायम करें।

अब तक इस जांच से जो सांस्कृतिक सामग्री सामने आई है, उसे इस तरह इस्तेमाल करना चाहिए जिससे शिक्षण सामग्री तैयार करने के काम को प्रेरित और समृद्ध किया जाए और शिक्षण के ऐसे रवैये की योजना बनाई जाए जो लोगों के विश्वासगत आधार तथा रोज़मर्रा के जीवन की स्थितियों के अनुरूप होने के साथ–साथ वैज्ञानिक रूप से सही हो।

मिसाल के तौर पर महिलाओं ने शरीर के ज्यादातर नज़र न आने वाले कार्यों को समझाने के लिए प्रकृति से लिए गए प्रतीकों का जो रचनात्मक उपयोग किया, वह हमारे लिए चुनौती का काम करेगा। लेकिन इनमें से भी अधिकांश प्रतीकों में पुरुष प्रधान व्यवस्था का जो व्यापक प्रभाव है वह बीच–बीच में हमारे लिए समस्याएं खड़ी करेगा। उदाहरण के लिए महिला–पुरुष की यौन संबंधी क्रियाओं और प्रजनन प्रक्रिया के लिए हल और धरती के प्रभावशाली प्रतीक में जो आम विश्वास है, उससे यही अर्थ निकलता है कि 'बीज' केवल पुरुष के पास होता है और महिला तो महज इस बीज को प्राप्त करके उसे विकसित करने का काम करती है। इस विश्वास को चुनौती देना होगा क्योंकि वास्तविकता यह है कि अंडाणु के रूप में आधा 'बीज' महिला के पास होता है। फिलहाल

तो हल और धरती का यह प्रतीक इस क्षेत्र में और हमारे देश के अधिकांश दूसरे इलाकों में महिलाओं के पितृसत्तात्मक उत्पीड़न को सांस्कृतिक रूप से मजबूत करने का एक बेहद शक्तिशाली औज़ार है।

इस जांच के बाद आगे के कार्यक्रम में पुरुषों को शामिल करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। अब तक कहानी का एक पक्ष सामने आया है। गांव की महिलाओं ने खुद इसके लिए अनुरोध किया है। हालांकि औरत–मर्द के उत्पीड़क शक्ति संबंध साफ ज़ाहिर होते रहे हैं फिर भी कुछ महिलाओं ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से यह सूचना दी है कि उनके पति इस विषय पर जानकारी लेना चाहते हैं और आत्मसंयम बरतने में समर्थ हैं। यदि उन्हें और जानकारी हासिल कराई जाए तो उनसे यह अपेक्षा रखी जा सकती है कि वे उस हद तक सहयोग करेंगे जिस हद तक बिना नसबंदी कराए पति–पत्नी की उर्वरता को नियंत्रित करने की ज़रूरत होती है। इस कार्यक्रम को पलिया पिपरिया के मजदूर संगठन जैसे संगठनों द्वारा अपनाया जाए या उनका सहयोग प्राप्त हो तो इस बात की विशेष उम्मीद बंधती है।

सच तो यह है कि महिलाओं में हमारी बात सुनने की ललक के पीछे नसबंदी से बचने की इच्छा एक प्रमुख प्रेरणा थी और बहुत–सी महिलाओं ने बार–बार हमारा ध्यान इस तरफ खींचा। चूंकि हम अभी प्रजनन जागरूकता प्रणाली सिखाने नहीं, बल्कि उनसे सीखने आए थे, इसलिए हमने अपने आप को रोके रखा। चूंकि महिलाओं पर नसबंदी कराने के लिए भारी दबाव है इसलिए इस वैकल्पिक उपाय को समुचित ढंग से शुरू करने का काम बहुत समय से प्रतीक्षित है। महिलाओं का एक और समूह जिसमें इतनी ही ललक है उन जवान महिलाओं का है जिनके एक या दो बच्चे हैं और जो अगले बच्चे से पहले एक लंबे समय (तीन से पांच साल) तक रुकना चाहती हैं। इसी जून से शुरू होने वाले हमारे पहले उपयुक्तता निर्धारक अभ्यास में शामिल की जाएगी कि हम बच्चों की संख्या और दो बच्चों के बीच अंतर रखने के इच्छुक दंपत्तियों को साथ–साथ प्रशिक्षण दें या अलग–अलग।

हम तिंदवाड़ा और पलिया पिपरिया गांवों की महिलाओं और लड़कियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने हमें अपने विश्वासों और अनुभवों की जांच करने की अनुमति दी।■

__नोट__ – मूल रपट में प्रत्येक बिंदु पर दिए गए सवालों की सूची को इसमें शामिल नहीं किया गया है।

प्रजनन की समझ और प्रजनन जागरूकता को जन्म–नियंत्रण का एक तरीका मानने का वैज्ञानिक आधार[37]

– डॉ. कैरन हैडॉक

किसी न किसी तरह माहवारी के बारे में हमें पता चल ही गया, दूसरे कई स्रावों (बहाव) को भी हमने देखा होगा। खासतौर पर हममें से जिसने सावधानी से इन बातों पर गौर किया है, उन्होंने देखा होगा कि ये स्राव करीब–करीब नियमित अवधि के बाद बार–बार होते हैं। लेकिन एक माह से दूसरे माह तक इनमें कितना अंतर होता है? क्या अलग–अलग महिलाओं के साथ यह सब अलग–अलग तरह से होता है? क्यों होता है? इन सब बातों का आखिर मतलब क्या है? इनका प्रजनन व उर्वरता से क्या संबंध है?

जब किसी महिला का एक अंडाणु किसी पुरुष के एक शुक्राणु से मिलता है (इसे निषेचन कहते हैं) तो वह महिला गर्भवती हो जाती है। संभोग के दौरान शुक्राणु महिला के शरीर में प्रवेश करते हैं। पर हमें मालूम है (फिल्मों में जो कुछ दिखाया जाता है उसके बावजूद) कि लैंगिक संभोग से हमेशा गर्भ नहीं ठहरता है।
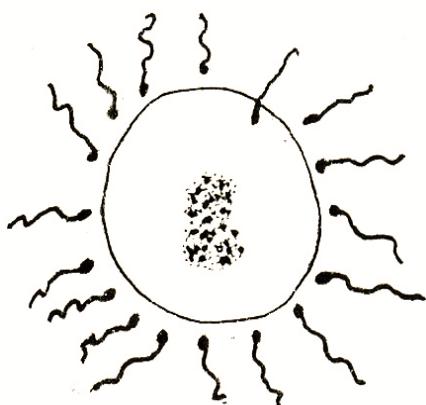
एक अंडाणु पहले पकता है . . . फिर अंडकोष से निकलता है. . .फिर नली में आता है। पूरे माहवारी चक्र के दौरान ऐसा केवल एक बार होता है और निषेचन न होने पर चौबीस घंटों में अंडाणु नष्ट हो जाता है। साथ ही शुक्राणु आमतौर से वीर्य–निक्षेपण के कुछ दिनों बाद नष्ट हो जाते हैं और जीवित रहने के लिए उन्हें पुरुष के वीर्यजल जैसे विशेष द्रव या महिला की योनि, ग्रीवा या गर्भाशय से होते विशेष स्रावों में रहना पड़ता है। माहवारी के चक्र की भूमिका एक पका अंडाणु उत्पन्न करना, विशेष स्रावों को बहाना और एक मोटी

---

[37]राष्ट्र–स्तरीय कार्यशाला, मार्च 1989 में प्रस्तुत वैज्ञानिक परचा। मूल अंग्रेजी से अनुवाद : डॉ. सुशील जोशी।

एक अंडाणु पहले पकता है... फिर अंडकोष से निकलता है... फिर नली में
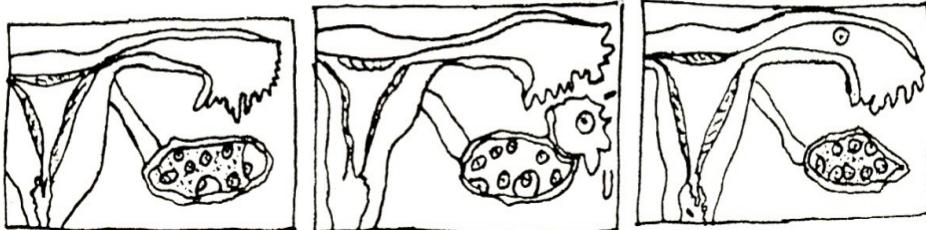
गर्भाशय परत बनाना आदि क्रियाएं संपन्न कर महिला–शरीर को गर्भधारण की संभावना के लिए तैयार करना है। जब निषेचन नहीं होता, तब यह परत टूट जाती है और माहवारी का रक्त–स्राव बनकर निकलती है।

प्रजनन की क्षमता को उर्वरता कहते हैं। महिला का उर्वरता–चक्र यौवन आरंभ से रजोनिवृत्ति तक (जब माहवारी बंद हो जाए) चलता है, केवल गर्भधारण और शिशु को दूध पिलाने की अवस्था में इसमें परिवर्तन आ सकता है। पुरुष की उर्वरता किसी चक्र में नहीं चलती – यौवनारंभ से वृद्धावस्था की धीरे–धीरे विलीन होती क्षमता तक यह उर्वरता रहती है।

मासिक रक्त–स्राव के अलावा योनि से अन्य और कौनसे स्राव आमतौर पर होते हैं? और ये स्राव क्यों होते हैं?

गर्भाशय, ग्रीवा व योनि–दीवारों से स्रावों के द्वारा इन अंगों को साफ और स्वस्थ रखने की क्रिया चलती है। आमतौर पर यह स्राव साफ या दूधिया सफेद होता है और इसमें एक हल्की–सी गंध होती है। पर आखिर यह है क्या? यदि हम इसे एक सूक्ष्मदर्शी (माइक्रोस्कोप) से देखेंगे तो पाएंगे कि इसमें पुरानी झड़ चुकी कोशिकाएं होती हैं। पुरानी कोशिकाओं के झड़ने के साथ योनि की दीवार में नई कोशिकाएं बनती रहती हैं।
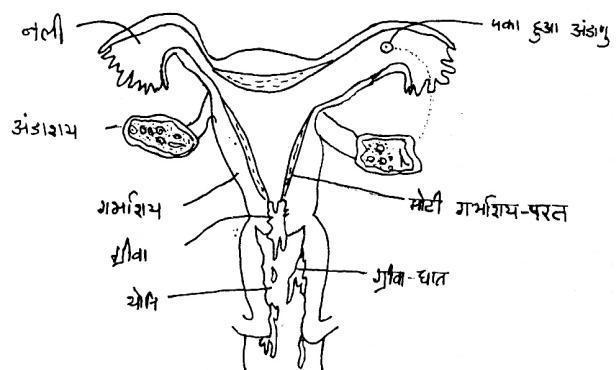
आमतौर पर योनि में कई अलग–अलग किस्म के जीवाणु भी कमोबेश मात्रा में पाए जाते हैं। इनमें से कुछ जीवाणु उपयोगी होते हैं, जो योनि की अम्लीयता बनाने में सहायक होते हैं। अगर योनि की अम्लीयता खत्म हो जाए, तो दूसरे प्रकार के जीवाणुओं की संख्या बढ़ जाएगी और व्हैंज़िनाइटिस (खुजली व बदबूदार स्राव के साथ योनि में सूजन) जैसी समस्याएं होंगी। कामोत्तेजना के समय शारीरिक उत्तेजना और संभोग प्रक्रिया को आसान व अधिक आनंददायक बनाने के लिए भी द्रवों का स्राव होता है, जिससे चिकनाहट होती है। ये स्राव कैसे होते हैं? ये पारदर्शी होते हैं या दूधिया? क्या इनमें फिसलन होती है या खिंचाव होता है? ये हल्के होते हैं या गाढ़े? दूसरे प्रकार के स्रावों और इनमें क्या फ़र्क होता है?

योनि से बहने वाले अन्य स्राव ग्रीवा से निकलते हैं और इन्हें ग्रीवा–धात कहते हैं। कभी–कभी अलग–अलग प्रकार की ग्रीवा–धात निकलती है, इस विभिन्नता का संबंध महिला के माहवारी चक्र से होता है। इस विषय पर पर्याप्त वैज्ञानिक शोध अभी तक नहीं हुए हैं और ऐसे कई सवाल हैं, जिनके जवाब अभी तक नहीं मिले हैं। माहवारी चक्र पर आधारित किसी प्रकार के नियमित धात–प्रवाह होने के बारे में कोई खास जानकारी नहीं है। कोई एक पैटर्न (नियमित स्वरूप) कितना प्रतिरूपी (सामान्य) है और इसमें किस हद तक अंतर आता रहता है? कितनी महिलाओं में ऐसी नियमितता होती है? ऐसे सवालों के संतोषजनक जवाब देने के लिए सही आंकड़े नहीं के बराबर उपलब्ध हैं। इस समस्या के जटिल स्वरूप की वजह से वैज्ञानिकों द्वारा ग्रीवा–धात प्रतिरूपों पर पूर्वाग्रह–रहित (खुले), मात्रात्मक
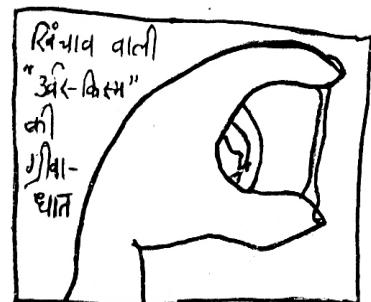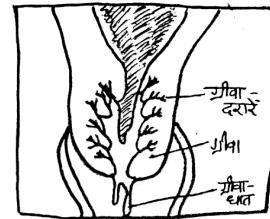
(संख्या–आधारित) अध्ययन कर पाना संभव नहीं है। ग्रीवा–धात पैटर्न (प्रतिरूप) के विश्लेषण के लिए महिला को कुछ हद तक व्यक्तिगत अवलोकन लेने की ज़रूरत है।

ऐसा माना जाता है कि महिला की उर्वर अवधि में (माहवारी चक्र का वह समय, जब संभोग करने पर गर्भधारण हो सकता है) महीने के अन्य समयों की अपेक्षा भिन्न योनि स्राव होते हैं। कई प्रकार के पैटर्न देखे गए हैं और यह स्पष्ट है कि अलग–अलग महिलाओं में काफी अंतर पाया जाता है। कभी–कभी 'स्पिनबारकाइट' (या स्पिन धात, इसे धागे की तरह खींचा जा सकता है) या 'उर्वर किस्म' की ग्रीवा धात निकलती है, जो मुर्गी के कच्चे अंडे के सफेद हिस्से जैसी या एक बच्चे की लार जैसी होती है – यह साफ पारदर्शी भी हो सकती है या दूधिया भी और इसे दो अंगुलियों के बीच काफी लंबा खींचा जा सकता है। ऐसा माना जाता है कि अंडोत्सर्ग के समय ग्रीवा से ऐसी धात निकलती है जिससे शुक्राणु आसानी से ग्रीवा से गुज़र सकें और गर्भाशय में नलियों तक पहुंच सकें। आनेवाले शुक्राणुओं में से खराब या दोषयुक्त शुक्राणुओं को आगे बढ़ने से रोककर उन्हें अलग करने में भी इस धात से मदद मिलती है।

पर जैसा कि हम बाद में चर्चा करेंगे, इस प्रकार की धात और अंडोत्सर्ग में कोई निश्चित संबंध नहीं है। एक और प्रकार का स्राव है जो सफेद या हल्का पीला और चिपकने वाला होता है, इस प्रकार के स्राव में बहुत योनि–(या ग्रीवा) कोशिकाएं होती हैं। अंडोत्सर्ग के समय के पहले या उस दौरान यह बढ़ भी सकता है। इस तरह के स्राव से या खिंचाव वाले उर्वर–किस्म की धात से भी योनिद्वार में गीलेपन का अहसास होता है। दूसरे समय पर, योनिद्वार अपेक्षाकृत सूखा रहता है और बहुत ही कम या कभी–कभी बिल्कुल भी स्राव नहीं हो सकता है।

पर बातें इतनी स्पष्ट हों – ऐसा नहीं है। अलग–अलग प्रकार के स्राव एक–दूसरे के साथ मिल सकते हैं। खिंचाव वाली धात चिपकने वाली योनि धातों के साथ मिल सकती है। कामोत्तेजना के दौरान निकली चिकनाहट पैदा करने वाली स्नेहक धातें दूसरी धातों के साथ मिल सकती हैं। स्वाभाविक रूप से अधिक या कम जीवाणुओं की उपस्थिति से भी स्रावों का स्वरूप बदल सकता है। माहवारी चक्रों की लंबाई (अंतराल) में काफी अंतर पाया जाता है। किसी महिला को नियमित रूप से हर 31 दिनों पर माहवारी हो सकती है। जबकि किसी दूसरी महिला के लिए यही अंतराल 24 से 30 दिनों तक घट–बढ़ सकता है। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि अंडोत्सर्ग के समय में भी काफ़ी अंतर हो सकता है।

जैसे मान लो कि माहवारी शुरू होने के पहले दिन को हम चक्र का दिन 1 लें तो,

क)

किसी महिला को 27 दिनों के चक्र में 12वें दिन अंडोत्सर्ग हो सकता है।

↓माहवारी रक्त–स्राव शुरू ↓अंडोत्सर्ग

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	**12**	13	14	15	
16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	

28वें दिन अगले माहवारी चक्र की शुरूआत

ख)

या किसी दूसरी महिला के 30 दिन के चक्र में 16वें दिन अंडोत्सर्ग हो सकता है।

↓माहवारी रक्त–स्राव शुरू

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	
16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	

↑अंडोत्सर्ग

ग)

या एक ही अंतराल के दो अलग–अलग चक्रों में अंडोत्सर्ग अलग–अलग दिनों पर हो सकता है।

↓माहवारी रक्त–स्राव शुरू ↓अंडोत्सर्ग

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	**12**	13	14	15	
16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	

↓माहवारी रक्त–स्राव शुरू

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	
16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	

↑अंडोत्सर्ग

अलग–अलग प्रकार की धातों के स्राव के समय भी अलग–अलग हो सकते हैं। कई लोगों का यह दावा है कि उर्वर किस्म की धात का स्राव अंडोत्सर्ग के समय होता है। यह सच है या नहीं, यह हम कैसे जान सकते हैं? अंडोत्सर्ग कब हो रहा है, इसे जानने के लिए वैज्ञानिक कई अलग–अलग तरीकों का उपयोग करते हैं – अंडोत्सर्ग के समय शरीर का तापमान बढ़ता है और खून व पेशाब में कुछ खास प्रकार के हार्मोन की मात्रा भी बढ़ जाती है। इन वृद्धियों को मापा गया है और बढ़ोत्तरी के समय का अलग–अलग

धातों के साथ संबंध भी निकाला गया है। अंडोत्सर्ग के समय की पहचान के लिए अल्ट्रासाउंड (ध्वनि की गति से अधिक गति के कंपन) की तकनीक का उपयोग भी किया जा सकता है। इस मशीन की सहायता से शरीर के आंतरिक अंगों की तस्वीर ली जा सकती है (एक्स–रे जैसा ही, पर उससे अधिक सुरक्षित)। इस तरह अंडोत्सर्ग को बिल्कुल देखा जा सकता है – महिला गर्भाशय में एक पुटिका के टूटकर बिखर जाने की एक फिल्म बनाई जा सकती है। पुटिका के टूटकर बिखरने के वक्त ही उर्वर किस्म की धात निकलती है या नहीं इसकी जांच करने के लिए वैज्ञानिकों ने अध्ययन किए हैं। दुर्भाग्यवश पर्याप्त संख्या में महिलाओं पर अध्ययन नहीं हुए हैं, जिससे कि निश्चित निष्कर्ष निकाले जा सकें। कुछ सामान्य पैटर्न सामने आते हैं, पर इनके अपवाद भी हैं।

तापमान

अंडोत्सर्ग के समय शरीर का आधार तापक्रम (सुबह उठते ही लिया गया तापक्रम) थोड़ा बढ़ सकता है। तापमान के चार्टों को समझना हमेशा इतना आसान नहीं होता है। गलतफ़हमी बहुत आम बात है क्योंकि शरीर के तापमान पर और भी कई कारकों का प्रभाव होता है और तापमान में इतने कम अंतर को मापने में कई तकनीकी दिक्कतें भी होती हैं। जब तापमान में स्पष्ट अंतर दिखाई पड़े तो आप पक्के तौरपर कह सकती हैं कि अंडोत्सर्ग हुआ है। परंतु यदि स्पष्ट अंतर न हो तो, यह नहीं कहा जा सकता कि अंडोत्सर्ग नहीं हुआ है। यदि अंतर पड़ता भी है तो अंडोत्सर्ग से एक–दो दिन पहले। परंतु इसमें भी काफी विविधता होती है – तापमान अंतर अंडोत्सर्ग से 4 दिन पहले या 6 दिन बाद तक भी हो सकता है।
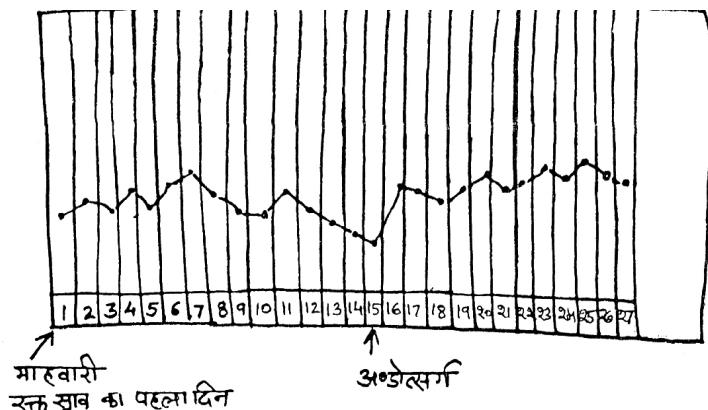
हार्मोन

लवण, शर्करा और अन्य पोषक पदार्थों के साथ–साथ खून अपने साथ हार्मोन नामक रसायन भी शरीर के विभिन्न भागों तक ले जाता है। हार्मोन मासिक चक्र का नियमन करते हैं। कुछ हार्मोन बच्चादानी का अस्तर बनवाते हैं, कुछ हार्मोन अंडे को परिपक्व करने और पुटिका के फटने में मदद करते हैं, कुछ हार्मोन ग्रीवा से धात बनवाते हैं। अलग–अलग समय पर पेशाब व खून में हार्मोन की मात्रा नापकर वैज्ञानिक पता लगा सकते हैं कि अंडोत्सर्ग कब हुआ। चार सबसे महत्वपूर्ण हार्मोनों की पूरे चक्र के दौरान तुलनात्मक मात्रा यहां दिखाई गई है –

- माहवारी के दौरान व बाद में इस्ट्रोज़न की मात्रा बढ़ती है और अंडोत्सर्ग के कुछ दिन पहले यह चरम सीमा पर पहुंच जाती है।
- इस्ट्रोज़न की मात्रा बढ़ने से बच्चादानी का अस्तर विकसित होता है और (कभी–कभी) ग्रीवा धात पैदा होती है।
- प्रोजेस्ट्रोन की मात्रा ठीक अंडोत्सर्ग के समय बढ़ना शुरू होती है।
- दो अन्य हार्मोन एलएच और एफ़एसएच अंडोत्सर्ग से एक दिन पहले अपने चरम बिंदु पर पहुंचते हैं। यदि किसी कारणवश इनकी मात्रा पर्याप्त रूप से नहीं बढ़ती तो अंडोत्सर्ग नहीं होता।
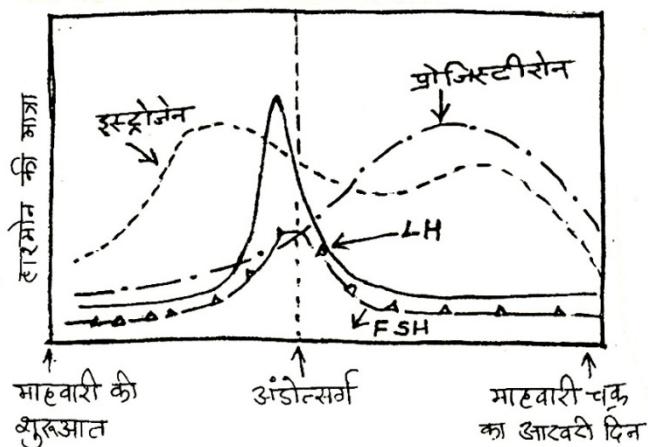
धात

उर्वर धात की अभिव्यक्ति अलग–अलग लोग अलग–अलग ढंग से करते हैं –

1. यह सबसे ज्यादा खिंचती है
2. उर्वर धात साफ और खिंचने वाली होती है – कम से कम 1 से.मी. खिंचनी चाहिए
3. नहीं–नही; 2 से.मी.
4. यह सबसे ज्यादा गीली होती है और खूब निकलती है।

आमतौर पर उर्वर धात का 'चरम दिन' का मतलब होता है हर चक्र में उर्वर धात का अंतिम दिन (या कभी–कभी सबसे ज्यादा उर्वर या खिंचने वाली साफ धात के अंतिम दिन को भी चरम दिन कहा जाता है)। परंतु यदि इस तरह की धात बंद होकर कुछ दिनों बाद फिर शुरू हो जाए तो कुछ भ्रम हो सकता है। इस मामले पर किए गए कुछ अध्ययनों (जिनमें से कई बहुत अच्छी गुणवत्ता वाले नहीं हैं) से पता चला है कि धात का चरम दिन लगभग उसी दिन आता है, जिस दिन शरीर का आधार तापमान बढ़ता है (यदि बढ़ोत्तरी देखी जा सके तो)।

अधिकांश अध्ययन बताते हैं कि उर्वर धात अंडोत्सर्ग से एक दिन पहले आती है। इन अध्ययनों में अंडोत्सर्ग का दिन तय करने के लिए हार्मोन स्तर मापने या अल्ट्रासोनोग्राफी विधि का उपयोग किया जाता है। परंतु काफी विविधता देखी गई हैः चरम दिन अंडोत्सर्ग से 9 दिन पहले से लेकर 5 दिन बाद तक आ सकता है। ये विविधताएं कितनी आम हैं या अंडोत्सर्ग के बाद भी उर्वर धात न आए, ऐसी बातों को समझने के लिए पर्याप्त अध्ययन नहीं हुए हैं।

प्रजनन जागरूकता का परिवार नियोजन विधि के रूप में उपयोग

यदि आप गर्भवती नहीं होना चाहतीं तो क्या करें?

- यदि आप संभोग न करें तो गर्भवती नहीं होंगी।
- हम महिलाएं वह सब क्यों करें जो हमें अच्छा नहीं लगता सिर्फ इसलिए कि मर्द को अच्छा लगता है?
- तुम तो मज़ाक कर रही हो। मेरे पति को मज़ा आता है – वह परहेज़ नहीं करेगा।
- कौन कहता है हमें अच्छा नहीं लगता। परंतु बस मुझे और बच्चा नहीं चाहिए।

आप गर्भनिरोध का कोई तरीका उपयोग कर सकती हैं ताकि यौन संबंध का आनंद भी ले सकें और गर्भवती भी न हों। परंतु हर विधि के अपने फ़ायदे और नुकसान हैं। अलग–अलग लोग अलग–अलग विधि पसंद करते हैं। उपलब्ध जानकारी के आधार पर हमें गर्भनिरोधक का चुनाव करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

यदि उर्वर अवधि और उर्वरता के बाहरी लक्षणों से तालमेल हो तो प्रजनन जागरूकता का उपयोग प्रजनन नियंत्रण के लिए हो सकता है। यदि आपको पता है कि कब आप उर्वर हैं और कब नहीं, तो आपको गर्भ ठहरने की चिंता मात्र उर्वर अवधि में करनी होगी। तब उर्वर अवधि में आप ऐसे यौन संबंधों से बचिए जिसमें लिंग और योनि का संपर्क होता हो। या वैकल्पिक रूप से आप किसी अवरोध विधि (जैसे निरोध) का उपयोग कर सकती हैं। किंतु उर्वरता के ठीक–ठीक लक्षण क्या हैं और ये कितने भरोसे के काबिल हैं? यह समझना बहुत ज़रूरी है चूंकि आसानी से गलती हो सकती है?

उर्वर अवधि का पता लगाने के लिए नियम बनाए गए हैं। एक नियम के अनुसार उर्वरता उस दिन शुरू होती है जिस दिन धात स्राव शुरू होता है (सामान्यतः माहवारी खत्म होने के कुछ दिन बाद) और आखिरी 'भीगे' दिन के तीन दिन बाद समाप्त हो जाती है। कुछ अन्य नियमों के अनुसार शरीर के आधार तापक्रम में वृद्धि के बाद उर्वर अवधि समाप्त हो जाती है। या सारे वे दिन जब गीलापन महसूस हो उन्हें उर्वर दिन कहा जा सकता है। उर्वरता दिखाने वाला एक और लक्षण है ग्रीवा की स्थिति में परिवर्तन : ग्रीवा अपनी मूल स्थिति से थोड़ी ऊपर चली जाती है।
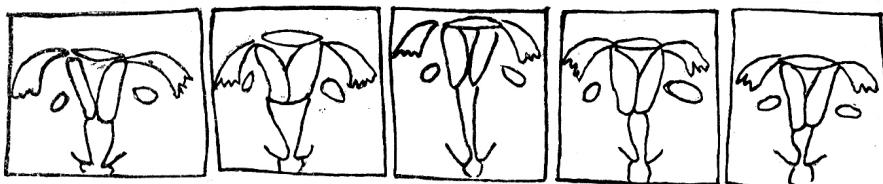
कभी–कभी अंडोत्सर्ग के समय ग्रीवा थोड़ी नरम भी हो जाती है और उसका मुख थोड़ा बड़ा हो जाता है। इन परिवर्तनों को कई बार उंगली के सिरे से महसूस किया जा सकता है। कभी–कभी जब अंडा पुटिका से फूटता है तब महिला उदर में हल्का सा दर्द महसूस कर सकती है।

तो वास्तविक उर्वर अवधि का अनुमान कितनी हद तक सही–सही किया जा सकता है? इस क्षेत्र में भी ज्यादा अनुसंधान नहीं हुआ है किंतु अनुमानित उर्वर अवधि और वास्तविक उर्वर अवधि में काफी तालमेल पाया गयाा है। वास्तविक उर्वर अवधि अंडोत्सर्ग के 3 से 5 दिन से पहले से शुरू मानी जाती है। यह गणना अल्ट्रासोनोग्राफी या हार्मोन मापन के आधार पर की जाती है। ऐसा इसलिए माना जाता है कि शुक्राणु महिला के शरीर में 3 से 5 दिन तक ज़िंदा रह सकते हैं।

तो क्या प्रजनन जागरूकता पर गर्भनिरोधक के रूप में भरोसा किया जा सकता है? विभिन्न अध्ययनों में बहुत अलग–अलग असफलता दरें सामने आईं हैं। इन अध्ययनों में प्रयुक्त की गई वैज्ञानिक विधियों की काफी गंभीर दिक्कतें हैं। संभोग से परहेज संबंधी नियमों का पालन न करने पर या जब नियम पालन किया जाता है तब उर्वर अवधि के अनुमान में गलती होने से गर्भधारण हो सकता है। जब ज्यादा लंबी अवधियों तक संभोग से परहेज़ किया जाता है तो यह विधि ज्यादा कामयाब होती है। यदि अनुर्वर विधि में ज्यादा बार संभोग किया जाए तो गर्भधारण की संभावना बढ़ जाती है। चूंकि महिला की उर्वरता 30 साल की उम्र के बाद कम होने लगती है इसलिए उस समय यह विधि (एवं कोई भी अन्य विधि) ज्यादा सफल हो सकती है। दूध पिलाती मांओं के लिए यह विधि बहुत सफल नहीं होती, खासकर तब जब यदि उन्होंने इसका पहले उपयोग न किया हो। इस मामले में गर्भधारण की संभावना लगभग उतनी ही होती है जितनी कि बगैर किसी गर्भनिरोधक का उपयोग करने पर होती है।

हालांकि प्रजनन जागरूकता विधि गर्भनिरोध की दृष्टि से उतनी विश्वासनीय न हो परंतु यह बहुत सुरक्षित है (खासकर गोली या आई.यू.डी. की तुलना में), यह इसका बहुत बड़ा फायदा है। इसका एकमात्र जोखिम यह है कि असफल होने पर आप गर्भवती हो सकती हैं और गर्भवती होने से संबंधित जो भी खतरे हैं। एक सुरक्षित और कारगर गर्भनिरोधक विधि कई लोगों की ज़रूरत है। इसी दृष्टि से इस विधि पर विचार करना चाहिए। इस पर और शोध करने की आवश्यकता है।■

बाइयों काजे
धात चीन्हबे की किताब
किशोर भारती
प्रजनन जागरुकता
शिक्षण कार्यक्रम
निसान के खाने
एक दिन
एक खन
मुलके खन
... मुलके दिन
कल तो धात इत्ती खिंचत थी
आधे चन्दा को निसान लगाने पर है
एक खन में एक निसान
माहवार चक्र सुरु ...
हाथ पे खून आ गओ।
आग लगी सपरनी पालू भई!
बच्चेदानी को अस्तर छूट के झड़न लगो है।
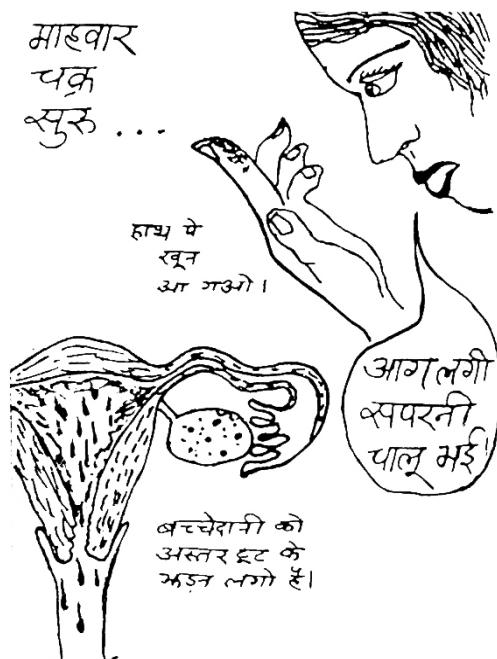
निसान
जादा खून
कम खून
मूड़ धोके निपट गए
हाथ पे
कछु नईं।
सूखो
सपरनी खतम...
बच्चेदानी को अस्तर
बनबो सुरु भओ।
हाथ पे
नैनू घाई
चिपचिपी
धात
जाँघों के बीच
कछू नईं,
सूखो लगत है।
अंडकोष में
मुतके कच्चे
अंडे...
पुटिका पकबो
चालू नईं भओ।
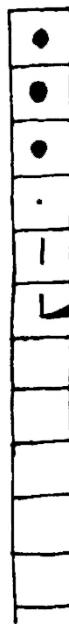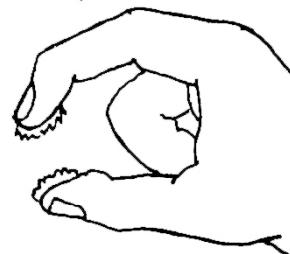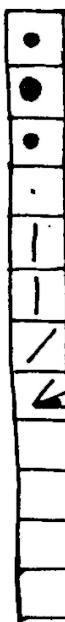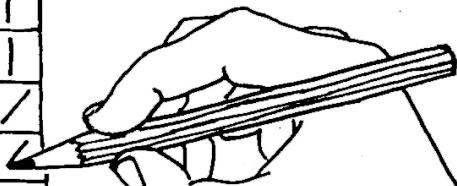
जइ धात
बिलकुल नईं खिंचत है।
व्हीं धाई... या नैंनू धाई...
या
दानेदार...
चूना पानी धाई धात
सोई हो सकत है।
जा धात
तनक खिंचत है,
और पतरो तार
तन के टूट
जात है।
तनक
खिंचबेवारी
अंडकोष में एक अण्डे की
पुटिका पकन
लगी.....बच्चेदानी में
अस्तर बन रओ है।
जई धात
मक मूंदरी होत है।
कभऊँ-कभऊँ धौरी या पीरी
सुई हो सकत है।
जा
धात
खूब
खिंचत है,
खिंच के
झुलत
सोई है।
खूब खिंचबेवारी
पुटिका पक के फूट
गई है। बामें से
अण्डा निकर रओ है।
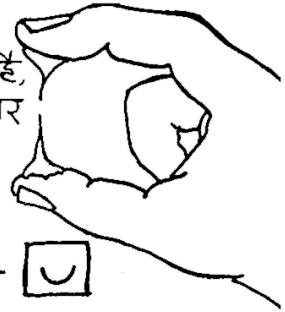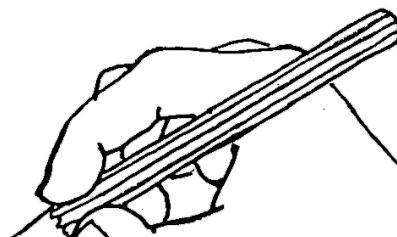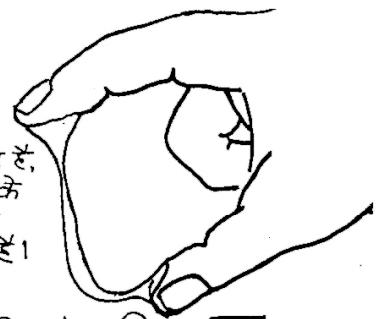
लरोन्दा घाई
लटकत सुई है।
उजरी या धुंधली रहत है
जांघों के बीच चिकनो
और आलो लग सकत है।
अण्डा नली में आ गओ।
अण्डकोष में
पीरी काया
बन रई है।
धात कम खिंचबेवारी भई
खिंचबेवारी धात
के दिनों में
बोलचाल भई...
लबई बच्चा
बनबो सुरू
हो सकत है।
अण्डकोष में पीरी काया बन गई...
अस्तर
मोटो भओ...
बच्चेदानी
के मुँह पे
ढककन लग
सो गओ है।
चिपचिपी धात
... या सूखो
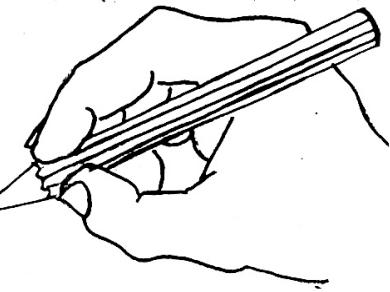
सपरनी के आंखें
पीरी काया सूख जात है,
ढक्कन
घुल जात है,
और
खिंचबेवारी
धात सुई
आत हैं।
सपरनी
अण्डा
निकरबे
को टम
पूरे
माहवार-चक्र
को
रिकार्ड
चक्र खतम...
दूसरो चक्र चालू!
अगल-अगल
माहवार चक्र
अपने सब
माहवार-चक्र एकई
बन्ने नईं रहत हैं।
कोई लम्बो,
कोई छोटो,
कोई बीच को
सब बाई-चारों
के माहवार-चक्र
सुई एक बन्ने
नईं रहत हैं।
कभऊँ लम्बो,
कभऊँ छोटो,
कभऊँ बीच को।
हओ,
साँची कहत हो,
जिज्जी!

कभऊँ-कभऊँ मुतके दिनां तक पुटिका नईं बन पात हैं और अण्डा सुई नईं निकरत हैं।

तब खिंचबेवारी धात भी नईं गिरत हैं।
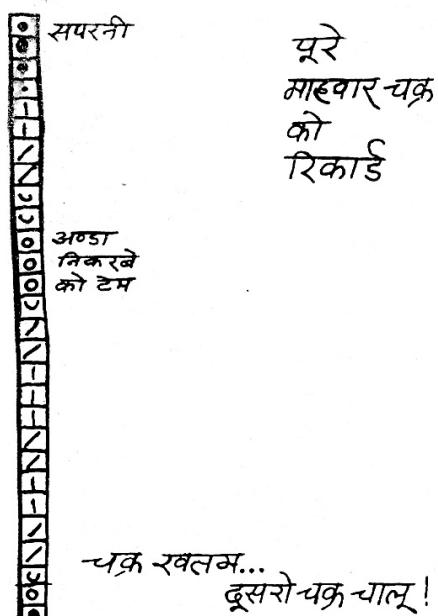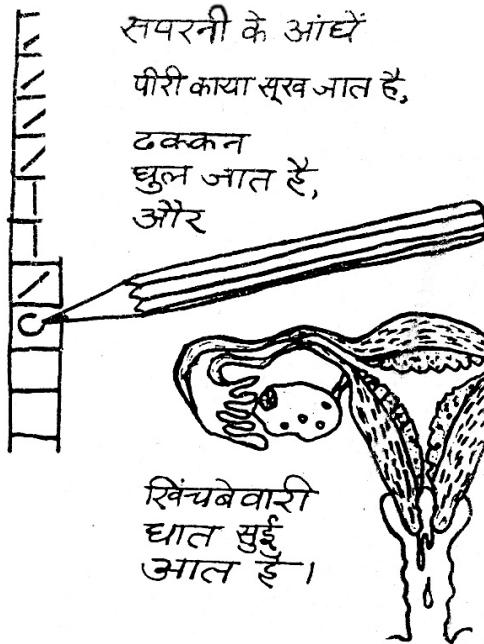
जइसे सपरनी देर से आ सकत है।

पुटिका नईं पकै ...

- जब बच्चा पेट में होय।
- जब छोटा बच्चा महतारी को पूरो दूध पी रओ होय।
- लड़कपन में सपरनी सुरु होबे के पहले।
- बुढ़ापे में सपरनी बन्द होबे के बाद।
- भुखमरी और कमजोरी के हाल में।
- जादा कसरत करबे से।
- जब मन पे जादा तनाव होय।
- बच्चा न होबे की हार्मोन गोलियाँ खाबे से (या हार्मोन इंजेक्शन)।
- कुछ बाइयों के लम्बे अनियमित चक्र होत हैं।

कोई बाई हे अपनो माहवार चक्र समझबे के लाने रोजई जाँच करने परहैं।

जाँच करबे के बाद निसान डारबो सुई जरुरी है।

सारे निसान

जादा खून	●
कम खून	·
सूखो (धात नईं)	।
चिपचिपी धात (या चूना पानी)	/
तनक खिंचबेवारी धात	◡
खूब खिंचबेवारी धात	○

हर दिन तीन दान जाँच करो।

यह पुस्तिका मानव संसाधन विकास-मंत्रालय (भा. स.) के अनुदान सहयोग से तैयार की गई है।

महिलाओं के स्वास्थ्य की शिक्षा के लिए प्रशिक्षण[38]

– डॉ. कैरन हैडॉक
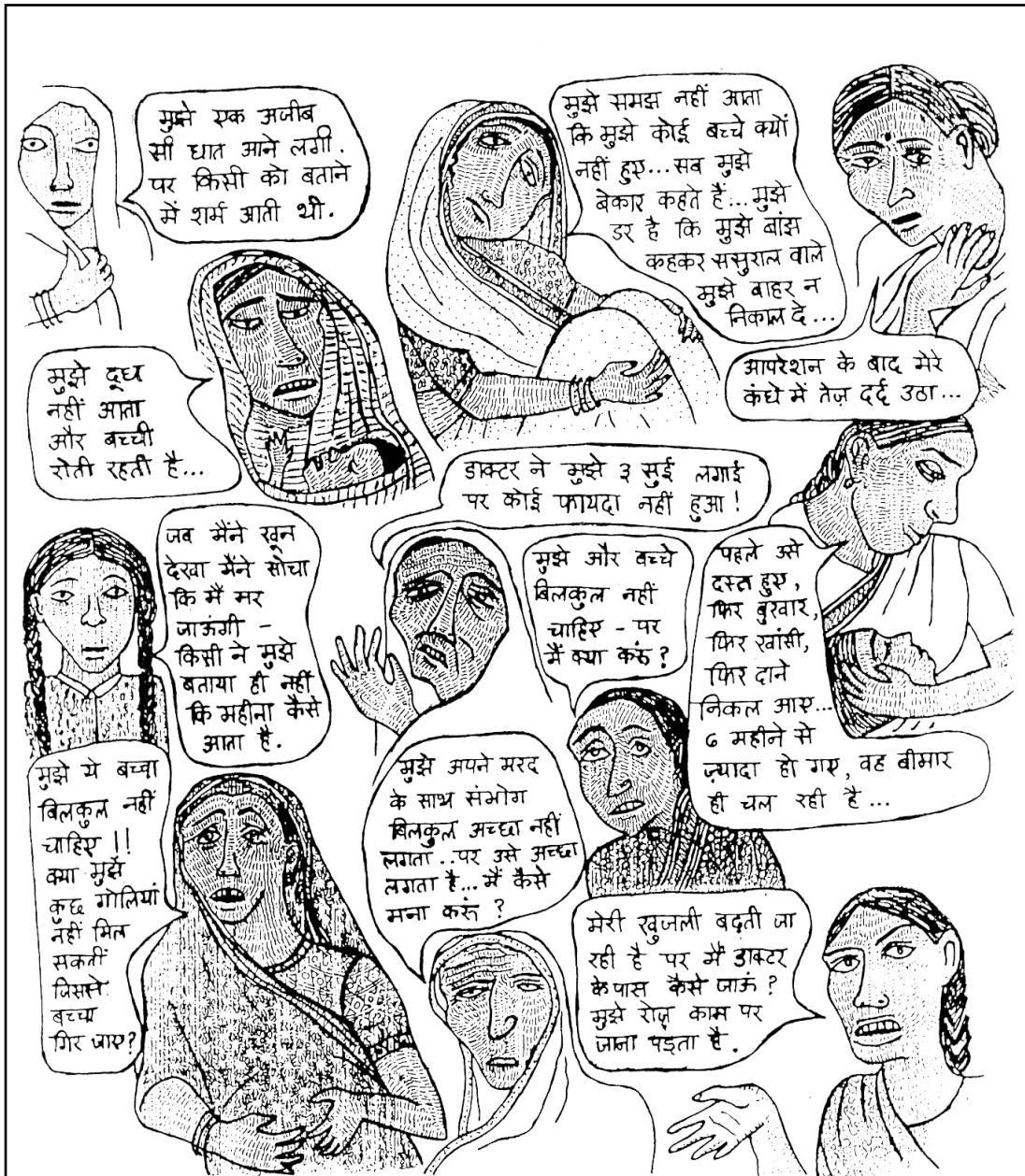
[38]'प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम', किशोर भारती की राष्ट्रीय कार्यशाला, 25–29 मार्च 1989 में प्रस्तुत परचा। मूल अंग्रेजी से अनुवाद : डॉ. हरजिंदर सिंह 'लाल्टू'।

इन (उपरोक्त) समस्याओं के समाधान के लिए हम क्या कर सकते हैं? क्या हम केवल डॉक्टर बनकर और दवाइयों की व्यवस्था करके इनका हल निकाल सकते हैं? अधिकतर लोगों के स्वास्थ्य की दुर्दशा का कारण पौष्टिक भोजन, साफ पानी, मकान और सफाई का अभाव है, एक डॉक्टर इन परिस्थितियों में क्या कर सकती है?

असली समस्या चिकित्सा से जुड़ी नहीं है – वह सामाजिक व राजनीतिक समस्या है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि हम महिलाएं परिस्थितियों को बदलने के लिए कुछ नहीं कर सकतीं, उदाहरण के तौर पर हम आपस में बातें कर सकती हैं, अपनी समस्याओं को एक–दूसरे को बता सकती हैं और खुद के बारे में एवं अपने शरीर के बारे में समझ विकसित कर सकती हैं। अपने शरीर एवं उनके अंगों (खासतौर पर प्रजनन अंगों) के काम करने के तरीकों के बारे में बिना समझे हुए ही हम बड़े हुए हैं। हमें अपने शरीर को लेकर इतनी शर्म व परेशानी होती है कि कई बातों के बारे में हम बात तक नहीं कर पाती हैं। लेकिन अन्य महिलाओं के साथ चर्चा करने पर समझ आता है कि जिन बातों को हम में से हरेक ने अपनी व्यक्तिगत समस्या माना था, वह दरअसल हर महिला की समस्या है। ये व्यक्तिगत समस्याएं हैं ही नहीं – ये सामाजिक व राजनीतिक समस्याएं हैं। एक साथ बातचीत करके हम एक–दूसरे की समझ को बढ़ा सकते हैं – हम अपने शरीर की प्रक्रियाओं को, बीमारियां कैसे हावी होती हैं या कैसे रोकी जाती हैं – इस तरह की बातें समझ सकती हैं। हम बिना डॉक्टर की मदद लिए अपने आप स्वास्थ्य की आम समस्याओं का निदान कर सकती हैं। ऐसी एक सामूहिक प्रक्रिया द्वारा हमारा अपेक्षाकृत सुदृढ़, आत्मविश्वासी बनना, खुद को और समाज को बदलने में सक्षम हो पाना संभव है।

आधुनिक चिकित्सा प्रणाली अभी तक मुख्यतः पुरुषों के हाथ में ही है। जिन्हें महिलाओं की ज़रूरतों के बारे में अनुभव या समझ नहीं है। महिलाओं का हित ध्यान में रखते हुए स्वास्थ्य सुविधाओं का मूल्यांकन और पुनर्निधारण आवश्यक है। अनावश्यक व हानिकारक चिकित्सा पद्धति के खिलाफ लड़ना ज़रूरी है। स्वास्थ्य सुविधाओं के बारे में सटीक अध्ययन पर आधारित निर्णय ले पाने के लिए ज़रूरी है कि महिलाएं आवश्यक जानकारी के स्रोत तक पहुंच सकें। रोगों के निवारण के लिए डॉक्टरों व दवा कंपनियों पर निर्भरता व रोगों की रोकथाम पर नए सिरे से ज़ोर देना होगा। बेहतर स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए संघर्ष करते हुए हमें सामाजिक लिंगभेद (जेंडर) के अन्य पहलुओं और वर्ग–उत्पीड़न के

खिलाफ लड़ना होगा। इस तरह यथास्थिति को ललकारते हुए हमें विकल्पों को ढूंढना होगा और सार्थक विकल्पों के अपने अधिकारों के लिए लड़ना पड़ेगा।

इन समाधानों के लिए हमारी तीन स्तर पर शैक्षणिक कार्य करने की योजना है। पहला, वैयक्तिक स्व–शिक्षा। दूसरा, समाज को स्वास्थ्य सुविधा व स्वास्थ्य शिक्षा दे सकने योग्य बनाने के लिए शिक्षण। तीसरा, स्वास्थ्य व अन्य सामाजिक–राजनीतिक समस्याओं के रिश्ते को समझना और इन समस्याओं के समाधान के लिए कुछ कर पाना। ऐसे शिक्षण का उद्देश्य है व्यापक स्तर पर लोगों से जुड़कर सार्थक समाधानों के लिए लड़ना। महिला–स्वास्थ्य के क्षेत्र में किसी भी सफल कार्यक्रम को इन तीनों स्तरों पर काम करना होगा।

आरंभ में हम निम्नलिखित विषयों पर ध्यान देंगे –

1. बुनियादी शरीर रचना, मानव प्रजनन और मासिक धर्म।
2. गर्भ व जन्म
3. गर्भनिरोध
4. प्रजनन संबंधी स्वास्थ्य की समस्याएं, सामान्य स्वास्थ्य, पोषण व स्वच्छता (इसमें महिलाओं की ये समस्याएं भी शामिल होंगी, जैसे– बांझपन व रजोनिवृत्ति यानी 45 से 55 की उम्र में मासिक धर्म का रुक जाना) के अंतर्संबंध।
5. महिला स्वास्थ्य व महिलाओं का शोषण और अन्य सामाजिक–राजनीतिक समस्याओं के बीच के संबंध।

हमारे विषयों में एक है गर्भनिरोध और शुरूआत में ही हमें इस सवाल से जूझना पड़ेगा – हम गर्भनिरोध के क्षेत्र में काम क्यों करना चाहते हैं? इसके बहुत से कारण हैं। पहली बात यह कि गर्भनिरोध महिलाओं के लिए मुक्ति का एक औज़ार हो सकता है। इससे महिलाओं को विकल्प मिल सकते हैं – अवांछित बच्चों की मां बनने से हमें छुटकारा मिल सकता है। गर्भधारण करने या न करने का विकल्प हर महिला को मिलना चाहिए। अभी तक सुरक्षित, प्रभावी गर्भनिरोध के उपायों की भारी ज़रूरत है, जो पूरी नहीं की गई है। कई महिलाएं अगले गर्भधारण से बचना चाहती हैं। गर्भपात की भारी मांग है, कई पालक अपने परिवार को छोटा रखना चाहते हैं।

परिवार नियोजन की जो सुविधाएं अभी उपलब्ध हैं, वे महिलाओं को मुक्त नहीं करती, बल्कि उनके शोषण को और बढ़ाती हैं। इसका मतलब परिवार नियोजन का विरोध करना नहीं है, बल्कि उन असुरक्षित व अवांछनीय तरीकों और पद्धतियों का विरोध है जो महिलाओं पर जबरन थोपी जाती हैं। स्वास्थ्य शिक्षा, महिलाओं को विरोध करने में सक्षम करेगी और वे अनुचित गर्भनिरोधकों का उपयोग करने से मना करेंगी। हर दम्पत्ति को वैकल्पिक गर्भनिरोधकों के बारे में जानकारी उपलब्ध हो सकेगी और अपनी पसंद से वे गर्भनिरोध का तरीका चुन सकेंगे। अधिक विश्वसनीय गर्भनिरोध के तरीकों का विकास व उपयोग एवं गर्भनिरोध के असफल होने पर सुरक्षित गर्भपात की व्यवस्था की मांग पर एक जन–आंदोलन खड़ा हो पाएगा।

इसी तरह जनसंख्या वृद्धि को निरंतर गरीबी और भूख का कारण कहा जाता है, और जनसंख्या नियंत्रण को इन समस्याओं का उपचार कहा जाता रहा है। हमारा विश्वास है कि यह सिर्फ एक भ्रांति है कि गरीबी व भुखमरी जनसंख्या वृद्धि को रोककर हटाई जा सकती है। एक और भ्रांति यह भी है कि गरीबी व वर्ग–उत्पीड़न को हटाने के अन्य प्रयासों के बिना, सिर्फ परिवार नियोजन के प्रचार मात्र से ही जनसंख्या वृद्धि रोकी जा सकती है (देखिए खंड – एक, पृ. 20–43, जनसंख्या समस्या पर पुनर्विचार – प्रो. बेट्सी हार्टमान)। इसका समाधान गरीबी व वर्ग–उत्पीड़न के साथ लड़ने के प्रभावी तरीकों का उपयोग है, न कि जनता के परिवार नियोजन के हक का हनन। इसके अलावा, गर्भ, जन्म व शिशु उपचार का निरंतर चक्र माताओं और बच्चों के स्वास्थ्य पर गहरा असर डालते हैं। बच्चों के जन्म में अंतर महिलाओं को अन्य कार्यों के लिए मुक्त कर सकता है, जैसे – पेशेवर काम, अध्ययन, संगठन कार्य और मर्दों के साथ समानता व सभी प्रकार के उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष।■

प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम – रपट (1988–89)[39]

– डॉ. मीरा सद्‌गोपाल

प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम (प्रजाशिका) का समाप्त प्रायः एक साला खोज कार्यक्रम दरअसल वर्षों की आकांक्षा और विलंब के बाद शुरू हुआ था। अभी भी दिशा और विषय वस्तु के संदर्भ में इस कार्यक्रम का भविष्य अनिर्णय की स्थिति में ही है। हम इस कार्यक्रम के अतीत और विकास की बातें दोस्तों और भावी कार्यकर्ताओं के साथ करना चाहेंगे।

प्रजनन जागरूकता क्यों?

प्रजनन जागरूकता की तरफ हमारा ध्यान पहली बार 'प्राकृतिक रूप से गर्भधारण कैसे करें या टालें'[40] नामक किताब के जरिए आकर्षित हुआ था। यह अमरीका के लोगों में अति–चिकित्सा समस्या के परिणामस्वरूप आई स्वास्थ्य चेतना की प्रति संस्कृति लहर (काउंटर कल्चर वेव) की एक अभिव्यक्ति थी। इसी दौर की एक और किताब है 'प्राकृतिक जन्म नियंत्रण की सहयोग विधि'। यह विधि योनि द्वार पर धात व तापक्रम के अवलोकन पर आधारित है। यह एक नई बात थी क्योंकि आमतौर पर यही माना जाता है कि यह जानकारी मात्र उन डॉक्टरों के लिए ज़रूरी है जो 'बांझपन' को (एक बीमारी मानकर) इलाज कर रहे हों।

सन् 1982 में संयोग से हमारी मुलाकात कैथलीन दोरायराज से हुई जिन्होंने बिलिंग की तथाकथित अण्डोत्सर्ग विधि के आधार पर एक 'संशोधित धात पद्धति' विकसित की थी। उनसे हमें पता चला कि पूरे भारत में कैथोलिक नन व पादरियों के सैंकड़ों समूहों के द्वारा (प्राकृतिक परिवार नियोजन के नाम से) प्रजनन जागरूकता का प्रचार किया जा रहा है। हमें यह भी पता चला है कि भारत में प्राकृतिक परिवार नियोजन की कई 'विचारधाराएं' हैं। परंतु अब तक ज्यादातर काम कैथोलिक चर्च से जुड़ा रहा है।

इसी दौरान हम ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में महिला संगठनों से जुड़ते गए। महिलाओं का सामान्य स्वास्थ्य और खासकर प्रजनन की समस्याएं लगातार उठती रहीं। हमने बाल मृत्यु

---

[39]'प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम', किशोर भारती की राष्ट्रीय कार्यशाला, 25–29 मार्च 1989 में प्रस्तुत रपट। मूल अंग्रेजी से अनुवाद : डॉ. सुशील जोशी।

[40]'हाउ टू एचीव ऑर अवॉइड प्रेग्नेंसी नेचुरली'।

(झड़ते फूल) का एक अध्ययन सन् 1982–84 में किया। भोपाल गैस कांड के बाद गर्मियों में हम करीब दर्जन भर स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के लिए कैथलीन दोरायराज व फ़िलोमिना कार्नेरो के साथ एक उन्मुखीकरण बैठक आयोजित कर पाए। इसके अगले साल महिला जागरण समिति (जबलपुर) ने पचमढ़ी में मध्यप्रदेश व दिल्ली की महिला कार्यकर्ताओं का एक नेटवर्किंग शिविर आयोजित किया, तब तक हमारा कोई मैदानी अनुभव नहीं था। इसमें अधिकांश सहभागियों की दिलचस्पी जन्म नियंत्रण की उन खतरनाक व घुसपैठी विधियों के भय में से उभरीं जिनके विरुद्ध महिला समूह अभियान चला रहे हैं। किंतु व्यवहारिक विकल्प क्या है?

मेडिको फ्रेंड सर्कल की अगली बैठक (उदयपुर, 1987) का केंद्रीय मुद्दा था 'परिवार नियोजन नीति और वास्तविक अनुभव'। इस बैठक के लिए 'किशोर भारती' की ओर से मैंने डॉ. साधना सक्सेना के साथ मिलकर इस विषय पर एक विस्तृत पुनरावलोकन पर्चा तैयार किया, 'प्रजनन जागरूकता और प्राकृतिक जन्म नियंत्रण . . . परिवार नियोजन से आगे'। मई 1987 में हमने भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय को प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम का एक प्रस्ताव भेजा।

प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम – कुछ प्रमुख बिंदू

जब हमने प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम (प्रजाशिका) शुरू किया था तब हमारी पीठ पर प्राकृतिक परिवार नियोजन की विरासत का बोझ था। हालांकि यह हमारा सचेत विश्वास था कि प्रजाशिका के काम को 'परिवार नियोजन' में नहीं बल्कि '**जनविज्ञान शिक्षा**' के संदर्भ में देखना चाहिए। बहरहाल, अधिकांश शैक्षिक व वैज्ञानिक सामग्री कैथोलिक चर्च विचारधारा के तहत् रची व संकलित की गई है, जिसमें प्राकृतिक परिवार नियोजन को जन्म नियमन की एक स्वीकार्य विधि माना जाता है। उनकी यह मान्यता 'जिम्मेदार पालकत्व' के संदर्भ में है।

इसके साथ महिलाओं द्वारा बार–बार के गर्भ से बचने में मदद की मांग जुड़ी। इसलिए काम के पहले दो महिनों में, तब तक हममें आत्मविश्वास भी नहीं जगा था, हममें से कुछ का सुझाव रहा कि प्रजनन जागरूकता को जन्म नियंत्रण के एक तरीके के रूप में पेश कर दें। समूह के कुछ कार्यकर्ताओं ने लगातार चेतावनी दी कि प्रजाशिका को 'विधि' के रूप में पेश करने का हमारे पास कोई आधार नहीं है और हमें कई महिनों तक सिर्फ मासिक चक्र में संभावित उर्वरता पैटर्न देखने में महिलाओं की मदद करनी चाहिए।

बैठकों में लंबी बहस के बावजूद काम के स्तर पर हमने एक समझ बनाई। हम हर महिला से हफ्ते में दो–तीन बार मिलते थे (या एक ही बार यदि वह महिला अपना चार्ट भरने में विश्वसनीय हो) और साथ ही साथ यदि हमें और उसे दोनों को लगता था कि उर्वर धात दिखने लगी है, तो उसे संभोग न करने या निरोध का उपयोग करने की सलाह देते थे। शुरूआत में हमने उन महिलाओं को शामिल नहीं किया जिनकी नसबंदी हो चुकी थी।

क्षेत्रीय कार्यशाला के दौरान जब हमने देखा कि कई सारी भागीदारों की या तो खुद की नसबंदी हो चुकी है या पति की, परंतु फिर भी उनकी रूचि है। इसके अलावा उनके पास सीखने का समय भी है क्योंकि उनके अब छोटे बच्चे नहीं हैं। इनमें से कुछ ने नियमित रूप से उर्वरता चार्ट रखना शुरू कर दिए। इनमें एक नवसाक्षर ग्रामीण महिला भी थी जो अब हमारी मैदानी टीम की सदस्य है (और आठ महीने तक चार्ट भरा है)। जनवरी 1989 में जब हमने सघन रूप से चार्ट भरने का काम शुरू किया तो ग्रामीण महिलाओं में रूचि जगने लगी, खासकर जब वे देखती थीं कि हमारी टीम की गैर–साक्षर महिलाएं उनके चार्ट पर चिन्ह लगाती हैं। ऐसे लगता है कि कई महिलाएं इसे सीखने की एक प्रक्रिया समझती हैं जिससे पूरे मासिक चक्र की एक समझ बनती है (जो वैसे एक रहस्य है) और इसीलिए नसबंदी वाली महिलाओं ने भी अवलोकन और चार्ट रखने में दिलचस्पी दिखाई। अचानक हमने महसूस किया कि खुद महिलाओं ने ही इस कार्यक्रम को 'परिवार नियोजन' के सीमित दायरे से निकालकर 'जन विज्ञान शिक्षा' के व्यापक स्तर पर रख दिया है।

जिन दम्पत्तियों को गर्भधारण में दिक्कत आ रही हो उन्हें प्रजनन जागरूकता से मदद मिल सकती है, ऐसी समझ बन रही थी। हमारे कार्यक्रम में भी इसके कुछ उदाहरण हैं। परंतु यह एक दुधारी तलवार है क्योंकि बच्चे न होने के कई कारण हैं जो इतनी आसानी से नहीं सुलझाए जा सकते। हमारे कार्यक्रम में काफी बड़ी संख्या में ऐसी महिलाएं हैं जिनके बच्चे नहीं हुए। इनमें से कुछ ने धात व अन्य लक्षणों का अवलोकन करने का निर्णय लिया। उन्हें उम्मीद है कि इस कार्यक्रम की बदौलत उन्हें और उनके पति को किसी दिन कोई विशेषज्ञ देखेंगी और उनका इलाज कर देंगी। इनमें से कम–से–कम दो तीन चार्टो में अंडोत्सर्ग का कोई पैटर्न नहीं दिखता। पुरुषों के साथ काम इतना आगे नहीं बढ़ा है कि वीर्य की जांच की जा सके।

धात के पैटर्न के अवलोकन के बारे में हम अभी बहुत ज्यादा नहीं कह सकते क्योंकि हमारे पास व्यवस्थित रूप से भरे गए मासिक चक्र चार्ट बहुत कम हैं। वास्तव में अनुभव

सिर्फ इतना है कि हम अपने आपको उचित अवलोकन विधि में प्रशिक्षित कर सके और ढेर सारी दिक्कतें पहचान सके। अलबत्ता इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि वास्तविक पैटर्न उतने सरल या नियमित नहीं हैं जैसे कि पूर्व के प्राथमिक परिवार नियोजन कार्यकर्ताओं ने दावे किए हैं या आस्ट्रेलिया और अमरीका की सुपोषित महिलाओं के होते हैं।

प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम निश्चय ही कोई आसान काम नहीं है और इससे जुड़ी विभिन्न समस्याओं पर काम करना ज़रूरी होगा। इसके बावजूद कई महिलाओं को यह काम सार्थक लगता है और वे परिवार में कभी—कभार की गलतफहमी या तनाव और घर व बाहर के काम के बोझ के बावजूद समझ की इस तलाश में संजीदगी से भाग लेती हैं। ये सिर्फ शादीशुदा, पति के साथ रहने वाली महिलाएं नहीं हैं, इनमें वे महिलाएं भी हैं जो पति द्वारा छोड़ दी गई हैं या जिनकी अभी शादी नहीं हुई है, या अभी—अभी शादी हुई है, या जिनके बच्चे नहीं हुए। ये गरीब और संपन्न परिवारों की हैं, गांव और कस्बों की हैं, गैर—साक्षर और उच्च शिक्षित हैं। हमने एक गैर—साक्षर महिला द्वारा एक शिक्षित महिला को प्रजनन जागरूकता के विभिन्न उपयोग समझाते हुए सुना है कि स्वस्थ योनि स्राव क्या है और यह कि हम बीमार नहीं हैं।■

प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम

राष्ट्र–स्तरीय कार्यशाला, 25–29 मार्च 1989 की रपट

– डॉ. साधना सक्सेना

कार्यक्रम परिचय

एक समय में प्राकृतिक परिवार नियोजन हमें दो कारणों से काफी आकर्षक लगा –

पहला, यह कि वास्तव में महिलाएं अपने शरीर के अवलोकनों के आधार पर अपनी उर्वरता पर नियंत्रण कर सकती हैं,

दूसरा, उर्वरता चेतना के जो आयाम खुलने की संभावना इसमें दिखी जिससे महिलाओं की अपनी ताकत बढ़ने की क्षमता समझ में आई।

स्वाभाविक रूप से हम सब मानते हैं कि महिलाओं पर ढेरों बंधनों में से एक बंधन उर्वरता चेतना न होना भी है। बुनियादी रूप से हम इस बात को मानते हैं कि महिलाओं के पास सभी गर्भनिरोधकों की पूरी–पूरी जानकारी उसके लाभ व हानि सहित होनी चाहिए और उन्हें अपनी परिस्थितियों के अनुसार, जानकारी के आधार पर फैसला लेने का हक होना चाहिए।

इस दृष्टि से हमारे लिए यह कार्यक्रम शुरू से ही **उर्वरता चेतना शिक्षण कार्यक्रम** रहा यानी जनविज्ञान के निकट, न कि परिवार नियोजन कार्यक्रम के निकट। प्राकृतिक परिवार नियोजन हमारे लिए कई और गर्भनिरोधक तरीकों में से एक तरीका रहा। हमारा यह भी आकर्षण रहा कि यदि महिलाएं अपने मासिक चक्र में होने वाले परिवर्तनों को पहचानना सीख जाएंगी तो किसी भी असामान्य बात को पकड़ पाएंगी जो किसी बीमारी के होने की सूचना भी हो सकती है।

इसके साथ–साथ हमें यह भी लगा कि इसमें सिर्फ स्त्री या पुरुष से बात न करके दम्पत्ति से बात करने व उनके आपसी सहयोग की भी बात है। प्रजनन व परिवार नियोजन से संबंधित सभी बातों की जिम्मेदारी सिर्फ महिला ही क्यों ले, पुरुष भी उसमें भागीदार बनें व सक्रिय भूमिका निभाएं।

कार्यक्रम का पहला वर्ष खोज का माना गया। **उर्वरता चेतना शिक्षण की व्यावहारिकता** की खोज का वर्ष। यह भी उद्देश्य रहा कि कितनी महिलाएं अपनी शरीर की जांच करना

सीखकर धात पद्धति को उर्वरता नियंत्रण के लिए इस्तेमाल कर सकती हैं। ये महिलाएं भी ग्रामीण इलाके व मेहनतकश वर्ग की थीं जो लिखना–पढ़ना नहीं जानती थीं। प्राकृतिक परिवार नियोजन के प्रवर्तकों द्वारा प्रसारित किए गए निष्कर्षों से ऐसा लगता था कि सभी महिलाओं की धात का एक जैसा ही निश्चित क्रम है और सभी की धात इतनी होती है कि उसे पहचाना जा सके। व्यावहारिक दिक्कतों का भी आम तौर पर कोई ज़िक्र नहीं रहा। खोज के वर्ष में हम अन्य जगहों पर सघनता से जुड़ी महिलाओं के साथ मिलकर इन बातों की भी जांच करना चाहते थे।

राष्ट्रीय कार्यशाला – उद्देश्य व संदर्भ

इस कार्यक्रम को औपचारिक रूप से शुरू करने से पहले कई समूहों व व्यक्तियों से इसके विषय में चर्चा हुई थी। खासतौर से 'मेडिको फ्रेंड्स सर्किल' की राजस्थान की मीटिंग में जिसमें मीरा व मैंने मिलकर इस विषय से संबंधित एक 'रिव्यु पेपर' प्रस्तुत किया था। तभी से यह सोचा था कि इस पूरे विषय पर रुचि लेने वाले लोगों के साथ मिलकर राष्ट्रीय स्तर पर संपर्क (नेटवर्किंग) अत्यंत ज़रूरी है। संपर्क के लिए तकनीकी रूप से सक्षम स्रोत ग्रुप, जनविज्ञान आंदोलन व महिला आंदोलनों में जुड़े समूह, महिलाओं के इस दिशा में कार्यरत समूहों के साथ सघन संपर्क के विषय में सोचा गया था।

इस पूरे विषय से जुड़े बहुत सारे वैज्ञानिक प्रश्न या तो अभी भी अनुत्तरित हैं या उनकी जानकारी कुछ लोगों तक ही सीमित है इसलिए खुले रूप से सोचने वाले एक स्रोत समूह को जोड़ने की आवश्यकता भी महसूस हुई। क्योंकि हमारा यह भरोसा रहा है कि यदि महिलाएं अपने प्रजनन चक्र को समझकर उस पर नियंत्रण कर पाएंगी तब वे ज्यादा सशक्त और सक्रिय रूप से अन्य संघर्षों में योगदान दे पाएंगी, इसलिए जनसंगठनों के साथ सघन संपर्क भी उतना ही ज़रूरी माना गया जितना वैज्ञानिक और डॉक्टरों के साथ।

कार्यशाला के निम्नलिखित **उद्देश्य** तय हुए –

- उर्वरता चेतना शिक्षण की सैद्धांतिक व व्यावहारिक समझ को साझा करना और महिला स्वास्थ्य गतिविधियों व व्यापक मुद्दों से इसके जुड़ाव को समझना।
- अवधारणाओं में, शब्दावली व परिभाषाओं की सामान्य भाषा का निर्माण करना।
- अनुभवों, परिप्रेक्ष्य, विश्लेषण और सामग्री का आदान–प्रदान, अनुभवों से सामान्य सबक लेना। उर्वरता चेतना, महिला स्वास्थ्य और देशी चिकित्सा पद्धतियों के आपसी संबंधों का विश्लेषण।

- नई शैक्षणिक विधियों व सामग्री का विकास करना।
- भविष्य की योजना बनाना, उर्वरता चेतना शिक्षा व महिला स्वास्थ्य की संभावित भावी दिशा खोजना व प्राथमिकताएं पहचानना।
- बांझपन के कारणों को समझना, तकनीकी व सामाजिक पहलुओं पर समझ बनाना।
- पुरुषों के साथ मिलकर इस विषय पर उनकी भूमिका क्या हो, इस पर समझ बनाना।

सहभागियों की पृष्ठभूमि

राष्ट्रीय कार्यशाला से पहले दो राज्य–स्तरीय कार्यशालाओं का आयोजन किया जा चुका था। इसमें स्थानीय टीमों के अतिरिक्त मध्य प्रदेश स्तर पर जितने भी संगठन या स्वतंत्र रूप से महिलाओं ने रुचि दिखाई थी उन सबको आमंत्रित किया गया था। राष्ट्रीय कार्यशाला से पहले ऐसी कार्यशाला करने का उद्देश्य विस्तार में लोगों के व्यक्तिगत अनुभवों को समझना और बुनियादी वैज्ञानिक जानकारी लोगों के साथ बांटना था। सोचा गया था कि राष्ट्रीय कार्यशाला में इन राज्य–स्तरीय कार्यशालाओं और फ़ील्ड समूहों के अनुभवों से उठे हुए प्रश्नों को ही उठाया जाएगा। व्यक्तिगत अनुभव के विवरण में दोबारा से नहीं जाएंगे।

राष्ट्रीय कार्यशाला में आमंत्रित लोग निम्न प्रकार के समूहों में से थे –

- महिला संगठन
- जन विज्ञान समूह
- स्वैच्छिक संस्थाओं के लोग
- स्त्री रोग विशेषज्ञ
- अन्य डॉक्टर/वैद्य/वैज्ञानिक
- प्राकृतिक परिवार नियोजन संगठन के लोग
- रुचि रखने वाले व्यक्ति जो किसी समूह विशेष से संबंधित नहीं हैं।
- कैथलिक समूह के अलावा वे समूह जिन्होंने प्राकृतिक परिवार नियोजन या प्रजनन जागरूकता के क्षेत्र में काम किया हो।
- ऐसे व्यक्ति जिन्होंने गर्भनिरोध के विभिन्न तरीकों की राजनीति और उनके फ़ायदे व शारीरिक नुकसान के विषय में समझ बनाई है।

- प्रजनन–संबंधी आक्रामक आधुनिक टेक्नोलॉजी के संबंध में जानकारी रखने वाले लोग जैसे गर्भजल परीक्षण, इन वीटरो फ़र्टिलाइज़ेशन (आई.वी.एफ़.) बांझपन को दूर करने के अन्य तरीके आदि।
- स्कूल और कॉलेज की चुनी हुई शिक्षिकाएं व शिक्षक।
- प्राकृतिक रूप से शिशु जन्म (यानि बिना अस्पताल जाए, बिना डॉक्टर की मदद) के हिमायती।
- इन विभिन्न समूहों से पुरुष भागीदार। इसमें विशेषकर पलिया पिपरिया के मज़दूर संगठन एवं पिपरिया के समता संगठन के पुरुष।

आमंत्रित भागीदारों में एक सामान्य बात महिलाओं के प्रति समतावादी दृष्टिकोण होना था। सभी महिलाओं की समस्याओं व प्रश्नों के प्रति सजगता से सोचने व जूझने वालों में से थे।

कार्यशाला में आने के उद्देश्य

किशोर भारती में प्रजनन जागरूकता शिक्षण समूह की यह समझ रही है कि यदि इस कार्यक्रम में पुरुषों की भागीदारी नहीं हुई तो यह सारा प्रयास व्यर्थ है। इसलिए शुरू से ही इस कार्यशाला में पुरुषों की भागीदारी को लेकर हम प्रयासरत रहे। हालांकि अधिकतर पुरुष अपनी भूमिका के विषय में काफी अस्पष्ट थे/रहे। पर फिर भी स्थानीय व बाहरी करीब 15 पुरुषों की काफी सक्रिय भागीदारी इस कार्यशाला में हुई।

लोगों के कार्यशाला में आने के उद्देश्य भी थोड़े बहुत एक जैसे ही थे। जैसे जो समूह महिलाओं के स्वास्थ्य पर काम कर रहे हैं वे उर्वरता चेतना विषय में, स्वास्थ्य की दृष्टि से अपने अनुभव बांटना चाहते थे व और समूहों के अनुभवों को सुनना चाहते थे। कुछ लोगों को यह अच्छा लगा कि उर्वरता के मुद्दे को स्त्री स्वास्थ्य जैसे व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा गया। कुछ समूहों को लगा कि उर्वरता चेतना महिलाओं को जोड़ने का अच्छा तरीका है तो कुछ लोगों ने लिखा कि विषय अच्छे लगे या कार्यक्रम पढ़ने में अच्छा लगा। एक व्यक्ति ने लिखा कि उसको रुचि इसलिए हुई क्योंकि उन्हें लगा कि – उर्वरता व अनुर्वरता दोनों समस्याओं पर वैज्ञानिक तरीके से पर मानवीय दृष्टि से सोचा जा रहा है। कुछ समूहों की खास रुचि धात पद्धति के हमारे व अन्य समूहों के अनुभव समझना भी था।

अन्यान्य कारणों से काफी वे लोग नहीं पहुंचे जिन्होंने आने की हां लिखी थी। पर कुछ नए लोग भी आए, कुल 72 सहभागी थे।

व्यवस्था

एक संभावित योजना दूसरे पत्र के साथ लिखकर भेजी थी पर यह माना था कि लोगों के जुड़ने पर शायद फेरबदल होगा ही। हमारी योजना के अनुसार हमने हर समूहों में कुछ लोगों के नाम स्रोत व्यक्तियों की हैसियत से रखे थे। स्रोत व्यक्ति जिनमें तकनीकी रूप से जानकार व्यक्ति व वे व्यक्ति जिन्हें ऐसे मुद्दों पर बातचीत करवाने का अनुभव हो।

हमारे अपने काम से उभरे ढेरों ऐसे प्रश्न हैं जो हमारे बीच या तो अनुत्तरित थे या अचर्चित थे, मुख्यतः कुछ जानकार व्यक्तियों की कमी के कारण। हमने ऐसे प्रश्नों को विषयवार बांटकर वितरित किया था। प्रजनन, गर्भ निरोधक व जनसंख्या नियंत्रण जैसे विषय में प्रगतिशील सोच सामने आए, इस उद्देश्य से विभिन्न लेखक–लेखिकाओं द्वारा लिखे लेखों को भी हिंदी व अंग्रेजी में वितरित किया। धात पद्धति का वैज्ञानिक आधार, गढ़चिरोली (महाराष्ट्र) के ग्रामीण इलाके में स्त्री रोगों व लैंगिक रोगों की व्यापकता पर किए गए अध्ययन की रपट (देखिए पृ. 110–121, भारत की ग्रामीण महिलाओं में . . .) आदि जैसी तकनीकी जानकारी भी हिंदी और अंग्रेजी में वितरित की। अभी भी यह काम अधूरा है, इसमें खासतौर से धात पद्धति को लेकर हमारी क्या समझ बनी वह एक ज़रूरी रपट है जिसे लिखा जाना अभी शेष है।

कार्यशाला रपट

पूर्व में तय किए गए विषय निम्नानुसार थे –

- माहवारी, उर्वरता चक्र व यौनिकता।
- अनउर्वरता (बांझपन), ऊसर और बच्चे न होना।
- सामान्य स्त्री रोग (शिकायतें)।
- जन्म नियंत्रण/गर्भनिरोध, गर्भपात व प्रजनन चयन एवं
- प्रजनन के मुद्दे पर पुरुषों की भागीदारी।

'किशोर भारती' के अनुभव

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि किशोर भारती के काम का उद्देश्य शैक्षणिक रहा है। हमने पलिया पिपरिया, पिपरिया (कस्बा) व पिपरिया के लोहिया वार्ड (पिपरिया कस्बे का एक वार्ड जिसमें अधिकतर मजदूर या बांस का काम करने वाले लोग रहते हैं) में महिलाओं की मोहल्लवार मीटिंगें करके प्रजनन–संबंधी स्थानीय रीति–रिवाज व परंपराएं

समझीं और शरीर की आंतरिक व बाहरी रचना और प्रक्रियाओं के विषय में जानकारी साझा की। महिलाओं की प्रजनन अंगों संबंधी स्वास्थ्य समस्याओं की जानकारी प्राप्त की। उम्मीद थी कि कुछ सामान्य समस्याओं पर कार्यशाला में बात करेंगे। गर्भनिरोधक, बांझपन और गर्भपात को लेकर भी मीटिंगें हुईं। इन्हीं में से जिन महिलाओं ने ज्यादा रुचि दिखाई उनके साथ मिलकर धात के चार्ट रखे गए। धात चार्ट खास तौर से इसलिए रखे/रखवाए गए ताकि एक बड़े सैम्पल के धात चार्ट देखकर धात क्रम में विभिन्नताओं की समझ बना सकें।

धात के चार्ट रखने पर खास ज़ोर इसलिए भी था चूंकि यह समझना ज़रूरी था कि बाहरी लक्षणों से उर्वरता पहचानना कितना व्यवहारिक है। सामूहिक गोष्ठियों में प्रजनन–संबंधी परंपराओं, रीति–रिवाजों व विश्वासों के विषय में चर्चा करके जानकारी इकट्ठी की गई।

पलिया पिपरिया और पिपरिया दोनों जगहों पर अधिकांश महिलाओं की मांग उनकी जांच की थी। पलिया पिपरिया के लिए निकटतम सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था बनखेड़ी ब्लॉक हेडक्वार्टर पर प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र है। यह लगभग 130 गांव का स्वास्थ्य केंद्र है जहां एक भी महिला डॉक्टर नहीं है। इसी प्रकार पिपरिया में 50 से 60 हजार तक की जनसंख्या में सरकारी अस्पताल में मात्र एक लेडी डॉक्टर है। पलिया पिपरिया की महिलाओं ने गांव की 5–6 महिलाओं को गर्भाशय के कैंसर से खत्म होते देखा है, जिससे बहुत दहशत फैली। एक तरह से इन अनुभवों से महिलाओं के स्वास्थ्य की स्थिति में झांकने का मौका मिला।

हमें शुरू में बहुत चिंता रही कि प्रजनन जैसे विषय पर महिलाएं किस प्रकार खुलेंगी परंतु कम–से–कम यह समस्या तो बिल्कुल नहीं रही। यौन संबंध और उसकी परेशानियों पर महिलाओं ने बहुत आश्चर्यजनक रूप से खुलकर बात की। महिलाओं के साथ शैक्षणिक काम करने में सबसे बड़ी दिक्कत चित्रों को लेकर आई क्योंकि अधिकतर महिलाओं ने कभी चित्र और खास तौर से आंतरिक रचना के चित्र देखे ही नहीं थे। पर अधिकतर किताबों में केवल प्रजनन अंगों के चित्र होते थे। इससे आंतरिक चित्रों की समग्र समझ बनना व उसके संदर्भ में प्रजनन अंगों के विषय में समझना मुश्किल था।

पुरुषों की मीटिंग

कार्यक्रमों की रिपोर्टिंग के सत्र में महिला–पुरुष एक साथ ही बैठे। परंतु फिर यह प्रश्न उठ ही गया कि आखिर उनकी भूमिका क्या है? क्या वे इसी प्रकार कुछ निष्क्रिय से, हर

मीटिंग में भाग लेते रहेंगे या उन्हें भी अलग से आपस में मिलकर अपनी भूमिका के विषय में सोचना चाहिए। काफी मतभेद थे, कुछ पुरुषों को बहुत ज़ोर से यह लग रहा था कि उन्हें अलग से मिलने की कोई आवश्यकता नहीं है जबकि कुछ को उतनी ही ज़ोर से लग रहा था कि मिलकर कुछ समझ बनाए बिना आगे बढ़ना निरर्थक होगा और वे प्रजनन चेतना जैसे मुद्दे पर अपने मत, अपनी भूमिका तय नहीं कर पाएंगे। पुरुषों ने अलग से बैठक करके तय किया कि वे सभी चर्चाओं में सामूहिक रूप से भाग लेंगे और जब उन्हें ज़रूरत महसूस होगी तो वे अलग से बैठेंगे और महिलाओं को जब भी पुरुषों के होने से संवाद में दिक्कत होगी तो वे भी अलग बैठेंगी। (पुरुषों के सहभाग की रपट के लिए देखिए पृ. 186–189)।

वैज्ञानिक परचा

डॉ. कैरन हैडॉक, पिछले एक–डेढ़ साल से अंडोत्सर्ग के समय के बाहरी शारीरिक लक्षणों को वैज्ञानिक आधारों के विषय में हुई खोजों का अध्ययन कर रही हैं। इस संबंध में वे बहुत सारे प्रश्न उठा चुकी हैं। जैसे, क्या धात न पहचान पाएं या धात न आए तो इसकी क्या व्याख्या होगी? धात का निश्चित क्रम या सामान्य क्रम कौन सा है व कितनी महिलाओं का कैसा क्रम होता है? एक बहुत विवाद का विषय है कि अंडोत्सर्ग के करीब 12–16 दिनों में माहवारी आ जाती है, क्या इसे पक्की तौर पर कहा जा सकता है? या अंडा कब फूटता है यानी उर्वर धात शुरू होने के एक दिन बाद या कुछ और? तापमान चार्टों की व्याख्या क्या इतनी सरल है? क्या–क्या कारक हैं जो तापमान पर असर डाल सकते हैं? इसी प्रकार धात पद्धति की प्रभावशीलता पर भी बहुत सीमित जानकारी उपलब्ध है। इसे एक पद्धति के रूप में इस्तेमाल करने के फ़ायदे हैं क्योंकि यह एक सुरक्षित पद्धति है। पर, यह भी है कि शोध की कमी के कारण यह साफ़ नहीं है कि किस–किस तरह की विभिन्नताएं हैं? और यदि गलत समझ के आधार पर एक बार भी गलती हो गई तो गर्भवती होने का खतरा व उससे जुड़े बाकी के खतरे हैं। इस परचे के अनुसार ऐसे बहुत सारे प्रश्नों पर समुचित शोध नहीं हुआ है (देखिए पृ. 147–156)[41]।

प्रजनन और आयुर्वेद

दो काफी लंबे सत्रों में वैद्य भागवंती वर्मा ने वैद्य स्मिता बाजपेयी के साथ मिलकर आयुर्वेद में प्रजनन यानी माहवारी, उर्वरता व यौनिकता की समझ प्रस्तुत की। आयुर्वेद,

---

[41]इस मुद्दे पर व्यापक परिप्रेक्ष्य में लिखी सटीक टीप के लिए देखिए, प्रो. बेट्सी हार्टमान, पृ. 88–92.

सूक्ष्मदर्शी के ईज़ाद होने के पहले का विज्ञान है जो बाहरी शारीरिक लक्षणों पर आधारित है यानी कम–से–कम आंख से न दिखने वाली रचनाओं पर आधारित नहीं है। इसलिए प्रजनन प्रक्रिया को लेकर जितनी भी आधुनिक विज्ञान की समझ वाले लोग हैं उनको काफ़ी दिक्कत हुई। एक बात और भी स्पष्ट नहीं थी कि वैद्य भागवंती वर्मा जो समझ प्रस्तुत कर रही थीं वह किस हद तक चरक संहिता से ली हुई थी व कितनी मिश्रित समझ थी यह स्पष्ट नहीं था। जैसे, जब वे बताती हैं कि शुक्राणु और स्त्री बीज के मिलन (गर्भाधान) से बीज या ज़ाईगोट बनता है तो क्या यह आयुर्वेद की नई समझ है? क्योंकि कई लोगों को यह समझ रही है कि आयुर्वेद में ही स्त्री को खेत और पुरुष के पानी को बीज माना गया है। काफी प्रयासों के बावजूद आयुर्वेद की यह समझ एक रपट के रूप में अलग से उपलब्ध नहीं हो सकी।

कार्यशाला के पहले दिन चार समूहों में एक ही विषय पर चर्चा हुई, वह विषय था –

माहवारी, उर्वरता और यौनिकता

इन विषयों पर चर्चा के लिए पहले से तैयार की गई प्रश्नों की सूची को संदर्भ के लिए लिया गया (देखिए परिशिष्ट)।

माहवारी को लेकर प्रजनन तंत्र, रचना, खून को गंदा मानना, छुआछूत मानना, ऐसे विषयों पर बात करने में हिचक, वैज्ञानिक जानकारी होने–न–होने से जिंदगी में क्या फर्क पड़ेगा आदि प्रश्नों पर चर्चा हुई। न केवल छुआछूत व अशुद्ध माने जाने के बारे में बात हुई कि कैसे ऐसे समय पर महिलाओं को शुभ जगहों जैसे मंदिर, खेतों में बुवाई की शुरूआत आदि से दूर रखा जाता है। कुछ लोगों का मत रहा कि यह एक पुराने जमाने का तरीका रहा है ऐसे समय में महिलाओं को आराम देने का परंतु अब तो वह महिलाओं को सताने का एक और तरीका हो गया है।

एक समूह में डॉ. जेनेट थीं जो प्राकृतिक ढंग से बच्चे पैदा करने की कक्षाएं लेती हैं। उनका कहना है कि शारीरिक प्रक्रियाओं जैसे माहवारी आना, महिलाएं आदमियों से भिन्न हैं, यह परंपरागत समाजों में मान्य था पर आज नहीं है। कुछ मातृत्व–शास्त्रीय अध्ययनों में यह पाया गया है। पुराने समय में माहवारी शुरू होने का दिन नोट किया जाता था और महिला के शरीर के चक्र को तारों से जोड़कर देखा जाता था। चांद वाले कैलेण्डर के आधार पर महीने देखने वाले समाजों को 'नारीवादी समाज' कहा गया है। लड़की की माहवारी शुरू होने पर कुछ जगहों पर उत्सव भी मनाया जाता है और बहुत जगहों पर इसे चिंता का द्योतक माना जाता है। माहवारी के दौरान शारीरिक संबंध को आम तौर पर

बुरा माना जाता है हालांकि कुछ लोगों का मानना है कि इस दौरान शारीरिक संबंधों से माहवारी की तकलीफ़ें कम होती हैं।

माहवारी के दौरान की तकलीफ़ों, परंपराओं, रीति–रिवाजों, पवित्रता, अपवित्रता, छुआछूत महिलाओं/लड़कियों के अहसासों आदि की चर्चा तो महिलाओं के कई समूहों ने समय–समय पर विस्तार से की है। हमने भी पिछली दो स्थानीय कार्यशालाओं में करीब 60 महिलाओं के व्यक्तिगत अनुभव विस्तार से सुने हैं। उम्मीद थी कि इस कार्यशाला में इससे कुछ आगे बढ़ पाएंगे। खासतौर से ऐसे प्रश्नों के संदर्भ में जो प्रश्नों की सूची में लिखे गए थे। परंतु शायद यह विषय ही ऐसा है कि हमेशा व्यक्तिगत अनुभव से ही शुरू होता है खास तौर से तब, जब समूह नया हो।

इस सबके अलावा एक अनहोनी और नई बात थी हर समूह में पुरुषों का होना। पुरुषों ने पहली बार इस विषय पर इतनी गहराई से सुना। पुरुषों को यह जानकर आश्चर्य भी हुआ कि आम तौर पर लड़कियों को माहवारी के विषय में जानकारी मां से नहीं मिलती है। उन्हें यह अंदाज़ नहीं था कि इस विषय पर मां और बेटी के बीच संवाद में हिचक होगी। महीने के कुछ दिन मां अलग क्यों रहती थी, इस तरह की बातें समझ में आईं। माहवारी का महिलाओं की जिंदगी में कितना व किस प्रकार का महत्व है, उसके क्या असर जीवन में पड़ते हैं, इसका भी कुछ अंदाज़ मिला, ऐसा कई पुरुषों ने बताया। लड़कों को दाढ़ी आने की इच्छा और राजपूतों में पहली बार दाढ़ी बनवाने पर भोज जैसे रिवाज़ों पर भी चर्चा हुई।

यौनिकता पर चर्चा इतनी सरल नहीं थी। यौनिकता किसे कहें, लगभग हर समूह में चर्चा यहीं से शुरू हुई। यौनिकता का संबंध आम तौर पर स्त्री–पुरुष के शारीरिक संबंधों व यौनेच्छा तक ही सीमित रह जाता है। चर्चाओं के दौरान इस अर्थ को व्यापकता मिली, जैसे स्त्री–पुरुष सहचर्य में आनंद की अनुभूति, युवाओं में आपसी आकर्षण की भावना आदि। स्त्री–पुरुषों के चारों समूहों में यौनिकता के तहत हस्तमैथुन, समलैंगिकता, महिलाओं की यौनिकता की दबी हुई अभिव्यक्ति, खास तौर से विधवा व छोड़ी हुई महिलाओं में, महिलाओं में शारीरिक संबंध के आनंद की चरमसीमा की अनुभूति है या नहीं, शादी से पहले रिश्ता, लड़कियों के साथ छेड़छाड़, गीत–गाली में यौनिकता की अभिव्यक्ति आदि जैसे संवेदनशील विषयों पर काफी खुलकर चर्चा हुई। ऐसा महसूस हुआ कि ज्यादा गहराई में जाने के लिए अपने व्यक्तिगत अनुभवों के दायरों में जाना पड़ेगा जो या तो केवल पुरुषों–पुरुषों या फिर महिलाओं–महिलाओं के समूहों में ही संभव है। ऐसी चिंता भी व्यक्त हुई कि अपने अनुभव (अच्छे–बुरे) साझा करने की प्रक्रिया हिम्मत

देने वाली भी हो सकती है व तोड़ने वाली भी। इसलिए इस पर बहुत सतर्कता से सोचना ज़रूरी है। इस सत्र में जो प्रश्न सामने आए वे इस प्रकार हैं –

- एनिमिक या कुपोषित महिलाओं की माहवारी पर क्या असर पड़ता है?
- माहवारी के खून में क्या–क्या होता है? इस खून को गंदा क्यों मानते हैं? इसमें बदबू क्यों होती है?
- कई महिलाओं को गर्भवती होने के दौरान भी माहवारी आती रहती है, क्यों?
- माहवारी और जलवायु का क्या संबंध है? माहवारी पर मानसिक स्थिति का क्या असर पड़ता है?

यौन शिक्षा व यौनिकता

यौन शिक्षा कब हो, कैसे हो व क्या हो व क्यों हो, इन प्रश्नों पर काफी गहराई से चर्चा हुई। सबको ऐसा लगा कि बहुत ही स्वाभाविक और सहज तरीके से न केवल जानकारी देने के लिए बल्कि दृष्टिकोण बदलने के लिए भी यौन शिक्षा ज़रूरी है। इसमें 'रोल प्लेयिंग' (दृष्टांत) जैसे तरीकों का इस्तमोल करके बात हुई। एक दृष्टांत स्कूल की एक शिक्षिका का बच्चों के बीच एक लड़के के द्वारा लड़की को लिखी गई चिट्ठी वाली घटना पर बात करने का था तो दूसरा दृष्टांत गांव की पंचायत में एक ऐसी महिला के केस पर चर्चा व फैसले का था जिसमें पति द्वारा छोड़ी हुई एक महिला का किसी अन्य व्यक्ति से संबंध का था। पंचायत में हुई बहस से उभरे महिला के पक्ष और नैतिकता–अनैतिकता जैसे सारे प्रश्नों पर चर्चा हुई।

यौन शिक्षा से सभी को यह उम्मीद थी कि छेड़छाड़ या बलात्कार जैसी घटनाएं कम होंगी। स्त्री–पुरुष के संबंधों में सुधार होगा व बच्चों के पास भी सीखने का सहज तरीका होगा जिससे उनकी जिज्ञासा शांत होगी। बच्चे जब पूछते हैं तो हम क्या करें? इस पर जहां यह मत था कि छोटे बच्चों को सही जानकारी देने से उनकी जिज्ञासा शांत होगी वहीं दूसरा मत या आशंका यह थी कि बहुत ज्यादा जानकारी से उनमें यौन संबंधों की इच्छा पैदा होगी। गांव के एक सक्रिय व्यक्ति का मत था कि यौन शिक्षा तो सदियों से चली आ रही है उसमें हम नया क्या कर लेंगे। इसलिए यौन शिक्षा नहीं होनी चाहिए। गांव के बच्चे तो जानवरों को देखकर ही सब समझ लेते हैं।

यौनिकता के सत्र में लोगों ने अपने–अपने साथी की इच्छा, साथी कैसा हो आदि के विषय में अपने व्यक्तिगत मत बताए, लगभग सभी ने इस पर खुलकर चर्चा की। इसी के तहत शादी, शादी के बाहर के संबंध, बिना शादी के शारीरिक रिश्ते, शादी के बंधन,

लड़के–लड़कियों व महिला–पुरुषों के जीवन में अलग–अलग दोस्तियों की आवश्यकता व महत्व जैसे मुद्दों पर भी बात हुई। पश्चिम में यौनिकता व सार्वजनिक हस्तियों के यौन संबंधों पर छींटाकसी व कानूनी हस्तक्षेप पर चर्चा हुई।

स्त्री स्वास्थ्य

ऐसा माना जाने लगा है कि स्त्री स्वास्थ्य यानी सिर्फ उसका प्रजनन स्वास्थ्य। महिलाओं की स्वास्थ्य संबंधित अन्य तकलीफ़ों को समस्याएं माना ही नहीं जाता। अधिकांश महिलाएं अपने स्वास्थ्य के प्रति लापरवाह होती हैं। बचपन से ही कम खाना, ज्यादा काम, कम उम्र में बच्चे और लगातार दूध पिलाना यह सब महिलाओं के स्वास्थ्य पर गंभीर असर डालते हैं। शासकीय स्वास्थ्य व्यवस्था में सुविधाओं की कमी (महिला डॉक्टर, दवाईयां आदि) और भयंकर भ्रष्टाचार है, वहीं प्राइवेट अस्पतालों तक गरीब व मध्यमवर्गीय महिलाएं पहुंच ही नहीं पातीं। इसलिए वे तब तक अपनी तकलीफ़ों को टालती रहती हैं जब तक कि तकलीफ असहनीय नहीं हो जाती। 'देवी' आना, महिलाओं का समस्याओं से पलायन करने का एक तरीका है।

समाज में महिला का क्या स्थान है, उस पर भी उसका स्वास्थ्य निर्भर करता है, जैसे निम्न सभी चीजों से प्रभावित होता है –

1. मारपीट
2. अधिक काम
3. कुपोषित होना
4. शिशु मृत्यु
5. दहेज
6. शिक्षा की चिंता
7. डायन प्रथा
8. शिशु मृत्यु व बच्चे को दूध पिलाना आदि।

महिलाओं के स्वास्थ्य का मुद्दा खुद महिलाओं के लिए, उनके परिवार के लिए व समाज के लिए प्राथमिक मुद्दा नहीं है। व्यवसाय से जुड़ी स्वास्थ्य समस्याएं जैसे बीड़ी बनाने वाली महिलाओं की समस्याएं आदि पर भी ध्यान देना ज़रूरी है। लेकिन परिस्थिति तभी बदलेगी जब महिलाओं का अपना आत्मविश्वास बढ़ेगा, उनकी चेतना बढ़ेगी, अपने आप भी अपना महत्व मानने लगेंगी और वे महिला आंदोलन का हिस्सा बनकर अन्य अधिकारों के साथ स्वास्थ्य से संबंधित अधिकारों की मांग करेंगी। आज की स्वास्थ्य व्यवस्था भी महिलाओं के खिलाफ़ जाती है और इसलिए महिलाओं के पक्ष में स्वास्थ्य व्यवस्था की मांग भी होना ज़रूरी है। वैकल्पिक स्वास्थ्य व्यवस्था के साथ ही जानकारी का प्रसार जैसे गर्भनिरोधकों, टी. बी., एनिमिया आदि का होना भी आवश्यक है।

गर्भपात व गर्भनिरोध

हानिकारक गर्भनिरोध, जनविज्ञान या जनसंगठन समूहों का मुद्दा नहीं बने, इसका कारण इन समूहों में भी पुरुष प्रधानता का आधिपत्य होना है। स्त्री स्वास्थ्य कभी भी राजनीतिक मुद्दा नहीं बना। आश्चर्य यह है कि इन समूहों ने जनसंख्या जैसे राजनीतिक मुद्दे पर भी कोई स्टैण्ड नहीं लिया। यह काफी चिंता का विषय है कि गर्भनिरोध व स्त्री स्वास्थ्य के मुद्दों को आंदोलन के स्तर पर उठाने के काम महिलाओं ने ही किए।

गर्भपात को लेकर चर्चा में कई प्रकार के प्रश्न उठे, जैसे गर्भपात का निर्णय कौन करता है? क्या वह महिलाओं पर थोपा जाता है या वह महिलाओं को अनचाहे गर्भ से मुक्ति दिलाने का एक तरीका है? यह याद दिलाया गया कि कानूनी मान्यता महिलाओं के संघर्ष के तहत नहीं बल्कि सरकार की जनसंख्या नियंत्रण की नीति के तहत मिली थी। इससे पुरुषों की लापरवाही बढ़ी है क्योंकि गर्भ तो गिरवाया ही जा सकता है। और इसी के तहत है मादा भ्रूण हत्या भी। ऐसी स्थिति में गर्भपात को लेकर क्या दृष्टिकोण हो? इसी संबंध में चंडीगढ़ में तीन लड़कियों द्वारा आत्महत्या की भी चर्चा हुई। उन तीनों लड़कियों ने आत्महत्या इसलिए की क्योंकि उनके पिता ने उनकी मां का दो बार गर्भजल परीक्षण करवाकर गर्भ भी गिरवाया था व तीसरी बार लड़का होने के कारण ऐसा नहीं किया था। लगभग सभी का मत था कि गर्भपात का कानूनी अधिकार बना रहना चाहिए परंतु उसके दुरुपयोग के खिलाफ़ संघर्ष होना चाहिए। यह भी था कि सुरक्षित गर्भपात की सुविधाएं भी सरकार द्वारा उपलब्ध कराया जाना ज़रूरी है। इसके लिए भी संघर्ष ज़रूरी है ताकि व्यावसायीकरण रोका जा सके और महिलाएं अनचाहे गर्भ से मुक्ति पा सकें।

गर्भनिरोधकों के मुद्दे पर काफी निराशाजनक सा माहौल रहा क्योंकि प्रश्न यही था कि इसमें पुरुषों की ज़िम्मेदारी कैसे बढ़े ? एक बार फिर दोहराया गया कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कैसे गर्भनिरोधकों पर शोध का लगभग 90 प्रतिशत पैसा महिलाओं के गर्भनिरोधकों पर शोध में खर्च होता है। महिलाओं के ऑपरेशन कभी राजनीतिक मुद्दा नहीं बनता जबकि पुरुषों के ऑपरेशन से सरकार का तख्ता पलट गया[42]। महिलाओं पर परीक्षण व उपयोग के लिए नई–नई तकनीकें आ रही हैं, यहां तक कि हिन्दुस्तान के एक प्रसिद्ध डॉक्टर शोधकर्ता को गर्भनिरोधक टीके ईज़ाद करने के लिए विश्व जनसंख्या परिषद् से पैसा मिला है।

[42]1975–77 में आपातकाल के दौरान पुरुष नसबंदी का संदर्भ।

यह भी तथ्य है कि अवरोध गर्भनिरोधकों पर, जो सबसे सुरक्षित हैं व किसी प्रकार से शारीरिक क्रियाओं पर असर नहीं डालते, प्राथमिकता के साथ न तो शोध होता है और न प्रसार। वैसे भी कुल मिलाकर गर्भनिरोधकों के हानिकारक असर, सुरक्षित गर्भनिरोध आदि विषयों पर जानकारी लोगों तक नहीं पहुंचती है जिससे यह लोग जानकारी के आधार पर अपने लिए आदर्श गर्भनिरोधक चुन पाएं।

महिला के बच्चे न होना (बांझपन)

बांझपन के तकनीकी पहलू रोकथाम व सामाजिक पहलुओं पर चर्चा हुई। सामाजिक पहलू के संदर्भ में यह प्रमुख प्रश्न सामने आया कि अपना बच्चा होना क्यों ज़रूरी है? यह महिला की शारीरिक व भावनात्मक ज़रूरत है या सामाजिक दबाव है? महिला या दम्पत्ति की शारीरिक व भावनात्मक ज़रूरत पर कोई निर्णायक समझ नहीं बन पाई। लोगों के अहसास अलग–अलग थे। परंतु कैसे आज के समाज में अपने बच्चों से सामाजिक सुरक्षा की भावना जुड़ी है यानी बुढ़ापे में सहारा कौन देगा, यह परिस्थिति जब तक नहीं बदलेगी तब तक अपने बच्चों की ज़रूरत रहेगी ही चाहे वे कैसी भी परिस्थिति में पलें। फिर भी शारीरिक रूप से अपना बच्चा क्यों हो इसका उत्तर नहीं उभरा। लगा कि उसके कारण अलग प्रकार के हैं। सामाजिक पक्ष है कि बच्चा अपने मां–बाप जैसा ही हो अन्यथा उसमें न जाने क्या दोष हो जाएंगे। ऐसी धारणाएं भी हैं कि जैसे चोर का बच्चा चोर या खूनी का बच्चा खूनी होगा, आदि। गोद लेने को लेकर यही चिंता होती है कि पता नहीं किस जाति का है, कौन है। साथ ही यह चिंता भी कि कितना अक्लमंद होगा। इन्हीं भावनाओं व इस परिस्थिति का फ़ायदा उठाने के कारण इसका व्यावसायिक लाभ उठाया जाता है। और विज्ञान में नई–नई तरह की खोजें होती हैं।

इस मोड़ पर आकर चर्चा प्रजनन की नई तकनीकों पर पहुंच गई। यह बात सामने आई कि इस भावना का फ़ायदा उठाकर व कैसे विज्ञान का उपयोग करके इस पूरे मुद्दे से व्यावसायिक लाभ उठाया जा रहा है। इस संदर्भ में 'टेस्ट ट्यूब बेबी' (आई.वी.एफ़.) व 'सरोगेट मदरहुड' जैसी नई विधियों पर चर्चा हुई। इनके पीछे छिपी पुरानी मान्यताओं को सुदृढ़ करने की राजनीति पर भी चर्चा हुई। यह बात उभरकर आई कि कैसे यह एक व्यावसायिक मुद्दा बन गया है और ऐसे शोध करवाने में व्यावसायिक दिलचस्पियां शुद्ध मुनाफ़े के उद्देश्य से जुड़ गई हैं। गर्भजल परीक्षण भी इसी कड़ी का एक हिस्सा है। जिस तरह ज़ोर देकर दम्पत्तियों को लगातार यह उम्मीद बंधवायी जाती है कि वे अपना बच्चा या अपना लड़का नई–नई तकनीकों से प्राप्त कर सकते हैं उस तरह से और उतनी ज़ोर

से उन्हें बच्चे गोद लेने को प्रोत्साहित नहीं किया जाता। परिणामस्वरूप जाने–अनजाने में वे दुष्चक्र में फंस जाते हैं और टेक्नोलॉजी पर आंख मूंदकर भरोसा करने लगते हैं।

कार्यशाला के अंत में हुई बैठक में सभी ने इस बात की ज़रूरत महसूस की कि भविष्य में इसी तरह समूहों में समय–समय पर इस विषय पर चर्चा करने व समझ बनाने की ज़रूरत है। 'प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम' की इस अवधि में हमने इससे संबंधित मुद्दों को पहचानने का प्रयास शुरू भर किया है। इसलिए कार्यशाला में हुई चर्चा व विभिन्न विषयों पर प्रस्तुत रपटें कोई अंतिम निष्कर्ष नहीं हैं। इस संदर्भ में अभी और अध्ययन व विश्लेषण की ज़रूरत है। पुरुष सहभागियों ने अपने–अपने समूहों में, मित्रों में इस पर चर्चा करने व समझ बनाने की बात कही, खास तौर पर पुरुषों के बीच। उन्होंने खुलकर इस बात को स्वीकारा कि हमने इस कार्यशाला में महिलाओं के बारे में बहुत सारी और ऐसी जानकारी पाई है जिनके बारे में कभी इस गहराई से सोचा ही नहीं था। शुरूआत में उन्हें जो लग रहा था कि 'हमारी भूमिका क्या है' शायद कुछ हद तक इसका उत्तर उन्हें मिल गया था।

कुछ सुझाव

जो पुरुष इस कार्यशाला के अनुभव से गुजरे हैं उन्हें इस अनुभव को लिखकर और जागरूक पुरुषों से साझा करना चाहिए।

मूल्यांकन करने और नियमित रूप से मिलने के मौके खोजने की आवश्यकता है।

महिलाओं और पुरुषों में पितृसत्तात्मक विचार काफी गहराई से जमे हुए हैं। इसलिए इतनी सरलता से उन्हें निकाल फेंकना संभव नहीं है और समय–समय पर मूल्यांकन की ज़रूरत है ताकि जब फिसलें तो फिर वापिस संभल सकें।

व्यक्तिगत स्तर पर तो निर्णय (स्टैंड) ले सकते हैं, सामूहिक रूप से लेने में समय लगेगा।

धात क्रम

राष्ट्रीय कार्यशाला में भाग लेने वाले कुछ लोगों को इस बात से बहुत आपत्ति थी कि गांव की महिलाओं के ऊपर चार्ट भरने जैसी रूखी सी ज़िम्मेदारी क्यों डाली गई? हम यहां एक बात स्पष्ट करना चाहते हैं कि ग्रामीण महिलाओं के साथ सही अवलोकन के आधार पर धात क्रम की समझ बनाना इस कार्यक्रम का एक प्रमुख उद्देश्य था। धात पद्धति आम ग्रामीण व कस्बाई महिलाओं के बीच लागू होने में व्यावहारिक दिक्कतें

समझना भी एक ज़रूरी पहलू है। परंतु यह भी समझना कि वास्तविक परिस्थिति में धात क्रम कैसा है, है भी या नहीं, किस तरह की विभिन्नताएं हैं, कुछ नियमितता है या नहीं आदि देखना इसलिए ज़रूरी था ताकि यह समझ में आए कि हमारी वास्तविकता अन्य लोगों के अनुभवों से किस तरह फ़र्क या समान हैं व किताब में दिए मानक नमूनों से किस हद तक मिलते–जुलते हैं।

कौन सी महिलाएं हैं जो नियमित धात क्रम होने के कारण धात पद्धति पर भरोसा कर सकती हैं और कौन सी अनियमित धात क्रम होने के कारण ऐसा नहीं कर सकतीं। भारत के गांव/बस्तियों की परिस्थितियों के विषय में इस प्रकार की जानकारी एक मात्र संस्था यथा, नेशनल फ़ैमिली प्लानिंग एसोसिएशन की डॉ. कैथलीन दोरायराज ने एकत्रित की व पद्धति लागू की है। उनके अनुसार सफलता का प्रतिशत बहुत अधिक है। हमारा अनुभव शुरू से ही उनसे फ़र्क था जिसे पुख़्ता करना व पद्धति की व्यावहारिकता को हर दृष्टिकोण से जांचना ज़रूरी था।

हमारा अनुभव हमारी अपेक्षाओं के अनुकूल है यानी धात चार्टों में बहुत विभिन्नताएं हैं। कुछ पैटर्न भी हैं परंतु अभी ध्यान से चार्टों को समझकर, इन पैटर्न्स के आधार पर उभरते हुए नियम समझने की प्रक्रिया पूरी नहीं हुई है। अभी यह नहीं कहा जा सकता है कि 40–50 महिलाओं के इस समूह में से कितनी महिलाएं बिना किसी खतरे के इस पद्धति का उपयोग कर सकती हैं, कितनों को और कुछ चक्रों का अवलोकन करके समझना होगा और कितनी महिलाएं इस पद्धति का बिल्कुल उपयोग नहीं कर सकतीं और क्यों? हमारा विश्लेषण भी अपूर्ण है और निर्णयात्मक रूप से अभी कुछ नहीं कहा जा सकता, इसलिए यहां हम महिलाओं द्वारा भरे हुए उनके चार्टों को नहीं दे रहे हैं।

वे चिन्ह जिनका उपयोग चार्ट भरने के समय किया गया था (देखिए, 'बाइयों काजे धात चीन्हबे की किताब', पृ. 157–162) –

ज्यादा खून – ●

कम खून – ·

सूखा (धात नहीं) – |

चिपचिपी धात या चूना पानी – /

थोड़ी खिंचने वाली धात – ∪

खूब खिंचने वाली धात (उर्वर धात) – O

कार्यशाला में पुरुष साथियों का सहभाग

1. कार्यशाला में पुरुषों के सहभाग की संक्षिप्त रपट

इस कार्यशाला में शामिल पुरुष साथियों का मानना है कि –

- ऐसी कार्यशाला में सहभाग करना हमारे लिए निजी तथा सामूहिक स्तर पर एकदम अनूठा अनुभव रहा। कई प्रगतिशील आंदोलनों से जुड़े होने के बावजूद हम स्त्री–पुरुष संबंध के संदर्भ में अब तक कितने सारे भ्रम, अंतर्विरोध तथा गलत मान्यताओं का बोझ ढोते रहे हैं। इस कार्यशाला में हमारा सहभाग इस गलत परंपरा को तोड़ने की प्रक्रिया की शुरूआत है।
- हमने महसूस किया कि स्त्री स्वास्थ्य तथा प्रजनन के बारे में एक तो हमारी कोई ठीक समझ ही नहीं थी और न ही उसे बनाने की हमें कभी कोई ज़रूरत महसूस हुई थी। प्रजनन संबंध में हमारा रवैया सिर्फ यौनिकता तक सीमित था। यौनिकता की हमारी संकल्पना भी स्त्री–पुरुषों के शारीरिक संबंधों तक ही थी। महिला के शरीर तथा शारीरिक प्रक्रियाओं को पुरुष ज्यादातर अहसान या कर्तव्य की भावना से ही देखता है। एक तरफ़ वह इस हीन भावना से ग्रस्त है कि पुनरुत्पादन की प्रक्रिया में उसकी भूमिका एकदम नगण्य है (शायद उसी की प्रतिक्रिया के रूप में)। वह इस पूरे सवाल पर झूठे अहंभाव तथा सरपरस्ती (पेट्रोनाइज़िंग) बतौर पेश आता है। बुद्धि तथा भावना का झूठा द्वंद्व भी उसकी हर समझ को कुंद कर देता है। अपनी इन सीमाओं तथा गलत मान्यताओं का अहसास भी हमें इस कार्यशाला में हासिल संवेदनक्षमता के कारण हो रहा है।
- इस कार्यशाला में हमने कई सवालों पर अपने आपको झकझोरकर टटोला है, अपने आपसे, दूसरे पुरुष साथियों से तथा महिला साथियों से संवाद किया है। जिससे हमारे दिमाग में बनी कुछ ग्रन्थियां दरकीं तो कुछ टूटी हैं। हालांकि अभी बहुत कुछ करना बाकी है। भविष्य को लेकर स्पष्ट समझ अभी नहीं बनी, फिर भी यह कार्यशाला एक अच्छी शुरूआत ज़रूर है। इस विषय पर समझ बनाना एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। इसलिए हमारा आपस में संवाद बना रहना बहुत ज़रूरी है।
- हम मानते हैं कि हमने इस कार्यशाला में जो भी हासिल किया है उसे व्यक्तिगत तथा सामूहिक स्तर पर कार्यरूप में परिवर्तित करना ज़रूरी है। रोज़मर्रा के जीवन में करने के लिए निम्नलिखित मुद्दे सुझाए गए –

<u>व्यक्तिगत व्यवहार</u> – अश्लीलता (पोर्नोग्राफी) व गंदे मज़ाक ('डर्टी जोक्स') जैसे विषयों पर ठोस भूमिका लें। खुद, महिलाओं से संबंधित गाली न दें, भाषा के प्रयोग पर ध्यान दें, विश्लेषण करें, दूसरों का ध्यान आकर्षित करें।

व्यक्तिगत जीवन में जब हम बदलाव की पहल करेंगे तब हमें लोगों से ताने सुनने पड़ेंगे और भी कुछ कीमत चुकानी होगी। लेकिन उसी से परिवर्तन की प्रक्रिया तेज होगी, उसी से हमारा संकल्प दृढ़ बनेगा, साथ ही महिला साथियों का हम पर विश्वास बढ़ेगा।

परिवार नियोजन के साधनों के इस्तेमाल में अपनी ज़िम्मेदारी उठाएं।

<u>सामूहिक व्यवहार</u> – निम्नलिखित मुद्दों पर जानकारी हासिल करें, बांटें, समझ बढ़ाएं –

- गर्भलिंग परीक्षण पर पाबंदी
- महिलाओं में कुपोषण तथा उससे उपजी खून की कमी (एनीमिया) जैसी बीमारियां
- हाईडोज़ ईस्ट्रोजेन–प्रोजेस्ट्रोन (ई.पी.) पर पाबंदी
- नसबंदी शिविरों में होने वाले घोटाले
- यौन शिक्षा
- यौन–संबंधी संक्रामक बीमारियां
- इश्तहारों में महिलाओं की छवि
- संगठन में महिलाओं के सवालों पर अन्य साथियों का ध्यान आकर्षित करना, समझ बनाना, महिला साथियों का समर्थन करना।
- बच्चे न होना एवं
- गर्भ नियंत्रक सुई

महिला आंदोलन के फलस्वरूप महिलाएं एक–दूसरे से बेझिझक कई सवालों पर बात करने लगी हैं। उनकी अपनी भाषा बनी है। मुहावरे गढ़े गए हैं। वैसे भी महिलाओं की ज़िंदगी में माहवारी शुरू होने की घटना उनके शरीर व मन में परिवर्तन की प्रक्रिया की शुरूआत करती है। उस संदर्भ में मां–बेटी के बीच कुछ संवाद बनता है, रिश्ता बनता है (हालांकि मौजूदा व्यवस्था में यह संबंध महिला को कमजोर बनाने के संस्कारों की कड़ी के रूप में ही पनपता है) लेकिन पुरुषों में युवावस्था में संक्रमण यह केवल प्रक्रिया है, जिसमें कोई माहवारी शुरू होने जैसी घटना नहीं होती और न ही इस प्रक्रिया को लेकर पिता–पुत्र के बीच कोई बात होती है। तात्पर्य यह है कि पुरुषों के बीच यौन क्रिया, स्त्री–पुरुष संबंध, यौनिकता आदि को लेकर स्वस्थ बातचीत की कोई परंपरा ही नहीं है।

हम इस कमी को गंभीरता से महसूस करते हैं तथा उसकी पूर्ति के लिए पहल करने का निश्चय करते हैं।

हमारे आसपास का माहौल, परंपराएं, मान्यताएं और संचार माध्यम हमें आवश्यक वैज्ञानिक जानकारी ही नहीं दे पाते तो सही दृष्टिकोण की बात तो दूर की कौड़ी है। खासकर, 'पुरुषत्व' की आडंबरग्रस्त संकल्पना, 'ब्रम्हचर्य यही जीवन, वीर्यनाश यही मृत्यु' जैसे अवैज्ञानिक तर्क – इन्होंने हमारा बहुत नुकसान किया है। इसलिए हमें महिला–पुरुष की शारीरिक प्रक्रियाओं के बारे में सही जानकारी हासिल करनी होगी। साथ ही 'पुरुषत्व' तथा 'नारीत्व' की मौजूदा सांस्कृतिक धारणाओं को बदलना होगा।

इस कार्यशाला के साथ जो बदलाव की प्रक्रिया शुरू हुई है, उसे जारी रखने के लिए हमें एक–दूसरे से संपर्क रखना होगा। इसमें संयोजन की ज़िम्मेदारी मैंने (रवींद्र) ने ली है।■

– रवींद्र आर. पी.
गर्भलिंग परीक्षण विरोधी मंच, मुम्बई

2. प्रजनन में पुरुषों की भूमिका

शोषण के हर स्वरूप और रिश्ते की तरह लिंग–द्वंद्व का भी एक अंतर्निहित मनोवैज्ञानिक पहलू है। इस तरह के संबंध में हावी होने की प्रवृत्ति, असुरक्षा, हिंसा और एक अच्छी तरह जमा हुआ मूल्यों का ढांचा है जो मिथकों में और तथाकथित 'वास्तविक सच्चाई' की समझ में भी काम करता है। लैंगिक संबंध में एक और जटिलता इस वजह से है कि किन्हीं दो व्यक्तियों में एकजुट होकर मानसिक व शारीरिक दोनों प्रकार से एक–दूसरे को गहराई से पहचानने और सभी अवधारणाओं को हटाने की प्राकृतिक ज़रूरत होती है। जिस समाज में हम लैंगिक द्वंद्व को समझने की कोशिश कर रहे हैं, वहां पहले से ही व्याप्त वर्ग, जाति व अन्य द्वंद्वों से और भी जटिलताएं बंट जाती हैं। इसमें कोई शक नहीं है कि औरत–मर्द का संबंध और इसका संदर्भ वर्ग या जाति–समाज के स्वरूप और उसके विकास के चरण के साथ बदलता रहता है। पर साथ ही बिल्कुल घुलमिल जाते शरीरों और मानसिक अवस्थाओं की वजह से लैंगिक द्वंद्व हमारे सूक्ष्म व व्यापक स्तर पर प्रकट होते स्वभाव को नियंत्रित करने वाली एक महाशक्ति बनकर सामने आता है।

इन विषयों के प्रति एक चिंतावान पुरुष होने का अर्थ है बहुत सारी उलझनों, आक्रोश और कभी–कभी एक असहाय बोझ के साथ जीना। पितृसत्ता पर आधारित समाज व्यवस्था और पुरुष प्रधानता शोषण के पुराने स्वरूप हैं। कुछ व्यक्तियों के महज व्यक्तिगत प्रयासों से परिस्थिति नहीं बदल सकती। निश्चित रूप से एक साथ बैठने की आवश्यकता है। जब हम स्वतंत्र ख्यालों में भी आगे की सोचते हैं तो कई दफ़ा महिलाएं हमसे सहमत नहीं होतीं। कई दफ़ा शोषण की उपजी भावुकता की वह मोटी दीवार सामने खड़ी हो जाती है जिसकी वजह से हम बातचीत का हर माध्यम खो बैठते हैं। शादी, शिशु पालन, प्रतिबद्धता और कई अन्य शब्द, जिनको कभी अच्छी तरह समझा नहीं गया है और जो व्यापक शक्तियों के प्रभाव में अर्थ खो बैठते हैं, ऐसे कई शब्दों के बारे में बातचीत करने व अपने विचारों को साझा करने की ज़रूरत है।

इसलिए, आज जब हमारी महिला साथी पुरुष प्रधानता के खिलाफ संघर्ष का नेतृत्व कर रही हैं, तब हमें ऐसी ऐतिहासिक प्रक्रिया में अपनी भूमिका परिभाषित करने की आवश्यकता है। इसके लिए एक लंबा समय लग सकता है और शायद लंबे समय से यह चल भी रहा है। हम सबको भी संगठित प्रयास करने की आवश्यकता है।■

– डॉ. हरजिंदर सिंह 'लाल्टू'

एकलव्य, हरदा (म. प्र.)

लेखिकाओं के बारे में

1. लंदन स्कूल ऑफ इक्नॉमिक्स से पी.एचडी प्राप्त **प्रो. एलिजाबेथ (बेट्सी) या बेट्सी हार्टमान**, हैम्पशायर कॉलेज (एम्हर्स्ट, मैसाच्युसेट्स, अमरीका) में विकास–संबंधी अध्ययन (डेवलपमेंट स्टडीज़) की प्रोफ़ेसर एवं 'जनसंख्या व विकास कार्यक्रम' की निदेशक और एक लंबे अर्से से अंतर्राष्ट्रीय महिला स्वास्थ्य आंदोलन में सक्रिय रही हैं। उनके शोध, लेखन, अध्यापन, भाषण व नीतिगत बदलाव की पैरवी का फ़ोकस महिलाओं के प्रजनन–संबंधी अधिकार, जनसंख्या, प्रवसन, पर्यावरण, सामाजिक सुरक्षा व जलवायु परिवर्तन के अंतर्संबंधों पर रहा है। उनकी पुस्तक 'रिप्रोडक्टिव राईट्स एंड रांग्स – द ग्लोबल पॉलिटिक्स ऑफ़ पॉपुलेशन कंट्रोल' (जनवरी 1987) एक नारीवादी कालजयी के रूप में विख्यात है। उन्होंने अमरीका में दक्षिणपंथी राजनीति के खतरों को उजागर करते हुए दो मशहूर उपन्यास भी लिखे हैं।

2. मुंबई महानगर पालिका द्वारा संचालित के.ई.एम. अस्पताल के प्रिवेंटिव एंड सोशल मेडिसिन विभाग (निवारक एवं सामाजिक चिकित्सा विभाग) में एसोसिएट प्रोफ़ेसर **डॉ. कामाक्षी भाटे** लंबे अर्से से गर्भ के दौरान 'यौन जांच व चयन' के खिलाफ़ अभियान में सक्रिय रही हैं। उनके शोध, लेखन, अध्यापन व चेतना जागरण के काम में क्षय रोग, मलेरिया, एचआईवी/एड्स आदि रोगों को सार्वजनिक स्वास्थ्य के नज़रिए से देखने का गहरा सरोकार दिखता है। फ़ोरम अगेन्स्ट ऑप्रेशन ऑफ़ वीमेन (महिलाओं पर दमन के विरुद्ध मंच) एवं फ़ोरम फॉर वीमेन्स हेल्थ (महिला स्वास्थ्य के लिए मंच) की सक्रिय सदस्य होने के नाते उन्होंने 'कश्मीर में महिलाओं व बच्चों पर फ़ौजी अत्याचारों पर तथ्यपरक जांच आयोग' में सदस्य की भूमिका निभाते हुए हकीकत उजागर की।

3. स्टेट युनीवर्सिटी ऑफ़ न्यू यॉर्क (बफ़ैलो, अमरीका) से बायोफ़िज़िक्स (जीवभौतिकी) में पीएचडी प्राप्त पेशेवर पुस्तक–चित्रकार **डॉ. कैरन हैडाक** बुनियादी तौरपर वैज्ञानिक एवं विज्ञान की शिक्षिका हैं जिन्होंने अमरीका और भारत के विभिन्न कालेजों व विश्वविद्यालयों में शोध व अध्यापन का लंबे अर्से से काम किया है। उन्हें स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में एनसीईआरटी व गैर–सरकारी संस्थानों के साथ अध्यापक शिक्षण, पाठ्यपुस्तक व सहायक सामग्री निर्माण, चित्रांकन और अध्यापन का गहरा अनुभव है। वे पुस्तकों, पत्रिकाओं, अखबारों, पोस्टरों व अन्य प्रचार–प्रसार सामग्री में गूढ़ विषयों को अपनी बेजोड़ चित्रांकन व रूपांकन शैली के ज़रिए सहज अभिव्यक्ति देने के लिए विख्यात हैं। संप्रति, होमी भाभा

सेंटर फ़ॉर साईंस एज्युकेशन (टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ़ फ़ंडामेंटल रिसर्च, भारत सरकार), मुंबई में कार्यरत हैं।

4. पुणे विश्वविद्यालय से समाजशास्त्र में पीएचडी एवं 1975 से महिला आंदोलन में सक्रिय **डॉ. मनीषा गुप्ते** द्वारा पितृसत्ता एवं सामाजिक लिंगभेद (जेंडर) के जाति, यौनिकता, नारी–विरुद्ध हिंसा, महिला स्वास्थ्य, प्रजनन–संबंधी अधिकार व अधीनस्थ महिला के अंतर्संबंधों पर शोध, लेखन, प्रशिक्षण, सामुदायिक पहलकदमी एवं जन अभियान। 'महिला सर्वांगीण उत्कर्ष मंडल' की स्थापना (1987)। विभिन्न आंचलिक, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में भूमिका। जनस्वास्थ्य के प्रति समर्पित पेशेवर डॉक्टरों व स्वास्थ्य कर्मियों के 'मेडिको फ्रेंड्स सर्किल' की मेनेजिंग ट्रस्टी, दसवीं अंतर्राष्ट्रीय महिला व स्वास्थ्य संगोष्ठी की संयोजिका (2005), 'द इंडियन वीमेन्स हेल्थ चार्टर' की तैय्यारी का संयोजन और 'ऑनर एंड वीमेन्स राइट्स : साऊथ एशियन पर्सपेक्टिव्ज़' नामक पुस्तक का सह–संपादन (2012)।

5. **डॉ. मीरा सद्गोपाल** एमबीबीएस द्वारा 'किशोर भारती' में ग्रामीण गैर–साक्षर गरीब महिलाओं के साथ उनके स्वास्थ्य के सवालों पर 17 साल तक ज़मीनी काम। पितृसत्ता, जनसंख्या नियंत्रण व गर्भनिरोधकों के प्रतिरोध में 'प्रजनन जागरूकता कार्यक्रम' की संकल्पना जिसके तहत प्रजनन–संबंधी पारंपरिक ज्ञान की बुनियाद पर महिलाओं के शरीर, यौनिकता, यौन–संबंधों, उर्वरता व बच्चों के जन्म के फैसलों पर खुद के नियंत्रण हेतु जनशिक्षण। अगला कदम पुणे में गठित 'तथापि' नामक संस्थान के ज़रिए। भोपाल गैस पीड़ित महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य का अध्ययन करनेवाली पहली टीम की सदस्य। यौनिकता व उर्वरता पर 'इन अवर हैंड्स' पुस्तक का लेखन और 'हर हीलिंग हेरिटेज़', 'माई बॉडी इज़ माईन' व 'इंडियन वीमेन्स हेल्थ चार्टर' नामक ग्रंथों का संपादन। संप्रति, प्लेसंटा–संबंधी पारंपरिक ज्ञान को भारत के विभिन्न हिस्सों की देशज दाइयों के सामूहिक प्रयास से बटोरने व व्यवस्थित करने के 'जीवा प्रोजेक्ट' को नेतृत्व।

6. नागपुर विश्वविद्यालय से प्रसूति एवं स्त्री रोग विज्ञान में एम.डी. करके **डॉ. रानी बंग** ने डॉ. अभय बंग के साथ मिलकर जीवन पर्यंत ग्रामीण इलाके में सामुदायिक स्वास्थ्य के नीतिगत सवालों से जूझने व प्राथमिक स्तर पर सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं के बेहतरीकरण का काम किया है। ऐसे मुद्दों से सरोकार रखनेवाले डॉक्टरों व स्वास्थ्यकर्मियों के 'मेडिको फ्रेंड्स सर्किल' नामक देशव्यापी संगठन में महती भूमिका। सन् 1984 में जॉन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय (बॉल्टिमोर, अमरीका) से 'सार्वजनिक स्वास्थ्य में मास्टर्स' (मास्टर्स इन पब्लिक हेल्थ) का कोर्स। गांधीवादी दर्शन से प्रेरित बंग दंपति द्वारा महाराष्ट्र के एक बेहद

गरीब आदिवासी इलाके – जिला गढ़चिरोली – में सामुदायिक स्वास्थ्य व्यवस्था में आमूलचूल बदलाव लाने के इरादे से 'सर्च' (सोसायटी फ़ॉर एज्यूकेशन, एक्शन एंड रिसर्च इन कम्युनिटी हेल्थ) नामक संस्थान की स्थापना और सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था को जनपक्षीय बनाने की मिसाल पेश। उनके अनेक मौलिक शोध 'लेंसट' जैसी प्रतिष्ठित ब्रिटिश मेडिकल पत्रिका में छपे। इस ज़मीनी काम के लिए राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित।

7. लंदन स्कूल ऑफ़ हाईजिन एंड ट्रॉपिकल मेडेसिन से इपिडीमियॉलॉजी (महामारी विज्ञान) में एमएससी प्राप्त **डॉ. सी. सत्यमाला** एमबीबीएस का विभिन्न सामुदायिक स्वास्थ्य परियोजनाओं में लगभग तीन दशकों का ज़मीनी अनुभव। महिला स्वास्थ्य, गर्भ निरोधकों एवं भोपाल गैस कांड के पीड़ितों के स्वास्थ्य, खासकर महिलाओं के प्रजनन तंत्रों, पर हुए नुकसानदेहक असरों पर सघन शोध। उनकी 'टेकिंग साईड्स' पुस्तक की सामुदायिक स्वास्थ्य पर लिखी दुनिया की 10 सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में गिनती। डेविड वर्नर की 'व्हेयर देयर इज़ नो डॉक्टर' पुस्तक का भारतीय रूपांतरण और 'डेपो प्रोवेरा' गर्भनिरोधक इंजेक्शन की इपिडीमियॉलॉजी समीक्षा, उनके अन्य उल्लेखनीय योगदान। कालांतर में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में सामुदायिक स्वास्थ्य की विज़िटिंग प्रोफ़ेसर और इंस्टीट्यूट फ़ार ह्यूमन डेवलपमेंट (नई दिल्ली) में वरिष्ठ अध्येता।

8. दिल्ली विश्वविद्यालय से शिक्षा में पीएचडी प्राप्त **डॉ. साधना सक्सेना** द्वारा भौतिकी में एमएससी के बाद सन् 1975 से 15 साल तक 'किशोर भारती' (ज़िला होशंगाबाद, म. प्र.) में ज़मीनी काम। इस दौरान गांधीजी की 'नई तालीम' की अवधारणा से प्रेरित उत्पादक काम पर आधारित शैक्षणिक प्रयोग और सरकारी मिडिल स्कूल व्यवस्था के अंदर विज्ञान सीखने–सिखाने की प्रयोग–आधारित वैज्ञानिक पाठ्यचर्या के ज़रिए 'होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम' (होविशिका) नामक विख्यात शैक्षिक हस्तक्षेप में केंद्रीय भूमिका। कालांतर में 'किशोर भारती' परिसर समेटे जाने के बाद आसपास के 25 गांवों में जनशिक्षण अभियान के तहत औपचारिकेतर शिक्षा कार्यक्रम। राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा संस्थान, नई दिल्ली में साक्षरता व शिक्षा और जनांदोलन के अंतर्संबंधों पर शोध व लेखन। उनकी पुस्तक 'शिक्षा और जन आंदोलन' का प्रकाशन (2000)। संप्रति, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन व शोध कार्य एवं विभागाध्यक्ष व डीन, शिक्षा संकाय।■

समूहों में चर्चा के लिए कुछ प्रश्न (संशोधित)

1. माहवारी चक्र, उर्वरता व यौनिकता

- प्रजनन तंत्र की रचना और काम के विषय में आमतौर पर महिलाएं क्या समझती हैं? क्या बेहतर समझ की जरूरत पहचानी गई है? क्या उनके पास अनुत्तरित प्रश्न हैं?
- क्या माहवारी का दर्द या तकलीफ सामान्य बात है?
- शारीरिक मेहनत/एथलेटिक्स, खानपान, पर्यावरण, स्तनपान आदि का माहवारी चक्र पर क्या असर पड़ता है?
- क्या आप मानते हैं कि माहवारी के दौरान शारीरिक संबंध गलत बात है? क्यों?
- क्या महिलाओं में यौन अनुभव का चरम बिंदु, एक सामाजिक महत्व का मुद्दा है?
- उर्वरता संबंधी जानकारी पढ़ने से क्या आपका जीवन बदला है? कैसे?

2. यौन शिक्षा व यौनिकता

- किस तरह की यौन शिक्षा की आवश्यकता है?
- क्या कोई 'सही उम्र' है जब बच्चों को यह शिक्षा मिलनी चाहिए? क्या छुटपन में यौन संबंधी बातें समझाने या छुपाने का विशेष प्रयास करना चाहिए?
- 'प्रजनन जागरूकता' का असर उन लोगों पर क्या होगा जो छोटी उम्र (किशोर या जवान) के हैं या अविवाहित हैं और जिन्हें यौन संबंध का कोई अनुभव नहीं है?

3. स्त्री स्वास्थ्य

- स्त्री स्वास्थ्य का क्या अर्थ है? इसका लेना–देना सिर्फ प्रजनन तंत्र से है या इससे ज्यादा है?
- पुरुष प्रधान समाज और औरतों का स्वास्थ्य दोनों से प्रभावशाली ढंग से कैसे जूझें?

4. गर्भपात व गर्भनिरोध

- गर्भनिरोध का 'एकदम सही तरीका' कैसा होगा? (कुछ ऐसा जो औरत आदमी की सहमति या जानकारी के बिना उपयोग कर सकती है? कुछ 'प्राकृतिक', कुछ सामान्य–सी चीज?)
- हमारी सामाजिक/आर्थिक परिस्थिति गर्भनिरोध के चयन पर क्या प्रभाव डालती है?
- हमें गर्भनिरोध के कौन से तरीके उपलब्ध होंगे, इसका फैसला कौन करता है?
- हम गर्भनिरोध के विभिन्न तरीकों का वर्गीकरण कैसे करें ताकि उनकी प्रभावशीलता, सुरक्षा व योग्यता की जानकारी लोगों तक पहुंचाएं जिससे वे गर्भनिरोध का चयन जानकारी के आधार पर कर सकें?
- क्या प्रजनन जागरूकता का असर आपके गर्भनिरोधक के उपयोग पर पड़ा है? कैसे?
- गर्भनिरोध में आदमियों की क्या जिम्मेदारी होनी चाहिए? एक रिश्ते में क्या आदमी पर निरोध का इस्तेमाल करने के लिए दबाव डाला जा सकता है या उसे मनाया जा सकता है? कैसे?
- यदि आप मानते हैं कि गर्भजल परीक्षण के बाद मादा भ्रूण का गर्भपात करना बुरा है? किसी भी भ्रूण का गर्भपात करना बुरा है? क्या गर्भपात हत्या है? इसे कौन तय करता है?
- हमारे गर्भनिरोध तरीके का चयन हमारी यौनिकता पर क्या असर डालते हैं?
- ऐसा क्यों है कि जन्म नियंत्रण, प्रजनन जागरूकता आदि जैसे मुद्दे जन विज्ञान समूहों व जन आंदोलनों के समूहों के लिए प्राथमिक मुद्दे नहीं बने हैं? केवल महिलाओं के समूहों ने इन मुद्दों को प्राथमिकता दी है?

5. महिलाओं के बच्चे न होना (बांझपन)

- भाषा (जैसे बांझ महिला) किस प्रकार सामाजिक पूर्वाग्रहों को प्रतिबिंबित करती है और इसे कैसे बदला जाए?
- क्या बांझपन एक सामाजिक या चिकित्सीय समस्या है?
- क्या यह संभव है कि बांझपन की जांच महिला से पहले पुरुष की हो? ■

सुश्री शशि मौर्य पिछले तीस सालों से नारीवादी आंदोलन से जुड़ी हुई हैं। उन्हें सन् 1985-90 में 'किशोर भारती' संस्था के ज़रिए बनखेड़ी प्रखंड व पिपरिया क्षेत्र (ज़िला होशंगाबाद, मध्य प्रदेश) में 'प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम' का ग्रामीण और कस्बाई इलाकों में काम करने का ज़मीनी अनुभव मिला। सन् 1990 के दशक में भारत सरकार के महिला समाख्या, सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) की ज़िला संयोजिका के रूप में उन्होंने महिला-विरुद्ध हिंसा पर काम करते हुए गांवों में नारी अदालतें स्थापित करवाईं जो आज भी बगैर किसी बाहरी समर्थन के चल रही हैं। उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र में 1997-2005 के दौरान महिला-विरुद्ध हिंसा के मुद्दे पर स्थानीय समूहों के साथ जुड़कर सघन रूप से व्यापक अध्ययन, सर्वेक्षण और जनशिक्षण किया। अगले 2-3 सालों में कस्तूरबा कन्या महाविद्यालय, इंदौर में बीए व एमए की आदिवासी छात्राओं के साथ सामाजिक लिंगभेद (जेंडर) का औपचारिक कोर्स चलाया। विगत कुछ बरसों में वे भोपाल में रहते हुए महिला-विरुद्ध हिंसा पर अध्ययन, लेखन और साथ-साथ अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच के देशव्यापी शैक्षिक आंदोलन के समर्थन में शैक्षिक साहित्य के संपादन, प्रकाशन व वितरण के काम में सक्रिय हैं।

जातिव्यवस्था पर टिके हुए पितृसत्तात्मक समाज में प्रजनन का विषय 'सिर्फ़ महिलाओं' का है, ऐसी सोच के कारण पर्दे के अंदर रहा है और महिलाओं की तरह उपेक्षित भी। ऐसे विषय को शब्द व भाषा देना, इसको हिचक, लज्जा, डर व चुप्पी के दायरे से बाहर निकालना, वैज्ञानिक चिंतन की बुनियाद पर अंधविश्वास से मुक्त करना, पुरुषों की भूमिका को नए सिरे से परिभाषित करना और बहुजन समाज की अभिव्यक्ति को आगे बढ़ाने के लिए बातचीत का एक लहज़ा विकसित करना, यह अपने आप में ज़्यादातर भारतीय भाषाओं में नारीवादी विमर्श को एक नया आयाम देने जैसा है।

लगातार चौड़ी होती गैर–बराबरी की खाई को जायज़ ठहराने के लिए माल्थस के 'जनसंख्या विस्फोट' के पुराने जिन को बोतल से बाहर निकालकर नई चाशनी में परोसा जा रहा है। इस सिलसिले में 'जनसंख्या नियंत्रण' टेक्नोलॉजी की मार का मुख्य शिकार औरत को ही बनाया गया है।

आपस में गुंथे हुए इन मुद्दों को नारीवादी व जनवादी दोनों नज़रियों से देखने व समझने और लोगों के साथ संवाद को परिवर्तनकामी विमर्श में बदलने के लिए ज़मीनी स्तर पर जूझने व नई चेतना निर्माण की ज़रूरत थी। यह समझकर 'किशोर भारती' संस्था ने बनखेड़ी प्रखंड व पिपरिया क्षेत्र (ज़िला होशंगाबाद, मध्य प्रदेश) में सन् 1987–89 के दौरान डॉ. मीरा सद्‌गोपाल के नेतृत्व में 'प्रजनन जागरूकता शिक्षण कार्यक्रम' के ज़रिए ग्रामीण और कस्बाई दोनों स्तरों पर एक ऐतिहासिक पहल की।

सहयोग राशि – ₹ 150/-